ब्रह्माण्ड पुराण

(प्रथम खण्ड)

।। कृत्य-समुद्देशम् ।।

नमोनमः क्षये सृष्टौ स्थितौ सत्त्वमयाय वा ।
नमो रजस्तमः सत्त्वत्रिरूपाय स्वयंभुवे ।।१
जितं भगवता तेन हरिणा लोकधारिणा ।
अजेन विश्वरूपेण निर्गुणेन गुणात्मना ।।२
ब्रह्माणं लोककर्त्तारं सर्वज्ञमपराजितम् ।
प्रभुं भूतभविष्यस्य साम्प्रतस्य च सत्पतिम् ।।३
ज्ञानमप्रतिमं तस्य वैराग्यं च जगत्पतेः ।
ऐश्वर्यं चैव धर्मश्च सद्भिः सेव्यं चतुष्टयम् ।।४
इमान्नरस्य वै भावान्नित्यं सदसदात्मकान् ।
अविनश्यः पुनस्तान्वै क्रियाभावार्थमीश्वरः ।।५
लोककृल्लोकतत्त्वज्ञो योगमास्थाय योगवित् ।
असृजत्सर्वभूतानि स्थावराणि चराणि च ।।६
तमहं विश्वकर्माणं सत्पतिं लोकसाक्षिणम् ।
पुराणाख्यानजिज्ञासुर्गच्छामि शरणं विभुम् ।।७

संसार के सृजन, उसके पालन अथवा उसके संहार काल में सत्व स्वरूप वाले के लिए बारम्बार नमस्कार है। रजोगुण-तमोगुण और सत्व-गुण के तीन स्वरूप वाले भगवान् स्वयम्भू के लिए नमस्कार है।१। जन्म न धारण करने वाले, विश्व के स्वरूप वाले, गुणों से रहित और गुणों के रूप वाले, विश्व के स्वरूप वाले, गुणों से रहित और गुणों के रूप वाले, लोकों के धारण करने वाले उन भगवान् हरि ने जय प्राप्त किया है।२। समस्त

लोकों के रचने वाले, सबके ज्ञाता, पराजित न होने वाले, भूत-भविष्यत् और वर्त्तमान काल के प्रभु सत्पति ।३। अनुपम ज्ञान के स्वरूप और उन जगतों के स्वामी का ज्ञान, वैराग्य तथा ऐश्वर्य और धर्म्म ये चारों सत्पुरुषों के द्वारा सेवन करने के योग्य हैं ।४। नित्य ही भले और बुरे स्वरूप वाले मनुष्य के इन भावों की क्रिया के भान के लिए ईश्वर ने फिर रचना की थी ।५। लोकों की रचना करने वाले और लोकों के तत्वों के ज्ञाता, योग के जानने वाले भगवान् ने योग में समास्थित होकर समस्त स्थावर (अचर) और जङ्गम (चर) जीवों की रचना की थी ।६। पुराण के आख्यान की इच्छा वाले मैंने व्यापक सत्पति लोकों के साक्षी विश्वकर्मा उन प्रभु की शरण ग्रहण की है ।७।

पुराणं लोकतत्त्वार्थमखिलं वेदसंमितम् ।
प्रशशंस स भगवान् वसिष्ठाय प्रजापतिः ।।८
तत्त्वज्ञानामृतं पुण्यं वसिष्ठो भगवानृषिः ।
पौत्रमध्यापयामास शक्तेः पुत्रं पराशरम् ।।९
पराशरश्च भगवान् जातूकर्ण्यमृषिं पुरा ।
तमध्यापितवान्दिव्यं पुराणं वेदसंमितम् ।।१०
अधिगम्य पुराणं तु जातूकर्ण्यो विशेषवित् ।
द्वैपायनाय प्रददौ परं ब्रह्म सनातनम् ।।११
द्वैपायनस्ततः प्रीतः शिष्येभ्यः प्रददौ वशी ।
लोकतत्त्वविज्ञानार्थं पंचभ्यः परमाद्भुतम् ।।१२
विख्यापनार्थं लोकेषु बह्वर्थं श्रुतिसंमतम् ।
जैमिनिं च सुमन्तुं च वैशंपायनमेव च ।।१३
चतुर्थं पैलवं तेषां पंचमं लोमहर्षणम् ।
सूतमद्भुतवृत्तान्तं विनीतं धार्मिकं शुचिम् ।।१४

लोकतत्त्व के अर्थ वाले, वेद के समान सम्पूर्ण पुराण की भगवान् प्रजापति ने वसिष्ठ मुनि के आगे प्रशंसा की थी अर्थात् उनको पढ़ाया था ।८। भगवान् वसिष्ठ ऋषि ने परम पुण्यमय अमृत के सदृश इस तत्व ज्ञान को शक्ति के पुत्र अपने पौत्र पराशर को पढ़ाया था ।९। प्राचीन काल में

भगवान् पराशर ने इस परम दिव्य और वेद के ही सदृश पुराण को जातूकर्ण्य ऋषि को पढ़ाया था ।१०। विशेष ज्ञान रखने वाले जातूकर्ण्य ऋषि ने इसका ज्ञान प्राप्त करके इस सनातन पर ब्रह्म को द्वैपायन के लिए प्रदान किया था ।११। परम संयमी द्वैपायन ऋषि ने अत्यधिक प्रसन्न होकर अत्यन्त अद्भुत इस पुराण को लोक ज्ञान के विधान के लिए अपने पाँच शिष्यों को दिया था अर्थात् पढ़ाया था ।१२। विपुल अर्थों से समन्वित श्रुति के समान इसके लोकों में विख्यापन के लिए पढ़ाया था जिनमें जैमिनि, सुमन्तु और वैशम्पायन थे ।१३। चौथे पैलव और पाँचवें लोमहर्षण थे। सूत परम विनम्र, धार्मिक और पवित्र थे अतः उनको यह अद्भुत वृत्तान्त वाला पुराण पढ़ाया था ।१४।

अधीत्य च पुराणं च विनीतो लोमहर्षणः ।
ऋषिणा च त्वया पृष्टः कृतप्रश्नः सुधार्मिकः ।।१५
वसिष्ठश्चापि मुनिभिः प्रणम्य शिरसा मुनीन् ।
भक्तयो परमया युक्तः कृत्वा चापि प्रदक्षिणम् ।।१६
अवाप्तविद्यः सन्तुष्टः कुरुक्षेत्रमुपागमत् ।
सत्रे सवितते यत्र यजमानानृषीञ्छुचीन् ।।१७
विधिनोहसंगसंम्य सत्रिणो रोमहर्षणम् ।
विधानतो यथाशास्त्रं प्रज्ञयातिजगाम ह ।।१८
ऋषयश्चापि ते सर्वे तदानीं रोमहर्षणम् ।
दृष्ट्वा परमसंहृष्टाः प्रीताः सुमनसस्तथा ।।१९
सत्कारैरर्च्चयामासुरर्घ्यपाद्यादिभिस्ततः ।
अभिवाद्य मुनीन्सर्वान् राजाज्ञामभिगम्य च ।।२०
ऋषिभिस्तैरनुज्ञातः पृष्टः सर्वमनामयम् ।
अभिगम्य मुनीन्सर्वांस्तेजो ब्रह्म सनातनम् ।
सदस्यानुमते रम्ये स्वास्तीर्णे समुपाविशत् ।।२१

परम विनयी लोमहर्षण मुनि ने इस परम श्रेष्ठ पुराण का अध्ययन करके जब समाप्त किया था तो ऋषि आपने उनसे पूछा था जो कि भली प्रकार से धर्म के समाचरण करने वाले और परम प्रज्ञावान् थे ।१५। अनेक

मुनियों के साथ संयुत होकर समस्त मुनियों को शिर झुकाकर प्रणाम किया था और परम भक्ति भाव से युक्त होकर प्रदक्षिणा की थी ।१६। सम्पूर्ण विद्या को प्राप्त करके वे परम सन्तुष्ट हुए और फिर वे कुरुक्षेत्र में पहुँच गये थे । जहाँ पर एक विशाल यज्ञ होरहा था और पवित्र बहुत से यजमान तथा ऋषिगण विद्यमान थे ।१७। तब याज्ञिकों ने परम नम्रता से रोमहर्षण ऋषि से भेंट की थी । शास्त्रों के अनुसार विधि पूर्वक प्रज्ञा से अतिगमन किया था ।१८। उस समय में उन समस्त ऋषियों ने भी रोमहर्षण मुनि का दर्शन प्राप्त कर अत्यन्त हर्ष प्राप्त किया था और सबके मन में विशेष प्रसन्नता हुई थी ।१९। तब ऋषियों ने उनका विशेष समादर एवं सत्कार करके अर्घ्यपाद्य आदि के द्वारा उनका समर्चन किया था । राजा के द्वारा आज्ञा प्राप्त करके समस्त मुनिगणों को प्रणाम किया था ।२०। कुशल-क्षेम पूछे जाने पर समस्त ऋषियों के द्वारा आज्ञा प्राप्त की थी । सनातन ब्रह्म के तेज स्वरूप उन सब ऋषियों के समीप जाकर सदस्यों के द्वारा अनुमत अपने आसन पर विराजमान हो गये थे ।२१।

उपविष्टे तदा तस्मिन्मुनयः शंसितव्रताः ।
मुदान्विता यथान्यायं विनयस्थाः समाहिताः ॥२२
सर्वे ते ऋषयश्चैनं परिवार्य महाव्रतम् ।
परमप्रीतिसंयुक्ता बभूवुः सूतनन्दनम् ॥२३
स्वागतं ते महाभाग दिष्ट्या च त्वां निरामयम् ।
पश्याम धीमन्नत्रस्थाः सुव्रतं मुनिसत्तमम् ॥२४
अशून्या मे रसाद्यैव भवतः पुण्यकर्मणः ।
भवांस्तस्य मुनेः सूत व्यासस्यापि महात्मनः ॥२५
अनुग्राह्यः सदा धीमाञ्छिष्यः शिष्यगुणान्वितः ।
कृतबुद्धिश्च ते तत्त्वमनुग्राह्यतया प्रभो ॥२६
अवाप्य विपुलं ज्ञानं सर्वतश्छिन्नसंशयः ।
पृच्छतां नः सदा प्राज्ञ सर्वमाख्यातुमर्हसि ॥२७
तदिच्छामः कथां दिव्यां पौराणीं श्रुतिसंमिताम् ।
श्रोतुं धर्मार्थयुक्तां तु एतद्व्यासाच्छ्रुतं त्वया ॥२८

एवमुक्तस्तदा सूतस्त्वृषिभिर्विनयान्वितः ।
उवाच परमप्राज्ञो विनीतोत्तरमुत्तमम् ॥२९

उस समय में उनके अपने आसन पर बैठ जाने पर समस्त मुनियों ने व्रत धारण किया था और परम प्रसन्न होकर विनीत भाव से सावधान होकर उचित स्थान पर वे सब स्थित हो गये थे ।२२। उन समस्त ऋषियों ने महान व्रत धारण करके परम प्रीति से समन्वित होकर उन सूतनन्दन जी से पूछा था ।२३। हे महान् भाग वाले ! हम सब आपका स्वागत करते हैं । हे धीमन् ! यहाँ पर स्थित हुए हम सब परम कुशल, सुन्दर व्रतधारी और मुनियों में परम श्रेष्ठ आपका हम दर्शन कर रहे हैं ।२४। पुण्य कर्मों वाले आपके पदार्पण से आज ही यह भूमि हमारे लिए आनन्दमयी हुई है । हे सूतजी ! आप तो महान् आत्मा वाले उन श्रीव्यासजी के कृपा पात्र हैं ।२५। व्यासदेव जी के आप अनुग्रह के योग्य शिष्य हैं और सदा शिष्य में होने वाले गुण-गणों से युक्त हैं तथा परम बुद्धिमान् हैं । हे प्रभो ! आप बुद्धि से युक्त हैं और गुरुदेव के अनुग्रह के पात्र होने से आपको सम्पूर्ण तत्व ज्ञान है ।२६। आपने बहुत अधिक ज्ञान की प्राप्ति की है अतः आपके सभी प्रकार के संशय दूर हो गये हैं । हे प्राज्ञ ! हम लोग जब पूछ रहे हैं अतएव सभी कुछ हमारे सामने वर्णन करने के योग्य होते हैं ।२७। हम लोग सब श्रुति सम्मित परमदिव्य पुराण सम्बन्धिनी कथा का श्रवण करना चाहते हैं । आपने इस इसका श्रवण व्यासदेव जी से किया है उसी धर्मार्थ से युक्त पौराणिक कथा को हम सुनना चाहते हैं ।२८। उस समय में जब इस प्रकार के ऋषियों के द्वारा कहा गया तो विनय से संयुत और परम पण्डित सूतजी ने उत्तम विनीत उत्तर दिया था ।२९।

ऋषेः शुश्रूषणं यच्च तस्मात्प्रज्ञा च या मम ।
यस्माच्छुश्रूषणार्थं च तत्सत्यमिति निश्चयः ॥३०
एवं गतेऽर्थे यच्छक्यं मया वक्तुं द्विजोत्तमाः ।
जिज्ञासा यत्र युष्माकं तदाज्ञातुमिहार्हथ ॥३१
एतच्छ्रुत्वा तु मुनयो मधुरं तस्य भाषितम् ।
प्रत्यूचुस्ते पुनः सूतं बाष्पपर्याकुलेक्षणम् ॥३२
भवान् विशेषकुशलो व्यासं साक्षात्तु दृष्टवान् ।
तस्मात्त्वं संभवं कृत्स्नं लोकस्येमं विदर्शय ॥३३

यस्य यस्याऽन्वये ये ये तांस्तानिच्छाम वेदितुम् ।
तेषां पूर्वविसृष्टिं च विचित्रां त्वं प्रजापते ।
सत्कृत्य परिपृष्टः स महात्मा रोमहर्षणः ॥३४
विस्तरेणानुपूर्व्या च कथयामास सत्तमः । सूत उवाच ।
यो मे द्वैपायनप्रीतः कथां वै द्विजसत्तमाः ॥३५
पुण्यामाख्यातवान्विप्रास्तां वै वक्ष्याम्यनुक्रमात् ।
पुराणं संप्रवक्ष्यामि यदुक्तं मातरिश्वना ॥३६

ऋषि व्यासदेव से जो भी कुछ मैंने श्रवण किया है और उस श्रवण करने से जो ज्ञान मुझे प्राप्त हुआ है जिससे भली-भाँति श्रवण कराने के लिए वह ज्ञान पूर्णतया सत्य है—ऐसा मेरा निश्चय है ।२०। हे उत्तम द्विजगणो ! इस प्रकार से ज्ञान प्राप्त होने पर जो भी कुछ मेरे द्वारा कहा जा सकता है मैं कहूँगा । जिस विषय में आपकी जो भी जानने की इच्छा है । उसको आप आज्ञा देने के योग्य हैं ।२१। मुनिगणों ने उनके इस प्रकार के मधुर भाषण को सुनकर उन्होंने प्रेमाश्रुओं से भरी हुई आँखों वाले सूतजी से फिर कहा था ।२२। आप तो विशेष रूप से निपुण हैं और आपने साक्षात् रूप से श्री व्यासजी का दर्शन किया है । इस कारण से आप इस लोक की सम्पूर्ण उत्पत्ति को विशेष रूप से दिखलाने की कृपा कीजिए ।२३। जिसके वंश में जो-जो भी हुए हैं उन-उन सबको हम जानना चाहते हैं । और आप उनके पूर्व में होने वाली प्रजापति की विचित्र विशेष सृष्टि को भी बतलाइए—यह भी हम सब जानने की इच्छा करते हैं । सत्कार करके उन महात्मा सूतजी से जब पूछा गया था ।२४। तब उन परमश्रेष्ठ महापुरुष ने आनुपूर्वी से विस्तार के साथ कहा था । श्रीसूतजी ने कहा—हे द्विजश्रेष्ठो ! परम प्रसन्न हुए द्वैपायन मुनि ने जो परम पुण्यमयी कथा मुझसे कही थी हे विप्रगणो ! उसको मैं अनुक्रम से कहूँगा । मातरिश्वा ने जो पुराण कहा है उसको मैं बतलाऊँगा ।२५-२६।

पृष्टेन मुनिभिः पूर्वैर्नैमिषीयैर्महात्मभिः ।
सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वंतराणि च ॥३७
वंश्यानुचरितं चैव पुराणं पंचलक्षणम् ।
प्रक्रिया प्रथमः पादः कथायां स्यात्परिग्रहः ॥३८

अनुषंग उत्पोद्घात उपसंहार एव च ।
एवं पादास्तु चत्वारः समासात्कीर्तिता मया ॥३९
वक्ष्यामि तान्पुरस्तात्तु विस्तरेण यथाक्रमम् ।
प्रथमं सर्वशास्त्राणां पुराणं ब्रह्मणा स्मृतम् ॥४०
अनन्तरं च वक्त्रेभ्यो वेदास्तस्य विनिःसृताः ।
अङ्गानि धर्मशास्त्रं च व्रतानि नियमास्तथा ॥४१
अव्यक्तं कारणं यत्तन्नित्यं सदसदात्मकम् ।
महदादिविशेषांतं सृजामीति विनिश्चयः ॥४२

नैमिषारण्य के निवासी महात्मा मुनियों ने पहिले पूछा था । पुराण का लक्षण ही यह है—सर्ग अर्थात् सृष्टि और प्रतिसर्ग अर्थात् उस सृष्टि से होने वाली सृष्टि, वंशों का वर्णन, मन्वन्तर अर्थात् मनुओं का कथन तात्पर्य कौन-कौन मनु किस-किस के पश्चात् हुए ।३७। वंशों में होने वालों का चरित—यह ही पाँचों बातों का होना पुराण का लक्षण है । इसमें भी चार पाद होते हैं—प्रक्रिया पहिला पाद है जो कथा में परिग्रह होता है ।३८। अनुषङ्ग, उत्पोद्घात और उपसंहार इस प्रकार से संक्षेप से मैंने चार पाद बतला दिये हैं ।३९। अब पहिले उनको क्रम के अनुसार विस्तार के साथ बतलाऊँगा । सबसे प्रथम सभी शास्त्रों से पूर्व ब्रह्माजी ने पुराण का स्मरण किया था ।४०। इसके पश्चात् उनके मुख से वेद निकले थे और वेद के अङ्ग शास्त्र, धर्मशास्त्र व्रत तथा नियम आदि उनके मुख से निकले थे ।४१। जो अव्यक्त कारण है वह नित्य है और सत् तथा असत् स्वरूप वाला है । महत् आदि लेकर विशेष के अन्त तक का मैं सृजन करता हूँ—ऐसा विशेष निश्चय किया था ।४२।

अंडं हिरण्मयं चैव ब्रह्मणः सूतिरुत्तमा ।
अंडस्यावरणं वार्धिरपामपि च तेजसा ॥४३
वायुना तस्य वायोश्च खेन भूतादिना ततः ।
भूतादिर्महता चैव अव्यक्तेनावृतो महान् ॥४४
अन्तर्वर्ति च भूतानामंडमेवोपवर्णितम् ।
नदीनां पर्वतानां च प्रादुर्भावोऽत्र पठ्यते ॥४५

मन्वन्तराणां सर्वेषां कल्पानां चैव वर्णनम् ।
कीर्त्तनं ब्रह्मवृक्षस्य ब्रह्मजन्म प्रकीर्त्यते ॥४६

अतः परं ब्रह्मणश्च प्रजासर्गोपवर्णनम् ।
अवस्थाश्चात्र कीर्त्यन्ते ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः ॥४७

कल्पानां संभवश्चैव जगतः स्थापनं तथा ।
शयनं च हरेरप्सु पृथिव्युद्धरणं तथा ॥४८

सविशेषः पुरादीनां वर्णाश्रमविभाजनम् ।
ऋक्षाणां ग्रहसंस्थानां सिद्धानां च निवेशनम् ॥४९

ब्रह्माजी की सर्वोत्तम प्रकृति हिरण्मय अण्ड है । उस हिरण्मय अण्ड का आवरण सागर है, जलों का आवरण तेज के द्वारा हुआ ।४३। उस तेज का वायु से और वायु का आकाश से आवरण हुआ था फिर भूत आदि से हुआ था । भूत आदि का महत् से और महान् का अव्यक्त के द्वारा आवरण हुआ था ।४४। भूतों के अन्दर रहने वाला अण्ड ही उपवर्णित है । इसमें नदियों का और पर्वतों का प्रादुर्भाव पढ़ा जाया करता है ।४५। समस्त मन्वन्तरों का और सब कल्पों का वर्णन है । इस ब्रह्म वृक्ष का कीर्तन ही ब्रह्म का जन्म कीर्तित किया जाया करता है ।४६। इसके आगे ब्रह्माजी की प्रजाओं का उपसर्ग का उप वर्णन है । अव्यक्त जन्म वाले ब्रह्माजी की इसमें अवस्था का कीर्तन किया जाता है ।४७। कल्पों की उत्पत्ति–जगत की स्थापना भगवान् हरि का जलों में शयन करना तथा पृथिवी के उद्धार का वर्णन है ।४८। पुर आदि का विशेषता के साथ वर्णन, चारों वर्णों और चारों आश्रमों का विभाजन, नक्षत्रों की स्थिति, ग्रहों का संस्थान और सिद्धों के निवास स्थलों का वर्णन है ।४९।

योजनानां तथा चैव संचरो बहुविस्तरः ।
स्वर्गस्थानविभागश्च मर्त्यानां शुभचारिणाम् ॥५०

वृक्षाश्रमौषधीनां च वीरुधां च प्रकीर्त्तनम् ।
देवतानामृषीणां च द्वे सृती परिकीर्त्तिते ॥५१

आम्रादीनां तरूणां च सर्जनं व्यजनं तथा ।
पशूनां पुरुषाणां च संभवः परिकीर्त्तितः ॥५२

तथा निर्वचनं प्रोक्तं कल्पस्य च परिग्रहः ।
नव सर्गा पुनः प्रोक्ता ब्रह्मणो बुद्धिपूर्वकाः ॥५३

त्रयो ये बुद्धिपूर्वास्तु तथा लोककल्पनम् ।
ब्रह्मणोऽवयवेभ्यश्च धर्मादीनां समुद्भवः ॥५४

ये द्वादश प्रसूयंते प्रजाकल्पे पुनः पुनः ।
कल्पयोरंतरे प्रोक्तं प्रतिसंधिश्च यस्तयोः ॥५५

तमोमात्रा वृतत्वात्तु ब्रह्मणोऽधर्मसंभवः ।
सत्त्वोद्रिक्ताच्च देहाच्च पुरुषस्य च [illegible] ॥५६

बहुत विस्तार से योजनों के संचरण का वर्णन स्वर्ग स्थान और विभाग जो कि शुभ समाचरण करने वाले मनुष्यों का है उसका वर्णन है ।५०। फिर वृक्षों की, औषधियों की, लताओं की सृष्टि का कीर्त्तन किया गया है । देवगणों और ऋषियों की दो प्रकार की उत्पत्ति बतलायी गयी है ।५१। आम्र आदि वृक्षों की सृष्टि तथा व्यञ्जन की सृजन और पुरुषों का एवं पशुओं का सृजन बताया गया है ।५२। उसी प्रकार से निर्वचन कहा गया है और कल्प का परिग्रहण किया है । इस प्रकार से ब्रह्मा के बुद्धि के साथ नौ सर्ग कहे गये हैं ।५३। जो ये तीन हैं वे बुद्धि से युक्त हैं और जो लोकों की कल्पना है ब्रह्मा के अवयवों से धर्म आदि की उत्पत्ति होती है ।५४। प्रजा के कल्प में जो द्वादश प्रसूत हुआ करते हैं और बार-बार उत्पन्न होते हैं जो उन दोनों की प्रति सन्धि है वह कल्पों के अन्तर में कही गयी है ।५५। तमोगुण की मात्रा से समावृत होने से ब्रह्मा से अधर्म की उत्पत्ति हुआ करती है और सत्त्व के उद्रेक वाले देह से पुरुष की उत्पत्ति होती है ।५६।

तथैव शतरूपायां तयोः पुत्रास्ततः परम् ।
प्रियव्रतोत्तानपादौ प्रसूत्याकूतयः शुभाः ॥५७

कीर्त्यंते धूतपाप्मानस्त्रैलोक्ये ये प्रतिष्ठिताः ।
रुचेः प्रजापतेश्चोर्ध्वं माकूत्यां मिथुनोद्भवः ॥५८

प्रसूत्यामपि दक्षस्य कन्यानामुद्भवः शुभः ।
दाक्षायणीषु चाप्यूर्ध्वं शब्दाद्यासु महात्मनः ॥५९

धर्मस्य कीर्त्यते सर्गः सात्त्विकस्तु सुखोदयः ।
तथाऽधर्मस्य हिंसायां तामसोऽशुभलक्षणः ॥६०
भृग्वादीनामृषीणां च प्रजासर्गोपवर्णनम् ।
ब्रह्मर्षेश्च वसिष्ठस्य यत्र गोत्रानुकीर्तनम् ॥६१
अग्नेः प्रजायाः संभूतिः स्वाहायां यत्र कीर्त्यते ।
पितॄणां द्विप्रकाराणां स्वधायां तदनन्तरम् ॥६२
पितृवंशप्रसंगेन कीर्त्यते च महेश्वरात् ।
दक्षस्य शापः सत्याश्च भृग्वादीनां च धीमताम् ॥६३

उसी प्रकार से ही आकूति में उन दोनों के पुत्र समुत्पन्न हुए थे । इसके आगे प्रियव्रत और उत्तानपाद हुए थे । प्रसूति की परम शुभ आकूतियाँ थीं ।५७। त्रिभुवन में जो प्रतिष्ठा से युक्त थे वे पापों से रहित थे—ऐसा ही कहा जाता है । प्रजापति से रुचि की और फिर आकूति में मिथुन से उत्पत्ति हुई थी ।५८। प्रजापति दक्ष की कन्याओं का प्रसूति में जन्म परम शुभ हुआ तथा दाक्षायणीओं में भी महान् आत्मा वाले धर्म का उद्भव हुआ था ।५९। यह धर्म का जन्म परम सात्त्विक और सुख के उदय वाला सर्ग कहा जाता है । उसी भाँति हिंसा में अधर्म का उद्भव हुआ है जो तामस और अशुभ लक्षण वाला है ।६०। भृगु आदि ऋषियों की प्रजा के सर्ग का उप वर्णन है और जिसमें महर्षि वसिष्ठजी के गोत्र का अनुकीर्त्तन किया है ।६१। जिसमें स्वाहा नाम धारिणी स्वाहा पत्नी में अग्नि की सन्तति का वर्णन किया जाता है । इसके उपरान्त स्वधा नाम की पत्नी में दो प्रकार के पितृगणों का वर्णन किया जाता है ।६२। पितृगणों के वंश के प्रसङ्ग से भगवान् महेश्वर से और सती से दक्ष प्रजापति के लिए शाप का वर्णन है और परम बुद्धिमान भृगु आदि ऋषियों को जो प्रतिशाप दिया गया है उसका वर्णन होता है ।६३।

प्रतिशापश्च दक्षस्य रुद्रादद्भुतकर्मणः ।
प्रतिषेधश्च वैरस्य कीर्त्यते दोषदर्शनात् ॥६४
मन्वन्तरप्रसंगेन कालाख्यानं च कीर्त्यते ।
प्रजापतेः कर्दमस्य कन्यायाः शुभलक्षणम् ॥६६

ततः स्वर्णमयी भूमिर्लोकालोकश्च कीर्त्यते ।
सप्रमाणा इमे लोकाः सप्तद्वीपा च मेदिनी ॥७३
रूपादयः प्रकीर्त्यन्ते करणास्प्राकृतैः सह ।
सर्वं चैतत्प्रधानस्य परिणामैकदेशिकम् ॥७४
पर्यायपरिमाणं च संक्षेपेणात्र कीर्त्यते ।
सूर्याचन्द्रमसोश्चैव पृथिव्याश्चाप्यशेषतः ॥७५
प्रमाणं योजनाग्रेण साम्प्रतैरभिमानिभिः ।
महेन्द्राद्याः शुभाः पुण्या मानसोत्तरमूर्द्धनि ॥७६
अत ऊर्ध्वं गतिश्चोक्ता सूर्यस्यालातचक्रवत् ।
नागवीथ्यक्षवीथ्योश्च लक्षणं च प्रकीर्त्यते ॥७७

योजनों की अग्रता से वहाँ पर उन पर्वतों में जो निवास किया करते [illegible] उनका भी वर्णन किया जाता [illegible] और भारत आदि वर्षों का नदियों [illegible] और पर्वतों के साथ वर्णन किया जाता [illegible] ।७१। जो कि भूतों [illegible] और मतिमान् प्रभुओं के [illegible] वहाँ पर उपनिविष्ट [illegible] उनका कीर्तन किया जाता है । जम्बू द्वीप आदि द्वीप [illegible] समुद्रों के द्वारा घिरे हुए [illegible] ।७२। वहाँ पर स्वर्ण से परिपूर्ण है और वहाँ पर लोकालोक नाम [illegible] पर्वत है—यह बताया जाता है । ये सब लोक प्रमाणों से युक्त [illegible] और सप्तद्वीप तथा पृथिवी है—इनका भी प्रमाण बताया [illegible] है ।७३। करण के प्राकृतों के साथ-साथ रूपादिक का कीर्तन किया [illegible] है । यह सभी कुछ प्रधान के परिणाम का एक देशिक है अर्थात् यह [illegible] प्रकृति के परिणाम के कारण ही होता [illegible] [illegible] इनका पर्याय-परिमाण यहाँ पर बहुत ही संक्षेप के साथ कीर्तित किया जाता है । सूर्य और [illegible] [illegible] तथा पृथिवी का पूर्ण परिमाण [illegible] जाता है ।७५। इस समय में होने वाले उनके अभिमानी अर्थात् स्वामियों [illegible] [illegible] योजनों के हिसाब [illegible] कहा जाता है । मानस के [illegible] में ऊपर परम शुभ और पुण्यमय महेन्द्र आदि हैं—उनका वर्णन है । इसके ऊपर अलात (मशाल) के चक्र की भाँति सूर्य की गति बतायी गयी है । और नागवीथी तथा अक्षवीथी का लक्षण बताया जाता है ।७६-७७।

कोष्ठयोर्लेखयोश्चैव मण्डलानां च योजनैः ।
लोकालोकस्य सन्ध्याया अह्नो विषुवतस्तथा ॥७८

लोकपालाः स्थितास्चोर्द्ध्वं कीर्त्यन्ते ते चतुर्दिशम् ।
पितृणां देवतानां च पन्थानौ दक्षिणोत्तरौ ॥७९
गृहिणां न्यासिनां चोक्तौ रजः सत्वसमाश्रयः ।
कीर्त्यते च पदं विष्णोर्धर्माद्या यत्र च स्थिताः ॥८०
सूर्याचन्द्रमसोश्चारो ग्रहाणां ज्योतिषां तथा ।
कीर्त्यते ध्रुवसामर्थ्यात्प्रजानां च शुभाऽशुभम् ॥८१
ब्रह्मणा निर्मितः सौरः स्यन्दनार्थं च [illegible] स्वयम् ।
कीर्त्यते भगवान्येन प्रसर्पति दिवः क्षयम् ॥८२
स रथाऽधिष्ठितो देवैरादित्यैर्ऋषिभिस्तथा ।
गन्धर्वैरप्सरोभिश्च ग्रामणीसर्पराक्षसैः ॥८३
अपां सारमयास्यन्दात्कथ्यते च रसस्तथा ।
वृद्धिक्षयौ च सोमस्य कीर्त्येते सोमकान्तितो ॥८४

मण्डलों के योजनों के हिसाब से कोष्ठों और मेरुओं का वर्णन है। लोकालोक की सन्ध्या का, दिन का तथा विषुवत् का वर्णन किया जाता [illegible] ।७८। ऊपर की ओर लोकपाल स्थित रहा करते हैं और उनका कीर्त्तन चारों दिशाओं में किया जाता है। पितृगणों और देवगणों के मार्ग क्रम से दक्षिण और उत्तर [illegible] बताये गये हैं ।७९। गृहस्थियों और संन्यासियों का मार्ग रजोगुण और सत्वगुण के समाश्रय वाला कहा गया है और भगवान् विष्णु [illegible] स्थान बताया गया है जहाँ पर धर्म आदि स्थित रहा करते [illegible] ।८०। सूर्य-चन्द्रमा, ज्योतिर्गण और ग्रहों [illegible] सञ्चरण कीर्तित किया जाता है जो कि सामर्थ्य के धारण करने से प्रजाजनों के लिए शुभ और अशुभ हुआ करते हैं। तात्पर्य यह [illegible] कि कुछ शुभ ग्रहों की [illegible] मानवों को शुभ होती है और कुछ पाप ग्रहों के चाल बुरी हुआ करती [illegible] ।८१। ब्रह्माजी ने स्वयं ही सौर की रचना स्यन्दन करने के लिए की है—ऐसा कीर्तित किया जाता है। जिससे भगवान् भुवन भास्कर दिन के [illegible] में क्षय को प्राप्त होवे [illegible] ।८२। यह भगवान् सूर्यदेव रथ पर अधिष्ठित हैं और वे देव-असुर-ऋषि-गण-गन्धर्व-अप्सरा गण—ग्रामवासी-सर्प और राक्षसों के द्वारा जलों के सार को प्राप्त करता है और [illegible] होने से वह रस कहा जाया करता है। [illegible] द्वारा किये गये सोम के वृद्धि तथा क्षय कहे जाते [illegible] ।८३-८४।

सूर्यादीनां स्यन्दनानां ध्रुवादेव प्रवर्त्तनम् ।
कीर्त्यंते शिशुमारस्य यस्य पुच्छे ध्रुवः स्थितः ॥८५
ताराखपाणि सर्वाणि नक्षत्राणि ग्रहैः सह ।
निवासा यत्र कीर्त्यंते देवानां पुण्यकर्मणाम् ॥८६
सूर्यरश्मिसहस्रं च वर्षशीतोष्णविस्रवः ।
प्रविभागश्च रश्मीनां नामतः कर्मतोर्थतः ॥८७
परिमाणं गतिश्चोक्ता ग्रहाणां सूर्यसंश्रयात् ।
वेश्यारूपात्प्रधानस्य परिमाणो महद्भवः ॥८८
पुरूरवस ऐलस्य माहात्म्यस्यानुकीर्त्तनम् ।
पितॄणां द्विप्रकाराणां माहात्म्यं चामृतस्य च ॥८९
ततः पर्वाणि कीर्त्यन्ते पर्वणां चैव संधयः ।
स्वर्गलोकगतानाञ्च प्राप्तानाञ्चाप्यधोगतिम् ॥९०
पितॄणां द्विप्रकाराणां श्राद्धेनानुग्रहो महान् ।
युगसंख्याप्रमाणं च कीर्त्यते च कृतं युगम् ॥९१
त्रेतायुगे चापकर्षाद्वार्त्तायाः संप्रवर्त्तनम् ।
वर्णानामाश्रमाणां च संस्थितिर्धर्मतस्तथा ॥९२

सूर्यादि स्यन्दनों का ध्रुव से ही प्रवर्तन होता है जिस शिशुमार की पुच्छ में स्थित ध्रुव कीर्तित किया जाता है ।८५। ताराओं के रूप वाले समस्त नक्षत्र ग्रहों के साथ रहते हैं जहाँ पर पुण्य कर्मों वाले देवों के निवास बतलाये जाया करते हैं ।८६। सूर्य की सहस्र किरणें, वर्षा, शीत, गर्मी का विस्रव और रश्मियों का विभाग नाम से और कर्म तीर्थ से है ।८७। भगवान् सूर्यदेव के संश्रय से ग्रहों की गति और परिमाण कहे गये हैं । वेश्या रूप से प्रधान का परिमाण महद्भव है ।८८। पुरूरवा और ऐल के माहात्म्य का अनुकीर्त्तन है ।८९। इसके अनन्तर पर्व तथा पर्वों की सन्धियाँ कही जाती हैं । जो प्राणी स्वर्गलोक को प्राप्त होते हैं और जो अधोगति अर्थात् नरकगामी हैं उनका वर्णन है । दोनों प्रकार के पितृगणों का श्राद्ध करने से बड़ा भारी अनुग्रह होता है । सभी युगों की जितने वर्षों की आयु है उनका

कृतयुग (सत्ययुग) वर्णन किया है ।९०-९१। और त्रेतायुग अपकर्ष वार्ता की सम्प्रवृत्ति होती है । उसी भाँति धर्म से चारों वर्णों की और चारों आश्रमों की संस्थिति होती है ।९२।

यज्ञप्रवर्तनं चैव संवादो यत्र कीर्त्यते ।
ऋषीणां वसुना सार्द्धं वसोश्चाधः पुनर्गतिः ।
शब्दत्वं च प्रधानात्तु स्वायम्भुवभृते मनुम् ।।९३
प्रशंसा तपसश्चोक्ता युगावस्थाश्च कृत्स्नशः ।
द्वापरस्य कलेश्चापि संक्षेपेण प्रकीर्त्तनम् ।।९४
मन्वन्तरं च संख्या च मानुषेण प्रकीर्तिता ।
मन्वन्तराणां सर्वेषामेतदेव च लक्षणम् ।।९५
अतीतानागतानां च वर्त्तमानं च कीर्त्यते ।
तथा मन्वन्तराणां च प्रतिसंधानलक्षणम् ।।९६
अतीतानागतानां च प्रोक्तं स्वायम्भुवे ततः ।
ऋषीणां च गतिः प्रोक्ता कालज्ञानगतिस्तथा ।।९७
युगसंख्याप्रमाणं च युगवार्ताप्रवर्त्तनम् ।
त्रेतायां चक्रवर्तीनां लक्षणं जन्म चैव हि ।।९८

और यज्ञ का प्रवर्तन है जहाँ पर सम्वाद कीर्तित किया । ऋषियों वसु के साथ फिर वसु की अधोगति कही गयी है । और स्वायम्भुव मनु के बिना प्रधान है ।९३। और तपश्चर्या की प्रशंसा कही गयी है तथा पूर्णतया युगों की बतायी है । द्वापर और कलियुग का संक्षेप कीर्त्तन किया गया है ।९४। मन्वन्तर और संख्या मानुष से कीर्तित गयी है । समस्त मन्वन्तरों यही लक्षण है ।९५। जो भूत काल में हो चुके हैं और जो भविष्य होने वाले हैं तथा वर्त्तमान काल का कीर्त्तन किया जाता है । उसी भाँति मन्वन्तरों के प्रति सन्धान का लक्षण ।९६। बीते हुए और आगतों के स्वायम्भुव के कहने पर फिर ऋषियों की गति कही गयी तथा काल के की गति बतायी गयी है । युगों की संख्या और प्रमाण तथा युग वार्ता प्रवर्त्तन है । त्रेतायुग में जो चक्रवर्ती राजा थे उनका लक्षण और जन्म कहा है ।९७-९८।

प्रमतेर्जन्म ■■ ■■ जन्मो कलियुगस्य वै ।
अंगुलैर्ह्रासनं चैव भूतानां यच्च चोच्यते ॥९९
शाखानां परिसंख्यानं शिष्यप्राधान्यमेव च ।
वाक्यं सप्तविधं चैव ऋषिगोत्रानुकीर्त्तनम् ॥१००
लक्षणं सूतपुत्राणां ब्राह्मणस्य ■ कृत्स्नशः ।
वेदानां व्यसनं चैव वेदव्यासैर्महात्मभिः ॥१०१
मन्वन्तरेषु देवानां प्रजेशानां च कीर्त्तनम् ।
मन्वन्तरक्रमश्चैव कालज्ञानं ■ कीर्त्यते ॥१०२
दक्षस्य चापि दौहित्राः प्रियाया दुहितुः शुभाः ।
ब्रह्मादिभिस्ते जनिता दक्षेणैव च धीमता ॥१०३
सावर्णाश्चैव कीर्त्यन्ते मनवो मेरुमाश्रिताः ।
ध्रुवस्यौत्तानपादस्य प्रजासर्गोपवर्णनम् ॥१०४
चाक्षुषस्य मनोः सर्गः प्रजानां वीर्यवर्णनम् ।
प्रभुणा चैव वैन्येन भूमिदोहप्रवर्तता ॥१०५

प्रमति के जन्म का कीर्तन और इसके अनन्तर कलियुग के जन्म का वर्णन है । जो व्यतीत हो चुके हैं उनका अंगुलों से ह्रास ■■ होना कहा जाता है ।९९। शाखाओं की परिसंख्या और शिष्यों की प्रधानता कही गयी है । सात प्रकार के वाक्य और ऋषियों के गोत्र ■■ ■■ ■ ।१००। सूत पुत्रों का ■■ और ब्राह्मण का पूर्ण लक्षण है । महान् आत्मा वाले वेद-व्यासों के द्वारा वेदों का व्यसन बताया ■■ है ।१०१। मन्वन्तरों ■ देवों ■■ और प्रजापतियों का कीर्त्तन किया गया है । मन्वन्तर ■■ क्रम और ■■ के ■■ ■■ वर्णन किया है ।१०२। दक्ष-प्रजापति की प्यारी बेटी के परम शुभ दौहित्र (धेवते) वर्णित किये गये हैं । धीमान् ■■ के ही द्वारा ब्रह्मादि ■ से उत्पन्न किये थे ।१०३। यहाँ पर मेरु गिरि पर आश्रय लेने वाले सावर्ण मनुओं का कीर्त्तन किया जाता है । उत्तानपाद राजा के पुत्र ध्रुव की प्रजाओं के उपसर्ग का वर्णन ■ । चाक्षुष मनु के सर्ग ■■ ■ और प्रजाओं के वीर्य—पराक्रम ■■ कथन है । प्रभु वैन्य के द्वारा जो भूमि ■ दोहन करने के लिए प्रवृत्ति हुई थी उसका वर्णन है ।१०४-१०५।

देवत्वमिन्द्रवासेन वायुस्कन्धेषु चाश्रमः ॥११३

दैत्यानां दानवानां च यक्षगंधर्वरक्षसाम् ।
सर्वभूतपिशाचानां यक्षाणां पक्षिवीरुधाम ॥११४

उत्पत्तिश्चाप्सरसां कीर्त्यते बहुविस्तरात् ।
मार्तण्डमण्डलं कृत्स्नं जन्मैरावतहस्तिनः ॥११५

वैनतेयसमुत्पत्तिस्तथा राज्याभिषेचनम् ।
भृगूणां विस्तरश्चोक्तस्तथा चांगिरसामपि ॥११६

कश्यपस्य पुलस्त्यस्य तथैवात्रेर्महात्मनः ।
पराशरस्य च मुनेः प्रजानां यत्र विस्तरः ॥११७

तिस्रः कन्याः सुकीर्त्यन्ते यासु लोकाः प्रतिष्ठिताः ।
इच्छाया विस्तरश्चोक्त आदित्यस्य ततः परम् ॥११८

किकुविच्चरितं प्रोक्तं ध्रुवस्येव निबर्हणम् ।
बृहद्बलानां संक्षेपादिक्ष्वाक्वाद्याः प्रकीर्त्तिताः ॥११९

इसमें मरुतों के गणों के सात सात अर्थात् उनचास कीर्त्तित किये जाते हैं। इनको इन्द्र के वास होने से देवत्व है तथा वायु के स्कन्धों में आश्रम है ।११३। दैत्यों की—दानवों की और यक्ष—गन्धर्व तथा राक्षसों की—सब भूत और पिशाचों की—यक्षों की—पक्षियों की और वीरुधों की उत्पत्तियाँ हुई थीं ।११४। इन सबकी उत्पत्तियों का और अप्सराओं की उत्पत्ति का बहुत विस्तृत कीर्त्तन किया गया है। सम्पूर्ण मार्तण्ड मण्डल का और ऐरावत हस्ती का जन्म बताया गया है ।११५। वैनतेय की उत्पत्ति और राज्य पर अभिषेक का वर्णन है। भृगुओं का और अङ्गिराओं का विस्तार कहा गया है ।११६। जहाँ पर कश्यप—पुलस्त्य और महात्मा अत्रि तथा पराशर मुनि की प्रजाओं का विस्तार बताया गया है ।११७। तीन कन्याएँ बतायी जाती हैं जिनमें सबलोक प्रतिष्ठित हैं। इच्छा का विस्तार कहा गया है और इसके बाद आदित्य का विस्तृत वर्णन है ।११८। किकुवित् का चरित कहा गया है। ध्रुव का निबर्हण है। बृहद्बलों का वर्णन है और संक्षेप से इक्ष्वाकु आदि कहे गये हैं ।११९।

निश्यादीनां क्षितीशानां पलीबुहरणादिभिः ।
कीर्त्यंते विस्तरात्सर्वो ययातेरपि भूपतेः ॥१२०

भृगु का शाप ... किया था और भृगु ने शुक्र ... विष्णु ... को उठाया था ।१२७।

देवानां च ऋषीणां च संक्रमा द्वादशाहुता: ।
नारसिंहप्रभृतय: कीर्त्यन्ते पापनाशना: ॥१२८
शुक्रेणाराधनं स्थाणोर्घोरेण तपसा तथा ।
वरप्रदानकृत्तेन यत्र शर्वस्तव: कृत: ॥१२९
अनन्तरं च निर्दिष्टं देवासुरविचेष्टितम् ।
जयंत्या सह शक्रेण यत्र शुक्रो महात्मनि ॥१३०
असुरान्मोहयामास शक्ररूपेण बुद्धिमान् ।
बृहस्पति तं शुक्रं शशाप स महाद्युति: ॥१३१
उक्तं ... विष्णोर्माहात्म्यं विष्णोर्जन्मनि शब्द्यते ।
तुर्वसुश्चात्र दौहित्रो यवीयान्यो यदोरभूत् ॥१३२
अनुद्रुह्यादय: सर्वे तथा तत्सुता नृपा: ।
अनुवंश्या महात्मानस्तेषां पार्थिवसत्तमा: ॥१३३

देवों के और ऋषियों ... संक्रम ... द्वादश आहुत हुए थे । नारसिंह प्रभृति पापों के नाश करने वाले कीर्तित किये गये ... ।१२८। अत्यन्त घोर तप के द्वारा शुक्र देव ने भगवान् शिव की आराधना की थी । फिर उसने वर के प्रदान करने वाले भगवान् शिव की स्तुति ... ... ।१२९। इसके उपरान्त देवों और असुरों की विशेष चेष्टा ... निर्देश किया गया ... जहाँ पर महात्मा में शुक्र ने जयन्ती के साथ इन्द्र ने किया था ।१३०। बुद्धिमान् ने इन्द्र ... ... से असुरों को मोहित ... किया ... । और महती द्युति वाले बृहस्पति ने शुक्राचार्य को शाप ... दिया था ।१३१। भगवान् विष्णु के जन्म में विष्णु का माहात्म्य कहा जाता है । यहाँ पर तुर्वसु दौहित्र था जो यदु का सब ... छोटा हुआ ... ।१३२। अनुद्रुह्य आदि ... नृप उसके पुत्र हुए थे । उसके महात्मा श्रेष्ठ नृप उनके पीछे वंश में होने वाले ... थे ।१३३।

कीर्त्यंते यत्र कार्त्स्न्येन भूरिद्रविणतेजस: ।
आतिथ्यस्य तु विप्रर्षे: सप्तधा धर्मसम्पदात् ॥१३४
बार्हस्पत्यं सूरिभिश्च यत्र शापमुपागतम् ।

हरवंशयशः स्पर्शः शंतनोर्वीर्यसम्पदनम् ॥१३५

भविष्यतां ▬ राज्ञामुपसंहारशब्दनम् ।

अनागतानां संघानां प्रभूणां चोपवर्णनम् ॥१३६

मौत्यस्यान्ते कलियुगे क्षीणे संहारवर्णनम् ।

नैमित्तिकाः प्राकृतिका यथैवात्यंतिकाः स्मृताः ॥१३७

त्रिविधः सर्वभूतानां कीर्त्यंते प्रतिसंचरः ।

अनावृष्टिर्भास्करस्य घोरः संवर्तकानलः ॥१३८

सांख्ये लक्षणमुद्दिष्टं ततो ब्रह्म विशेषतः ।

ध्रुवादीनां च लोकानां सप्तानां चोपवर्णनम् ॥१३९

अपारार्द्धपरैश्चैव लक्षणं परिकीर्त्यते ।

ब्रह्मणो योजनाग्रेण परिमाणविनिर्णयः ॥१४०

कीर्त्यन्ते चात्र निरयाः पापानां रौरवादयः ।

सर्वेषां चैव सत्वानां परिणामविनिर्णयः ॥१४१

वहाँ पर पूर्णरूप ▬ अधिक हव्य और तेज वाले विप्रर्षि के धर्म के संचय से आतिथ्य का कीर्त्तन किया ▬ है ।१३४। वहाँ पर सुरियों ने बृहस्पति के शाप को प्राप्त किया था। हर वंश ▬ यश का स्पर्श है और राजा शन्तनु के वीर्य पराक्रम का ▬ ▬ ।१३५। आगे भविष्य में होने वाले राजाओं के उपसंहार का कथन है। जो अनागत संघ ▬ और प्रभु ▬ ▬ उपवर्णन है ।१३६। मौत्य के ▬ में कलियुग के क्षीण हो जाने पर संहार का वर्णन है। जो भी किसी निमित्त के कारण होने वाले थे, प्राकृतिक ▬ और जो आत्यन्तिक कहे गये हैं ।१३७। समस्त प्राणियों का अनेक ▬ का प्रति सञ्चरण था उसका कीर्त्तन किया जाता है। भगवान् भास्कर का दृष्टि में न आने ▬ परम घोर संवर्त्तक अनल ▬ ।१३८। सांख्य में ▬ उद्दिष्ट है इसके बाद विशेष ▬ से ब्रह्म का वर्णन है। ध्रुव आदि सात लोकों का उप वर्णन है ।१३९। अपरार्द्ध परों के द्वारा लक्षण का परिकीर्त्तन किया ▬ है। योजनाग्र से ब्रह्म के परिमाण का विशेष निर्णय किया गया ▬ ।१४०। रौरव आदि नरकों का ▬ सभी प्राणियों के पापों के निर्णय ▬ वर्णन किया ▬ है ।४१।

गंधर्वरक्षितं दृष्ट्वा कलापग्राममेकतनम् ।
सन्निपातः पुनस्तस्य तथा यज्ञे महर्षिभिः ॥१६४

दृष्ट्वा हिरण्मयं सर्वं विवादस्तस्य तैरभूत् ।
तदा वै नैमिषेयानां सत्रे द्वादशवार्षिके ॥१६५

तथा विवदमानैश्च वसुः संस्थापितश्च तैः ।
जनयित्वा त्वरण्यं वै वसुपुत्रमथायुतम् ॥१६६

समापयित्वा तत्सत्रं वायुं ते पर्युपासत ।
इति कृत्यसमुद्देशः पुराणाणोपवर्णितः ॥१६७

अनेनानुक्रमेणैव पुराणं संप्रकाशते ।
सुखमर्थः समासेन महानप्युपलभ्यते ॥१६८

[illegible] भूमि को सीमा [illegible] रहित करके उन्होंने राजी कृष्ण [illegible] अपहरण किया था। उस समय में उन्होंने विधि के [illegible] प्रीति को प्रवर्तित किया था और उनका भली-भाँति आतिथ्य भी किया था ।१६२। अम्बर से क्रूर और सब जगह जाने वाले स्वर्भानु असुर ने हरण किया था। राजा के शीघ्र जाने पर मुनि राजा [illegible] ही पीछे गामित हो गये थे ।१६३। कलाप ग्राम केतन को गन्धर्वों के द्वारा सुरक्षित देखकर फिर उसका सन्निपात हुआ था। इसी प्रकार [illegible] यज्ञ में महर्षियों ने देखा था ।१६४। वहाँ पर सभी कुछ सुवर्णमय उन्होंने देखा था और उनका उसके साथ विवाद हुआ था। [illegible] अवसर पर नैमिषेयों का वह सत्र (यज्ञ) बारह वर्ष [illegible] था [illegible] यज्ञ में ।१६५। [illegible] भाँति परस्पर में विवाद करने वाले उन्होंने वसु को संस्थापित किया था। इसके अनन्तर अमृत वसु के पुत्रों वाले उस अरण्य को [illegible] दिया था ।१६६। [illegible] यज्ञ की परिसमाप्ति करके उन्होंने वायुदेव की [illegible] की थी। यह कृत्यों का समुद्देश है जो पुराण के इस अंश में उपवर्णित किया गया है। ।१६७। इसी अनुक्रम से यह पुराण संप्रकाशित होता है [illegible] से सुख अर्थ होता [illegible] और इससे महान् भी उपलक्षित होता है ।१६८।

तस्मात्समासमुद्दिश्य वक्ष्यामि [illegible] विस्तरम् ।
पादमाद्यमिदं सम्यक् योऽधीते विजितेंद्रियः ॥१६९

तेनाधीतं पुराणं स्यात्सर्वं नास्त्यत्र संशयः ।
यो विद्याच्चतुरो वेदान् सांगोपनिषदान् द्विजाः ॥१७०

उर्वशी चकमे तं च देवदूतप्रचोदिता ।
आजहार च तत्सत्रमुर्वश्या सह संगतः ॥१६
तस्मिन्नरपतौ सत्रे नैमिषीयाः प्रचक्रिरे ।
यं गर्भं सुषुवे गङ्गा पावकाद्दीप्ततेजसम् ॥१७
तत्तुल्यं पर्वते न्यस्तं हिरण्यं समपद्यत ।
हिरण्मयं ततश्चक्रे यज्ञवाटं महात्मनाम् ॥१८
विश्वकर्मा स्वयं देवो भावनो लोकभावनः ।
स प्रविश्य ततः सत्रे तेषाममिततेजसाम् ॥१९
ऐलः पुरूरवा भेजे तं देशं मृगयां चरन् ।
तं दृष्ट्वा महदाश्चर्यं यज्ञवाटं हिरण्मयम् ॥२०
लोभेन हृतविज्ञानस्तदादातुमुपाक्रमत् ।
नैमिषेयास्ततस्तस्य चुक्रुधुर्नृपतिं भृशम् ॥२१

अट्ठारह समुद्र के द्वीपों का अशन करते हुए भी पुरूरवा लोभ से रत्नों से सन्तुष्ट न हुआ था—ऐसा हमने सुना है ।१५। देवदूतों के द्वारा प्रेरित हुई उर्वशी ने उसको अपना पति बनाने की कामना की थी । उर्वशी के साथ संगत होकर उसने उस सत्र का आहरण किया था ।१६। उस नर पति के होने पर नैमिषीयों ने सत्र किया था । गङ्गा ने पावक से दीप्त तेज वाले जिस गर्भ का प्रसव किया था ।१७। उसके तुल्य पर्वत में न्यस्त किया हुआ हिरण्य (सुवर्ण) हो गया था । इसके अनन्तर उन महात्माओं को हिरण्मय कर दिया था ।१८। लोकों को प्रसन्न करने वाले परम भावुक विश्वकर्मा स्वयं देव था । उन अपरिमित तेज वालों के सत्र में फिर उस विश्वकर्मा ने प्रवेश किया था । ऐल पुरूरवा ने शिकार करते हुए उस देश का सेवन किया था । उसने जब देखा था कि वह यज्ञ का स्थल एकदम सुवर्णमय है तो उसको महान् आश्चर्य हुआ था ।१९-२०। लोभ के कारण उस राजा का ज्ञान नष्ट हो गया था और उसने उसको स्वयं ग्रहण करने का उपक्रम किया था । तब तो जो नैमिषीय मुनिगण वहाँ पर थे वे उस राजा पर बहुत क्रुद्ध हुए थे ।२१।

निजघ्नुश्चापि तं क्रुद्धाः कुशवज्रैर्मनीषिणः ।
तपोनिष्ठाश्च राजानं मुनयो देवचोदिताः ॥२२

कुशवज्रैर्विनिष्पिष्टः स राजा व्यजहात्तनुम् ।
औवंशेयैस्ततस्तस्य युद्धं चक्रे नृपो भुवि ॥२३
नहुषस्य महात्मानं पितरं यं प्रचक्षते ।
स तेष्ववभृथेष्वेव धर्मशीलो महीपतिः ॥२४
आयुरायश्चवायाय यमस्मिन् सत्रे नरोत्तमः ।
शान्तयित्वा ■ राजानं तदा ब्रह्मविदस्तथा ॥२५
सत्रमारेभिरे कर्त्तुं पृथ्वीवत्सात्ममूर्त्तयः ।
बभूव सत्रे तेषां तु ब्रह्मचर्यं महात्मनाम् ॥२६
विश्वं सिसृक्षमाणानां पु.रा विश्वसृजामिव ।
वैखानसैः प्रियसखैर्वालिखिल्यैर्मरीचिभिः ॥२७
अजैश्च मुनिभिर्जुष्टं सूर्यवैश्वानरप्रभः ।
पितृदेवाप्सरः सिद्धैर्गंधर्वोरगचारणैः ॥२८

उन मनीषियों ने बहुत क्रोधित होते हुए कुश ■ वज्रों से उसका हनन किया था क्योंकि वे मुनिगण तपश्चर्या में निष्ठा रखने वाले और दैव ■ द्वारा प्रेरित ■ ।२२। कुशाओं के वज्रों ■ पिसकर उस राजा ने अपना शरीर त्याग दिया था । उसके अनन्तर भूमि में उसके उर्वशी ■ पुत्रों ■ साथ नृप ने युद्ध किया था ।२३। नहुष के जिसको महात्मा पिता कहते हैं । ■■ ■■ भृथों ■ ही वह महीपति बहुत ही धर्मशील था ।२४। इस सत्र में वह नर-श्रेष्ठ आयुराय और अश्व ■ बहुत श्रेष्ठ था । उस समय में ब्रह्म वेत्ताओं ने राजा को शान्त किया था ।२५। आत्म मूर्ति वाले उन्होंने पृथ्वी के ■■■ ■■ करने का आरम्भ कर दिया था उनके ■■ में उन महात्माओं का ब्रह्म-चर्य हुआ था ।२६। विश्व ■ सृजन करने की इच्छा वाले का प्राचीनकाल में विश्व ■ स्रष्टाओं की भाँति वैखानस-प्रियसखा-वालखिल्य-मरीचियों-अज और मुनिगण-पितृगण-देव-अप्सरा-सिद्ध-गन्धर्व-उरग और चारण के साथ वह सूर्य तथा वैश्वानर के समान प्रभा वाला हुआ था ।२७-२८।

भारतैः शुशुभे राजा देवैरिन्द्रसमो यथा ।
स्तोत्रशस्त्रैर्ग्रहैर्देवान्पितॄन्पित्र्यैश्च कर्मभिः ॥२९
आनर्चुः स्म यथाजाति गंधर्वादीन् यथाविधि ।

आराधने स सस्मार [illegible] कर्मान्तरेषु च ॥३०

जगुः सामानि गन्धर्वा ननृतुश्चाप्सरोगणाः ।

व्याजह्रुर्मुनयो वाचं चित्राक्षरपदां शुभाम् ॥३१

मन्त्रादि तत्र विद्वांसो जजपुश्च परस्परम् ।

वितण्डावचनैश्चैव निजघ्नुः प्रतिवादिनः ॥३२

ऋषयश्चैव विद्वांसः शब्दार्थन्यायकोविदाः ।

न तत्र हारितं किंचिद्विविशुर्ब्रह्मराक्षसाः ॥३३

नैव यज्ञहरा दैत्या नैव वाजमुखास्त्रिणः ।

प्रायश्चित्तं दरिद्रं [illegible] न तत्र समजायत । ३४

शक्तिप्रज्ञाक्रियायोगैर्विधिरासीत्स्वनुष्ठितः ।

एवं च ववृधे सत्रं द्वादशाब्दं मनीषिणाम् ॥३५

भारतीयों के द्वारा राजा देवगणों से इन्द्र [illegible] समान शोभायुक्त हुआ था । शस्त्रों-स्तोत्रों और गुह्यों से देवगणों का तथा दिव्य कर्मों [illegible] पितृगणों [illegible] और गन्धर्व आदि [illegible] जाति के अनुसार विधिपूर्वक किया करते थे । उसने आराधना में और फिर अन्य कर्मों में स्मरण किया था ।२९-३०। गन्धर्वगण सामवेद के मन्त्रों का गान कर रहे थे परम शुभ और विचित्र अक्षरों और पदों से युक्त वाणी का उच्चारण कर रहे [illegible] जो परम शुभ थी ।३१। वहाँ पर विद्वान् लोग परस्पर में मन्त्रों [illegible] जप करते [illegible] । प्रतिवादी गण वितण्डावाद [illegible] वचनों के द्वारा निहनन कर रहे [illegible] ।३२। ऋषिगण और शब्दार्थ तथा न्याय के ज्ञाता वहाँ पर थे । वहाँ पर कुछ भी हारित नहीं [illegible] और ब्रह्मराक्षसों ने प्रवेश किया [illegible] ।३३। दैत्यगण [illegible] [illegible] हरण करने वाले नहीं [illegible] और वाजमुख असुर आदि थे । प्रायश्चित्त और दरिद्रता वहाँ पर नहीं थे ।३४। शक्ति-प्रज्ञा और क्रिया के योगों [illegible] शक्तियों [illegible] विधि अनुष्ठित की गयी थी । इस रीति से यह यज्ञ मनीषियों [illegible] बारह वर्ष पर्यन्त वृद्धि युक्त हुआ [illegible] ।३५।

ऋषीणां नैमिषीयाणां तदभूदिव यज्विनः ।

वृद्धाया ऋत्विजो वीरा ज्योतिष्टोमान् पृथक्पृथक् ॥३६

चक्रिरे पृष्ठगमनाः सर्वानयुतदक्षिणान् ।

लिंगमात्रं समुत्पन्नं क्षेत्राधिष्ठितं महत् ॥१५

संकल्पोऽध्यवसायश्च तस्य वृत्तिद्वयं स्मृतम् ।

महासृष्टिं च कुरुते चोद्यमानः सिसृक्षया ॥१६

धर्मादीनि च भूतानि लोकतत्त्वार्थहेतवः ।

मनो महात्मनि ब्रह्म पुर्बुद्धिः ख्यातिरीश्वरात् ॥१७

प्रज्ञासंधिश्च सर्वस्वं संख्यायतनरश्मिभिः ।

मनुते सर्वभूतानां तस्माच्चेष्टफलो विभुः ॥१८

भोक्ता भाता विभक्तात्मा वर्तनं च उच्यते ।

तत्त्वानां संग्रहे यस्मान्महांश्च परिमाणतः ॥१९

शेषेभ्यो गुणतत्त्वेभ्यो महानिव तनुः स्मृतः ।

विभक्तिमानं मनुते विभागं मन्यतेऽपि वा ॥२०

पुरुषो भोगसंबंधात्तेन चासौ सति स्मृतः ।

बृहत्त्वाद् बृंहणत्वाच्च भावानामखिलाश्रयात् ॥२१

सबसे यह महान् एक मानने योग्य है। और एक ही कारण कहा गया है क्षेत्र में अधिष्ठित महत् केवल लिङ्ग ही समुत्पन्न हुआ था ।१५। उसकी दो प्रकार की वृत्ति बतायी गयी है—एक तो सङ्कल्प और दूसरी वृत्ति अध्यवसाय है। सृजन करने की इच्छा से प्रेरित वह इस महती सृष्टि को किया करता है ।१६। और धर्म आदि भूत लोकतत्त्वार्थ के हेतु हैं। महान् आत्मा में मन ही ब्रह्म है और ईश्वर से इसकी पुर्बुद्धि यह ख्याति है ।१७। संख्यायतन रश्मियों से सब भूतों की प्रज्ञा सन्धि सर्वस्व मानता है। इस कारण से विभु चेष्टा के फल वाला होता है ।१८। भोक्ता (भोगने वाला) परित्राण करने वाला-विभक्त आत्मा वाला बरतने वाला जो है वही कहा जाता है। जिसमें तत्त्वों के संग्रह में है और परिणाम से महान् है ।१९। शेष जो गुणों के तत्त्व हैं उनके महान की ही भाँति तनु कहा गया है। विभक्ति से युक्त को मानता है अथवा विभाग को मानता है ।२०। यह पुरुष उसके द्वारा अर्थात् शरीर के द्वारा भोगों का सम्बन्ध होने से सत् में कहा गया है। बृहत् होने से और बृंहणत्व होने से और भावों का पूर्ण आश्रय होने से पैदा होता है ।२१।

यस्माद् बृंहयते भावान् ब्रह्मा तेन निरुच्यते ।
आपूरयति यस्माच्च सर्वान् देहाननुग्रहैः ॥२२
बुध्यते पुरुषश्चात्र सर्वान् भावान्पृथक् पृथक् ।
तस्मिंस्तु कार्यकरणं संसिद्धं ब्रह्मणः पुरा ॥२३
प्राकृतं देवि वर्गं मां क्षेत्रज्ञो ब्रह्मसंमितः ।
स वै शरीरी प्रथमः पुरा पुरुष उच्यते ॥२४
आदिकर्त्ता स भूतानां ब्रह्माग्रे समवर्त्तिनाम् ॥२५
हिरण्यगर्भः सोऽण्डेऽस्मिन्प्रादुर्भूतश्चतुर्मुखः ।
सर्गे च प्रतिसर्गे च क्षेत्रज्ञो ब्रह्म संमितः ॥२६
करणैः सह पृच्छते प्रत्याहारैस्त्यजंति च ।
भजंते च पुनर्देहांस्ते समाहारसंधिषु ॥२७
हिरण्मयस्तु यो मेरुस्तस्योद्धर्तुं महात्मनः ।
गर्तोदकं संबुदास्तु हरेयुश्चापि पञ्चजाः ॥२८

जिससे भावों का बृंहण करता है उसी से ब्रह्मा—इस नाम से कहा जाया करता है । और जिस कारण से समस्त देहों को अनुग्रहों के द्वारा आपूरित करता है ।२२। यहाँ पर पुरुष सब भावों को पृथक् पृथक् जानता है । उसमें तो पहले ब्रह्मा का कार्य और करण से सिद्ध हुआ है ।२३। हे देवि ! मुझको प्राकृत समझकर बतलाया करो । जो क्षेत्रज्ञ है वह ब्रह्मा से संमित है । वह शरीर धारी निश्चय ही पहिले पुरुष कहा जाया करता है ।२४। ब्रह्मा के आगे समवर्ती भूतों का वह आदि कर्त्ता है ।२५। वह हिरण्यगर्भ इस अण्ड में चार मुखों वाला प्रादुर्भूत हुआ था । सर्ग और प्रतिसर्ग में क्षेत्रज्ञ ब्रह्म संमित है ।२६। करणों के साथ पूछते हैं और प्रत्याहारों से त्याग करते और वे पुनः समाहार सन्धियों में देहों का सेवन करते हैं ।२७। हिरण्मय जो मेरु गिरि है उस महान आत्मा वाले के गर्तोदक का उद्धार करने के लिये संबुद्ध पञ्चजा भी हरण करते हैं ।२८।

यस्मिन्नंड इमे लोकाः सप्त वै संप्रतिष्ठिताः ।
पृथिवी सप्तभिर्द्वीपैः समुद्रैः सह सप्तभिः ॥२९
पर्वतैः सुमहद्भिश्च नदीभिश्च सहस्रशः ।
अन्तः स्थस्य त्विमे लोका अंतर्विश्वमिदं जगत् ॥३०

चन्द्रादित्यौ सनक्षत्रौ संग्रहः सह वायुना ।
लोकालोकं च यत् किंचिदण्डे तस्मिन्प्रतिष्ठितम् ॥३१
आपो दशगुणेनैव तेजसा बाह्यतो वृताः ।
तेजो दशगुणेनैव बाह्यतो वायुना वृतम् ॥३२
वायुर्दशगुणेनैव बाह्यतो नभसा वृतः ।
आकाशमावृतं सर्वं बहिर्भूतादिना तथा ॥३३
भूतादिसंवृता चैव प्रधानेनावृतो महान् ।
एभिरावरणैरण्डं सप्तभिः प्राकृतैर्वृतम् ॥३४
इच्छया वृत्य चान्योन्यमरणे प्रकृतयः स्थिताः ।
प्रसर्गकाले स्थित्वा च ग्रसंतश्च परस्परम् ॥३५

जिस अण्ड [illegible] ये सात लोक संप्रतिष्ठित [illegible] । इनमें पृथिवी है जो सात द्वीपों से और सात समुद्रों से युक्त है इस पृथ्वी [illegible] महान् पर्वत [illegible] और सहस्रों नदियाँ भी विद्यमान हैं । अन्दर स्थित इसके ये सब लोक हैं और अन्दर में रहने विश्व में यह जगत रहता है ।२६-३०। समस्त नक्षत्रों के साथ चन्द्रमा और सूर्य [illegible] तथा वायु के साथ संग्रह है । और लोकालोक [illegible] । जो कुछ भी है । वह सब [illegible] प्रतिष्ठित [illegible] अर्थात् विद्यमान रहा करता [illegible] ।३१। [illegible] गुने तेज के साथ बाहिर की ओर जल आवृत रहते हैं । दश गुणित वायु के द्वारा [illegible] तेज भी आवृत रहता है ।३२। दश गुने नभ (आकाश) [illegible] वायु युत रहता [illegible] जोकि बाहिर की ओर है । फिर [illegible] सम्पूर्ण बाहिर भूतादि [illegible] आवृत [illegible] ।३३। भूतादिक महान [illegible] समावृत [illegible] और महान प्रधान [illegible] द्वारा आवृत है । इन [illegible] प्राकृत आवरणों के द्वारा यह अण्ड [illegible] रहा करता है ।३४। एक दूसरे के [illegible] में परस्पर [illegible] इच्छा से आवृत प्रकृतियाँ स्थित हैं और प्रसर्ग के अर्थात् प्रसूयन के समय में स्थित होकर परस्पर में ग्रसन किया करती हैं ।३५।

एवं परस्परोत्पन्ना धारयंति परस्परम् ।
आधाराधेयभावेन विकारास्ते विकारिषु ॥३६
अव्यक्तं क्षेत्रमित्युक्तं ब्रह्म क्षेत्रज्ञमुच्यते ।
इत्येवं प्राकृतः सर्गः क्षेत्रज्ञाधिष्ठितस्तु सः ॥३७

अबुद्धिपूर्वः प्रथमः प्रादुर्भूतस्तडिद्यथा ।

एतद्धिरण्यगर्भस्य जन्म यो वेत्ति तत्त्वतः ।

आयुष्मान्कीर्तिमान्धन्यः प्रज्ञावांश्च न संशयः ॥३८

इस प्रकार से परस्पर में एक दूसरे को धारण किया करते हैं। [illegible] विकार वालों [illegible] आधार और आधेय के [illegible] [illegible] वे सब विकार होते [illegible]। ।३६। इस अव्यक्त को ही क्षेत्र कहा [illegible] [illegible] और ब्रह्म क्षेत्रज्ञ कहा [illegible] करता है। इस रीति से यह प्राकृत सर्ग [illegible] और वह क्षेत्रज्ञ से अधिष्ठित होता है।३७। प्रथम अबुद्धि पूर्वक होता है जिस तरह [illegible] तड़ित होती है। हिरण्यगर्भ का जन्म जो तात्त्विक [illegible] [illegible] जानता है वह आयु वाला—कीर्ति से समन्वित-धन्य और प्रज्ञा वाला होता है—इसमें लेशमात्र भी संशय नहीं [illegible] ।३८।

॥ लोक—वर्णन (३) ॥

सूत उवाच—आत्मन्यवस्थिते व्यक्ते विकारे प्रतिसंहृते ।

साधर्म्येणावतिष्ठेते प्रधानपुरुषौ तदा ॥१

तमः सत्त्वगुणावेतौ समत्वेन व्यवस्थितौ ।

अनुद्रिक्तावनुभवौ तेन प्रोक्तौ परस्परम् ॥२

गुणसाम्ये लयो ज्ञेय आधिक्ये सृष्टिरुच्यते ।

सत्त्ववृद्धौ स्थितिरभूद् ध्रुवं रथाभिव्यास्थितम् ॥३

यथा तमसि सत्त्वे च रजोप्यनुगतं स्थितम् ।

रजः प्रवर्तक तच्च बीजेष्विव [illegible] जलम् ॥४

गुणा वैषम्यमासाद्य प्रसंगेन प्रतिष्ठिताः ।

गुणेभ्यः क्षोभ्यमाणेभ्यस्त्रयो ज्ञेया हि सादरे ॥५

शाश्वताः परमा गुह्याः सर्वात्मानः शरीरिणः ।

सत्त्वं विष्णु रजो ब्रह्मा तमो रुद्रः प्रजापतिः ॥६

रजः प्रकाशको विष्णुर्ब्रह्मस्रष्टुत्वमाप्नुयात् ।

जायते च यतश्चित्रा लोकसृष्टिर्महौजसः ॥७

श्रीसूतजी ने कहा—व्यक्त के कारण में अवस्थित होने पर और विकार के प्रति संहृत हो जाने पर उस समय में प्रधान और पुरुष सहधर्मता के साथ अवस्थित हुआ करते हैं।१। तमोगुण और सत्वगुण ये दोनों [illegible] से व्यवस्थित हुआ करते हैं। उसके [illegible] ये उद्रिक्त नहीं होते [illegible] और परस्पर से उसके अनुगामी रहा करते हैं।२। जब इन गुणों की [illegible] होती है तो उस समय में [illegible] जान लेना चाहिए और जब इनमें किसी भी अधि- [illegible] अर्थात् परस्पर में विषमता होती है तो [illegible] [illegible] में सृष्टि कही जाया करती [illegible] सत्व की वृद्धि में स्थिति हुई थी और ध्रुव पद्म शिखा में होता है और वह बीजों में जल के ही समान प्रवर्त्तक होता है।४। ये गुण विषमता की दशा को प्राप्त करके प्रसङ्ग से प्रतिष्ठित होते हैं। गुणों के क्षोभ्यमाण होने से [illegible] तीनों गुण बड़े आदर में जानने के योग्य होते हैं।५। ये शाश्वत अर्थात् नित्य रहने वाले हैं—परमगुण हैं—सबकी आत्मा [illegible] और शरीरधारी हैं। सत्वगुण विष्णु हैं—रजोगुण प्रजापति ब्रह्मा [illegible] और तमोगुण साक्षात् रुद्र देव हैं।६। रजोगुण के प्रकाशक विष्णु ब्रह्मा के ब्रह्म होने की अवस्था को प्राप्त किया करते हैं। जिस महान् ओज वाले [illegible] यह विविध प्रकार की सृष्टि समुत्पन्न हुआ करती है।७।

तमः प्रकाशको विष्णुः कालत्वेन व्यवस्थितः ।
सत्वप्रकाशको विष्णुः स्थितित्वेन व्यवस्थितः ॥८

एत एव त्रयो लोका एत एव त्रयो गुणाः ।
एत एव त्रयो वेदा एत एव त्रयोऽग्नयः ॥९

परस्पराश्रया ह्येते परस्परमनुव्रताः ।
परस्परेण वर्त्तन्ते प्रणयन्ति परस्परम् ॥१०

अन्योन्यं मिथुनं ह्येते अन्योन्यमुपजीविनः ।
क्षणं वियोगो न ह्येषां न त्यजंति परस्परम् ॥११

प्रधानगुणवैषम्यात्सर्गकाले प्रवर्त्तते ।
अदृष्टाऽधिष्ठितात्पूर्वं तस्मात्सदसदात्मकात् ॥१२

ब्रह्मा बुद्धिश्च मिथुनं युगपत्संबभूव [illegible] ।
तस्मात्तमोऽव्यक्तमयं क्षेत्रज्ञो ब्रह्मसंज्ञकः ॥१३

अर्थों के तत्वों का ज्ञाता होगा ।४८। वह अपने पितरों के गौरव से सुसमन्वित होगा और महान यत्न से परम घोर तप करके निश्चय ही स्वर्ग से यहाँ पर गङ्गा को लावेगा ।४९।

तदंभसा पावितेषु तेषां गात्रास्थिभस्मसु ।
प्राप्नुवंति गतिं स्वर्गे भवतः पितरोऽखिला ॥५०
तथेति तस्या माहात्म्यं गंगाया नृपनन्दन ।
भागीरथीति लोकेऽस्मिन्सा विख्यातिमुपैष्यति ॥५१
यत्तोयप्लावितेष्वस्थिभस्मलोमनखेष्वपि ।
निरयादपि संयाति देही स्वर्लोकमक्षयम् ॥५२
तस्मात्त्वं गच्छ भद्रं ते न शोकं कर्तुमर्हसि ।
पितामहाय चैवैनमश्वं संप्रतिपादय ॥५३
जैमिनिरुवाच—
ततः प्रणम्य तं भक्त्या तथेत्युक्त्वा महामतिः ।
ययौ तेनाभ्यनुज्ञातः साकेतनगरं प्रति ॥५४
सगरं स समासाद्य तं प्रणम्य यथाक्रमम् ।
न्यवेदयच्च वृत्तांतं मुनेस्तेषां तथात्मनः ॥५५
प्रददौ तुरगं चापि समानीतं प्रयत्नतः ।
अतः परमनुष्ठेयमत्रार्थोक्तिं मयेति च ॥५६

उस परम पावनी गङ्गा के पुनीत जल से उन सबके गात्र-अस्थि और भस्म के पवित्र हो जाने पर ये समस्त आपके पितृगण स्वर्ग में गति को प्राप्त करेंगे ।५०। हे नृपनन्दन ! उस गङ्गा का माहात्म्य ही ऐसा अद्भुत है। राजा भगीरथ के द्वारा यहाँ लाने से इस लोक में उसका नाम भागीरथी प्रसिद्ध होगा ।५१। गङ्गा का बड़ा अद्भुत माहात्म्य होता है कि उसके जल में किसी भी प्राणी की अस्थि-भस्म-नख आदि कोई भी भाग जब प्लावित हो जाता है तो वह प्राणी नरक की यातनाओं से भी मुक्त होकर अक्षय स्वर्गलोक में चला जाया करता है ।५२। इस कारण से अब आप यहाँ से चले जाइए—आपका कल्याण होगा—आपको कुछ भी शोक नहीं करना चाहिए। अपने पितामह को यह अश्व ले जाकर दे दो ।५३। जैमिनि मुनि

एकधा स द्विधा चैव त्रिधा च बहुधा पुनः ।
योगीश्वरः शरीराणि करोति विकरोति च ॥२१

यह प्रथम ही शरीर था जो कि धारणत्व से व्यवस्थित था। वहाँ पर अनुपम ज्ञान है और वैराग्य से सम्प्रति था। इसके अव्यक्तता के लिए उस मन से वह जो-जो भी इच्छा करता था वही करता था क्योंकि इसके तीनों गुण ▬ में किये हुए थे और भाव से वे एक दूसरे की अपेक्षा करने वाले थे।१५-१६। चतुर्मुख ब्रह्मत्व को प्राप्त किया था और ▬ करनेवाले पुरुष हुए। इस प्रकार से स्वयम्भू की ही ये तीन अवस्थाएँ थीं।१७। ब्रह्मत्व की दशा में सब रजोगुण है और काल की ▬ में रजोगुण और तमोगुण होता है। जब पुरुष की दशा में यह होते हैं तो सत्वगुण के युक्त होते हैं। इस प्रकार से स्वयम्भू में गुणों की वृत्ति होती है।१८। जब ब्रह्मा की ▬ में यह रहते हैं तो यह लोकों का सृजन किया करते हैं। ▬ काल का स्वरूप धारण किया करते हैं तो उन सभी लोकों का ▬ करते हैं। जब केवल पुरुष की दशा में होते हैं तो यह उदासीन रहते हैं। ऐसे स्वयम्भू की ही ये तीन भिन्न-भिन्न अवस्थाएँ हुआ करती हैं।१९। ब्रह्मा ▬ के पत्रों के समान नेत्रों वाले होते हैं और काल का ▬ उनका स्वरूप होता है तो अञ्जन के समान कृष्ण वर्ण होता है। ▬ उदासीन पुरुष के रूप में होते हैं तो यह परमात्मा के स्वरूप से पुण्डरीकाक्ष होते हैं।२०। एक प्रकार से—दो प्रकार से—तीन प्रकार से फिर बहुत ▬ से योगीश्वर प्रभु अनेक शरीरों को ▬ करते हैं और बदलते रहा करते हैं।२१।

नामाकृतिक्रियारूपमाश्रयंति स्वलीलया ।
त्रिधा यद्वर्तते लोके तस्मात्त्रिगुण उच्यते ॥२२

चतुर्द्धा प्रविभक्तत्वाच्चतुर्व्यूहः प्रकीर्तितः ।
यदा शेते तदासीते यद्भक्ते विषयान्प्रभुः ॥२३

यस्त्ववस्थाः सततं भावस्तस्मादात्मा निरुच्यते ।
ऋषिः सर्वगतत्वाच्च शरीरे सोऽभ्ययात्प्रभुः ॥२४

स्वामी सर्वस्य यत्सर्वं विष्णुः सर्वप्रवेशनात् ।
भगवानप्रसद्भावान्नागो नागस्यसंश्रयात् ॥२५

परमः संप्रहृष्टत्वाद् वतादोमिति स्मृतिः ।

सर्वज्ञः सर्वविज्ञानात्सर्वः सर्वं यतस्ततः ॥२६

नराणां स्वापनं ब्रह्मा तस्मान्नारायणः स्मृतः ।

त्रिधा विभज्य चात्मानं सकलः संप्रवर्त्तते ॥२७

सृजते ग्रसते चैव पाल्यते च त्रिभिः स्वयम् ।

सोऽग्रे हिरण्यगर्भः सन् [illegible]द्भूतः स्वयं [illegible]भुः ॥२८

अनेक क्रिया-आकार और [illegible] का आश्रय ग्रहण किया करते [illegible] और यह [illegible] अपनी ही लीला से करते रहा करते हैं। लोक में यह तीन प्रकार वाले होकर रहते [illegible] इसी कारण से इनको त्रिगुण कहा जाता है।२२। चार प्रकार से प्रविभक्त होने से यह चतुर्व्यूह कहा गया है। जिस समय में यह शयन किया करते [illegible] [illegible] समय में यह अधाम्नि होते हैं प्रभु विषयों का भोग किया करते हैं ।२३। जो स्वस्थ होते हैं तब निरन्तर भाव होता है। इसी से आत्मा कहा जाता है और व्यापि इसमें सर्वगत हैं। [illegible] शरीर [illegible] जाते हैं।२४। भगवान् विष्णु सबके स्वामी हैं क्योंकि विष्णु का सभी में प्रवेश होता है। भगवान् अप्रसन्नभावके नाश [illegible] और नाश का संभव नहीं होता है।२५। संग्रहण होने से परम [illegible] और देवता होने से ओम् यह स्मृति है। सबके विज्ञान होने से यह सर्वज्ञ है क्योंकि यह सबमें हैं अतएव यह सर्व कहा जाता है ।२६। नरों [illegible] अर्थात् जलों में यह स्वपन किया करते हैं इस कारण [illegible] ब्रह्माजी नारायण कहे गये हैं और अपने आपके स्वरूप को तीन प्रकार [illegible] विभक्त करके यह [illegible] से संप्रवृत्त हुआ करते हैं।२७। इन तीनों स्वरूपों से यह लोकों का सृजन पालन और [illegible] से ग्रसन किया करते हैं। यही सबसे आगे हिरण्यगर्भ होते हुए स्वयं प्रादुर्भूत हुए हैं।२८।

आद्यो हि स्वयमज्यैव अजातस्त्वादयः स्मृतः ।

तस्माद्धिरण्यगर्भस्य पुराणेषु निरुच्यते ॥२९

स्वयंभुवो निवृत्तस्य कालो वर्णयितस्तु यः ।

[illegible] शक्यः परिसंख्यातुं मनुवर्षशतैरपि ॥३०

कल्पसंख्यानिवृत्तस्तु परार्द्धो ब्रह्मणः स्मृतः ।

तावत्ये सोऽस्य कालोऽन्यस्तस्यांते प्रतिसृज्यते ॥३१

कोटिवर्षसहस्राणि भूहृभूतानि यानि च ।

समतीतानि कल्पानां तावच्छेषाःपरे तु ये ॥३२

यस्त्वयं वर्त्तते कल्पो वाराहस्तन्निबोधत ।
प्रथमं सांप्रतस्तेषां कल्पो यं वर्त्तते तु यः ॥३३
पूर्णे युगसहस्रे तु परिपाल्यं नरेश्वरैः ॥३४

क्योंकि यह सबसे आदि काल में होने वाले हैं । अतएव यह स्ववशी हैं अर्थात् अपने ही वश में रहने वाले हैं ऐसा ही कहा गया है । उसी [illegible] से पुराणों में इनको हिरण्यगर्भ कहा जाया करता है ।२९। जो स्वयम्भुव है वह निवृत्त [illegible] वर्षों में अग्रकाल है । इसकी परिसंख्या मनु के सैकड़ों वर्षों में भी नहीं की जा सकती है ।३०। कल्पों की संख्या से निवृत्त ब्रह्मा [illegible] परार्द्ध कहा गया है । उतने ही में इसका यह [illegible] है उसके अन्त में अन्य [illegible] प्रतिबुद्ध होता है ।३१। करोड़ों सहस्र वर्ष जो कि इसके गुहभूत हैं । उतने कल्पों में समतीत हैं और जो शेष हैं वे दूसरे हैं ।३२। जो स्वयं कल्प है वह वाराह कल्प है—ऐसा ही समझ लो । प्रथम उनमें साम्प्रत है और जो कल्प होता है ।३३। एक सहस्र युगों के पूर्ण हो जाने पर नरेश्वरों के द्वारा परिपालन के योग्य है ।३४।

— x —

॥ लोककल्पनम् (२) ॥

सूत उवाच—आपोऽग्रे सर्वशो आसन्नेतस्मिन्पृथिवीतले ।
शान्तवातैः प्रलीनेऽस्मिन्न प्राज्ञायत किंचन ॥१
एकार्णवे [illegible] तस्मिन्नष्टे स्थावरजङ्गमे ।
विभुर्भवति स ब्रह्मा सहस्राक्षः सहस्रपात् ॥२
सहस्रशीर्षा पुरुषो रुक्मवर्णो ह्यतीन्द्रियः ।
ब्रह्मा नारायणाख्यस्तु सुष्वाप सलिले तदा ॥३
सत्त्वोद्रेकात्प्रतिबुद्धस्तु शून्यं लोकमवेक्षत ।
इमं चोदाहरन्त्यत्र श्लोकं नारायणं प्रति ॥४
आपो नारा इति प्रोक्ता आपो वै नरसूनवः ।
अयनं तस्य ताः प्रोक्तास्तेन नारायणः स्मृतः ॥५
तुल्यं युगसहस्रस्य वसन्कालमुपास्यता ।

स्वर्णपत्रे प्रकुरुते महत्त्वात्कारणात् ॥६

ब्रह्मा तु सलिले तस्मिन्वायुर्भूत्वा तदा चरत् ।

निशायामिव खद्योतः प्रावृट्काले ततस्ततः ॥७

श्रीसूतजी ने कहा—इस पृथिवी तल में सबसे पूर्व जल ही [illegible] सर्वत्र [illegible] और यह लोक तथा प्रलीन था । इसमें उस समय कुछ भी नहीं जाना जाता था ।१। केवल एक समुद्र ही था और उस सागर में सभी स्थावर (अचर) और जङ्गम (चर) नष्ट हो गये थे । विभु (व्यापक) वह ब्रह्मा भी [illegible] समय [illegible] सहस्रों पादों और नेत्रों वाले हो जाया करते [illegible] ।२। सहस्रों [illegible] वाले, सुवर्ण के समान जिनका वर्ण था और जो इन्द्रियों की पहुँच [illegible] परे थे अर्थात् [illegible] थे ऐसे पुरुष नारायण नाम वाले ब्रह्मा उस समय में समुद्र में शयन कर रहे थे ।३। सत्व के उद्रेक [illegible] निद्रित होते हुए उन्होंने [illegible] समय [illegible] इस लोक को शून्य देखा था । यहीं पर भगवान् नारायण के विषय में इस निम्न लिखित श्लोक को उदाहृत किया करते [illegible] ।४। जलों को नारा कहा गया है और ये जल ही नर के आत्मज हैं । ये जल ही जब नारायण प्रभु के निवास स्थान हैं अतएव प्रभु का नाम नारायण कहा गया [illegible] ।५। सहस्रों युगों [illegible] तुल्य काल [illegible] वे प्रभु वहीं पर निवास करते हुए स्थित रहे थे । ब्रह्मत्व के अदर्शन [illegible] कारण से वे स्वर्ण पत्र किया करते हैं ।६। [illegible] जल में ब्रह्माजी अवाह होकर उस समय [illegible] विचरण कर रहे थे जिस तरह [illegible] वर्षा ऋतु में रात्रि में खद्योत चमकता हुआ यहाँ से वहाँ घूमा करता है ।७।

ततस्तु सलिले तस्मिन् विज्ञायान्तर्गतां महीम् ।

अनुमानादसंमूढो भूमेरुद्धरणं प्रति ॥८

ॐकारात्तनुं त्वन्यां कल्पादिषु यथा पुरा ।

ततो महात्मा मनसा दिव्यरूपमचिन्तयत् ॥९

सलिलेऽप्लुतां भूमिं दृष्ट्वा स समचिन्तयत् ।

किं नु रूपमहं कृत्वा सलिलादुद्धरे महीम् ॥१०

जलक्रीडासमुचितं वाराहं रूपमस्मरत् ।

अधृष्यं सर्वभूतानां वाङ्मयं ब्रह्मसंज्ञितम् ॥११

दशयोजनविस्तीर्णमायतं शतयोजनम् ।
नीलमेघप्रतीकाशं मेघस्तनितनिःस्वनम् ॥१२
महापर्वतवर्ष्माणं श्वेततीक्ष्णोग्रदंष्ट्रिणम् ।
विद्युदग्निप्रतीकाशमादित्यसमतेजसम् ॥१३
पीनवृत्तायतस्कन्धं विष्णुविक्रमगामि च ।
पीनोन्नतकटीदेशं वृषलक्षणपूजितम् ॥१४

इसके उपरान्त उस जल में अन्तर्गत में महत् का भाग प्राप्त किया [illegible] भूमिका उद्धारण करने के विषय में मूढ़ता से रहित उन्होंने अनुमान किया था ।८। इसके पश्चात् [illegible] ओंकारात्म तनु का जैसे पहिले कल्पों के आदि में था उन महात्मा ने मन में ही [illegible] दिव्य स्वरूप का चिन्तन किया था ।९। उस विशाल जल [illegible] राशि में उन्होंने डूबी हुई भूमि को देखकर भली भाँति चिन्तन किया था कि क्या स्वरूप धारण करके मैं इस भूमि का जल से उद्धार करूँ ।१०। जल में क्रीड़ा करना बहुत ही उचित है । इस तरह से उन्होंने वाराह के रूप का स्मरण किया था । जो कि समस्त प्राणियों [illegible] द्वारा न देखने के योग्य है और वाङ्मय ब्रह्म की संज्ञा [illegible] ।११। [illegible] विस्तार [illegible] योजन का था उसकी चौड़ाई अर्थात् फैलाव सौ योजन था । नीले मेघ के समान उसका वर्ण था और मेघ के गर्जन के सदृश ध्वनि थी ।१२। एक विशाल पर्वत के तुल्य उनका शरीर [illegible] और उसकी दाढ़ें श्वेत एवं उग्र और तीक्ष्ण थी । बिजली की अग्नि जैसी होती है उसी [illegible] चमक थी [illegible] सूर्य के समान उसमें तेज [illegible] ।१३। मोटे और चौड़े स्कन्ध थे और भगवान् विष्णु के विक्रम से गमनशील थे । उसकी कटि का भाग स्थूल और ऊँचा था । वह वृष के लक्षणों [illegible] पूजित था ।१४।

आस्थाय रूपमतुलं वाराहममितं हरिः ।
पृथिव्युद्धरणार्थाय प्रविवेश रसातलम् ॥१५
दीक्षासमाप्तीष्टिदंष्ट्रः क्रतुदंतो जुहूमुखः ।
अग्निजिह्वो दर्भरोमा ब्रह्मशीर्षो महातपाः ॥१६
वेदस्कन्धो हविर्गन्धिर्हव्यकव्यादिवेगवान् ।
प्राग्वंशकायो द्युतिमान् नानादीक्षाभिरन्वितः ॥१७

दक्षिणा हृदयो योगी महासत्रमयो विभुः ।
उपाकर्मौष्ठरुचकः प्रवर्ग्यावर्तभूषणः ॥१८

नानाछन्दोगतिपथो गुह्योपनिषदासनः ।
मायापत्नीसहायो वै गिरिशृङ्गमिवोच्छ्रितः ॥१९

अहोरात्रेक्षणधरो वेदांगश्रुतिभूषणः ।
आज्यगंधः स्रुवस्तुंडः सामघोषस्वनो महान् ॥२०

सत्यधर्ममयः श्रीमान् कर्मविक्रमसत्कृतः ।
प्रायश्चित्तनखो घोरः पशुजानुर्महामखः ॥२१

हरि भगवान् ने अमित वाराह के रूप को धारण किया [illegible] जो अतुल था और पृथिवी के जल से उद्धरण करने के लिए उन्होंने रसातल में प्रवेश किया था। अब वाराह भगवान के स्वरूप को [illegible] का [illegible] देते हुए बताया जाता है दीक्षा की समाप्ति इष्टि के दाढ़ों वाले थे। उनके दाँत क्रतु था और मुख में आहुति थी। जिह्वा अग्नि थी और उनके रोम दर्भों के समान थे। महान् तपस्वी ब्रह्म शीर्ष [illegible] ।१५-१६। वेदों के स्कन्धों वाले तथा हवि की गन्ध से युक्त और हव्य-कव्य आदि [illegible] वेग से संयुत हैं। प्राग्वंश के शरीर वाले—द्युति से युक्त हैं और नाना प्रकार की दीक्षाओं से समन्वित हैं।१७। हृदय दक्षिणा है तथा [illegible] सत्र [illegible] परिपूर्ण विभु योगी हैं। उपाकर्म की रुचि वाले और प्रवर्ग्यावर्त भूषण वाले हैं।१८। अनेक [illegible] गति पथ हैं और गुह्य उपनिषद आसन हैं। मायारूपिणी पत्नी की सहायता वाले तथा पर्वत की शिखर के समान उच्च हैं।१९। अहोरात्र अर्थात् दिन और रात्रि रूपी नेत्रों [illegible] धारण करने वाले हैं तथा वेदों के अङ्ग श्रुति वाले हैं। घृत गन्ध वाले हैं—स्रुव ही [illegible] है तथा सामवेद [illegible] घोष ही ध्वनि है जो कि महान [illegible] ।२०। श्रीमान् सत्यधर्म से परिपूर्ण [illegible] और कर्मों के विक्रम से सत्कृत हैं। प्रायश्चित्तों के नखों वाले हैं और घोर पशु जानु हैं ऐसा वह महामख है।२१।

उद्गात्रांत्रो होमलिंगः फलबीजमहौषधीः ।
वाय्वंतरात्मसत्रस्य नासिकासोमशोणितः ॥२२

ततो यज्ञवराहोऽतास्याप: संप्राविशत्प्रभुः ।
अग्निसंछादितां भूमिं समामिच्छत्प्रजापतिम् ॥२३

तमोबहुत्वात्ते सर्वे ह्यज्ञानबहुलाः स्मृताः ।
उत्पथग्राहिणश्चैव तेऽज्ञाने ज्ञानमानिनः ॥३७
अहंकृता अहंमाना अष्टाविंशद्विधात्मिकाः ।
एकादशेन्द्रियविधा नवधात्मादयस्तथा ॥३८
अष्टौ तु तारकाद्याश्च तेषां शक्तिविधाः स्मृताः ।
अंतः प्रकाशास्ते सर्वे आवृताश्च बहिः पुनः ॥३९
तिर्यक् स्रोतस उच्यंते वश्यात्मानस्त्रिसंज्ञकाः ॥४०
तिर्यक् स्रोतस्तु वै द्वितीयं विश्वमीश्वरः ।
अभिप्रायमथोद्भूतं दृष्ट्वा सर्गं तथाविधम् ॥४१
तस्याभिध्यायतो योन्यः सात्त्विकः समजायत ।
ऊर्द्ध्वस्रोतस्तृतीयस्तु तद्वै चोर्द्ध्वं व्यवस्थितम् ॥४२

अभिध्यान करने वाले उनका [illegible] एक तिर्यक् स्रोत हुआ था। जिससे तिर्यक् विवर्तित होते थे इस कारण [illegible] वह फिर तिर्यक् स्रोत कहा गया था।३६। [illegible] तिर्यक् स्रोत में तमोगुण की अधिकता थी इस कारण वे [illegible] सभी बहुत अधिक अज्ञान से समन्वित कहे गये हैं। वे सब उत्पथ के ग्राही थे और उस अज्ञान में ही ज्ञान के मानने वाले थे।३७। [illegible] अहङ्कार से युक्त थे और आत्माहङ्कारी [illegible]। ऐसे वे अट्ठाईस [illegible] के थे। इन ग्यारह इन्द्रियों के भेद थे जो कि नेत्र, कान, नासिका, जिह्वा और त्वक्—ये पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ हैं और हाथ, पद, गुदा उपस्थ और जिह्वा—ये पाँच कर्मेन्द्रियाँ हैं और एक मन है। [illegible] नौ प्रकार के आत्मा [illegible]।३८। और आठ तारकादि हैं और उनकी शक्ति के प्रकार कहे गये हैं। वे सब अन्दर में प्रकाश वाले [illegible] फिर वे बाहिर [illegible] समावृत [illegible]।३९। तिर्यक् स्रोत कहे [illegible] करते हैं और वश्यात्मा तीन संज्ञा वाले [illegible]।४०। तिर्यक् स्रोत का सृजन करके ईश्वर ने दूसरे विश्व की रचना की थी। इसके अनन्तर उद्भूत अभिप्राय को देखकर अर्थात् उस प्रकार के सर्ग का अवलोकन किया था।४१। इस तरह से अभि-ध्यान करने वाले उनके जो अन्य सात्त्विक सर्ग समुत्पन्न हुआ था। तीसरा वो ऊर्द्ध्व स्रोत था और वह निश्चित रूप से ऊपर की ही ओर व्यवस्थित था।४२।

यस्मादूर्द्ध्वं न्यवर्तत तदूर्ध्वस्रोतसंज्ञकम् ।

ता: सुखं प्रीतिबहुला बहिरंतश्च चावृता: ॥४३
प्रकाशा बहिरंतश्च उर्द्ध्वंस्रोत: प्रजा: स्मृता: ।
नवधातादयस्ते वै तुष्टात्मानो बुधा: स्मृता: ॥४४
ऊर्द्ध्वंस्रोतस्तृतीयो य: स्मृत: सर्व: सर्वैषिक: ।
उर्द्ध्वंस्रोत: सु सृष्टेषु देवेषु ■ तदा प्रभु: ॥४५
प्रीतिमानभवद्ब्रह्मा ततोऽन्यं नाभिमन्यत ।
सर्गमन्यं सिसृक्षुस्तं साधकं पुनरीश्वर: ॥४६
तस्याभिध्यायत: सर्गं सत्याभिध्यायिनस्तथा ।
प्रादुर्बभौ भौतसर्ग: सोऽर्वाक् स्रोतस्तु साधक: ॥४७
यस्मात्तेषांक्प्रवर्तंते ततोर्वाक्स्रोतसस्तु ते ।
ते च प्रकाशबहुलास्तमस्पृष्टरजोधिका: ॥४८
तस्मात्ते दु:खबहुला भूयोभूयश्च कारिण: ।
प्रकाशा बहिरंतश्च मनुष्या: साधकाश्च ते ॥४९

कारण यह है कि वह ऊर्ध्व में रहा था। इसीलिए उसकी ऊर्ध्व स्रोत संज्ञा होती है। वे सुख पूर्वक बहुत प्रीति पूर्ण थे और बाहर भीतर आवृत थे।४३। बाहिर भीतर रहने वाले ■ ऊर्ध्व स्रोत प्रजा कहे गये थे। जो नौ धाता आदिक थे वे तुष्ट ■ वाले बुध कहे गये ■।४४। जो ऊर्ध्वस्रोत तीसरा कहा गया है वह सब सर्वैषिक है। उस ■ में ऊर्ध्व स्रोतों ■ सृजन किये जाने पर वह प्रभु ■ हुए ■।४५। ब्रह्माजी का मन बहुत प्रीतियुक्त हो गया था और फिर ■ को नहीं ■ था। फिर ईश्वर ने अन्य साधक सर्ग के सृजन की इच्छा की थी।४६। सर्ग की रचना का अभिध्यान करने वाले और ■ समय में स्रोत अर्वाक् साधक ■।४७। कारण यह ■ कि वे अवाक् प्रवृत्त हुआ करते ■ इसी ■ वे अर्वाक् स्रोत होते ■ इसी से वे अर्वाक् स्रोत होते ■ और उनमें प्रकाश की बहुलता हुआ करती है और तम से स्पर्श किये हुए रजोगुण को अधिकता से युक्त होते ■।४८। इस कारण उनमें दु:खों ■ अधिकता ■ और पुन: पुन: करने वाले हैं ने बाहिर और ■ प्रकाश होते ■ और वे मनुष्य साधना करने वाले हैं।४९।

लक्षणैर्नारकाद्यैस्तैरष्टधा ■ व्यवस्थिता: ।
सिद्धात्मानो मनुष्यास्ते गन्धर्वै: सह धर्मिण: ॥५०

पञ्चमोऽनुग्रह: सर्गश्चतुर्धा स व्यवस्थित: ।
विपर्ययेण [illegible] च सिद्धमुख्यास्तथैव च ॥५१

निवृत्ता वर्तमानाश्च प्रजायन्ते पुन: पुन: ।
भूतादिकानां सत्वानां षष्ठ: सर्ग: स उच्यते ॥५२

स्वादनाश्चाप्यशीलाश्च ज्ञेया भूतादिकाश्च ते ।
प्रथमो महत: सर्गो विज्ञेयो ब्रह्मणस्तु स: ॥५३

तन्मात्राणां द्वितीयस्तु भूतसर्ग: स उच्यते ।
वैकारिकस्तृतीयस्तु ऐन्द्रिय: सर्ग उच्यते ॥५४

इत्येते प्राकृता: सर्गा उत्पन्ना बुद्धिपूर्वका: ।
मुख्यसर्गश्चतुर्थस्तु मुख्या वै स्थावरा: स्मृता: ॥५५

तिर्यक्स्रोत: ससर्गस्तु तैर्यग्योन्यस्तु पञ्चम: ।
तथोर्ध्वस्रोतसां सर्ग: षष्ठो दैवत उच्यते ॥५६

वे नारक आदि लक्षणों से आठ प्रकार से व्यवस्थित होते हैं। वे मनुष्य गन्धर्वों के साथ धर्म वाले होते हुए सिद्ध आत्मा वाले हैं।५०। पाँचवाँ अनुग्रह नामक सर्ग है जो चार प्रकार का व्यवस्थित है। विपर्यय ■ और शक्ति से और तुष्टि से उसी भाँति सिद्ध मुख्य ■।५१। निवृत्त और वर्तमान बार-बार उत्पन्न हुआ करते हैं। भूतादिक सत्वों का जो सर्ग है वह छठा सर्ग कहा जाता है।५२। और भूतादिक स्वादन और आया मोक्ष जानने ■ योग्य हैं। प्रथम महत् का सर्ग है वह ब्रह्मा का सर्ग तन्मात्राओं का होता है और भूतसर्ग कहा जाया करता है और भूतसर्ग कहा [illegible] करता है। तीसरा सर्ग वैकारिक है जो इन्द्रिय सर्ग ■ [illegible] से पुकारा जाता है।५४ ये सभी प्राकृत सर्ग हैं जो बुद्धि पूर्वक समुत्पन्न हुए हैं। प्रमुख सर्ग चौथा है और निश्चय ही स्थावर मुख्य कहे गये हैं।५५। तिर्यक् स्रोत तो तिर्यग् योनियों वाला पाँचवाँ होता है। उसी भाँति ऊर्ध्व स्रोतों का सर्ग छठा है जो दैवत सर्ग के नाम से कहा जाया [illegible] है।५६।

तथोर्ध्वस्रोतसां सर्ग: सप्तम: स तु मानुष: ।

अष्टमोनुग्रहः सर्गः सात्त्विकस्तामसश्च सः ॥२७
पंचैते वैकृताः सर्गाः प्राकृतास्त्वत्रयः स्मृताः ।
प्राकृतो वैकृतश्चैव कौमारो नवमः स्मृतः ॥२८
प्राकृता बुद्धिपूर्वास्तु त्रयः सर्गास्तु वैकृताः ।
बुद्धिपूर्वाः प्रवर्तेयुस्तत्सर्गा ब्राह्मणास्तु वै ॥२९
विस्तराच्च यथा सर्वं कीर्त्यमानं निबोधत ।
चतुर्धा च स्थितस्सोऽपि सर्वभूतेषु कृत्स्नशः ॥६०
विपर्ययेण शक्त्या च बुद्ध्या सिद्ध्या तथैव च ।
स्थावरेषु विपर्यासस्तिर्यग्योनिषु शक्तितः ॥६१
सिद्धात्मानो मनुष्यास्तु तुष्टिर्देवेषु कृत्स्नशः ।
अथो ससर्ज वै ब्रह्मा मानसानात्मनः समान् ॥६२
वैधर्म्येन तु ज्ञानेन निवृत्तास्ते महौजसः ।
संबुद्ध्य चैव नामाथो अपवृत्तास्त्रयस्तु ते ॥६३

यहीं पर ऊर्ध्व स्रोतों का सातवाँ सर्ग [illegible] वह मानुष सर्ग होता है । आठवाँ अनुग्रह नाम वाला सर्ग [illegible] और वह दो प्रकार का होता है—एक सात्त्विक सर्ग है और दूसरा तामस है ।२७। ये पाँच वैकृत अर्थात् विकार से युक्त सर्ग होते हैं और जो प्राकृत सर्ग [illegible] वे तीन कहे गये [illegible] । प्राकृत और वैकृत दोनों प्रकार का जो सर्ग है [illegible] कौमार होता है ।२८। प्राकृत तीनों सर्ग बुद्धि पूर्वक हैं । वैकृत सर्ग बुद्धि पूर्व प्रवृत्त होते हैं और उसके सर्ग ब्राह्मण [illegible] ।२९। जिस [illegible] ये सब हैं वे [illegible] विस्तार से कीर्तित होने वाले [illegible] उनको [illegible] लीजिए । वह भी चार प्रकार से स्थित [illegible] और पूर्णरूप से समस्त भूतों [illegible] है ।६०। विपरीतता से शक्ति से बुद्धि से और सिद्धि से होते हैं । स्थावरों में तो विपर्यास होता है—तिर्यग् योनियों में शक्ति से होता है ।६१। सिद्धात्मा मनुष्य पूर्णतया देवों में तुष्टि है । इसके उपरान्त ब्रह्माजी ने अपनी आत्मा [illegible] ही समान मानस अर्थात् मन से समुत्पन्नों का सृजन किया [illegible] ।६२। [illegible] वैधर्म्य [illegible] के द्वारा महान ओज वाले प्रवृत्ति [illegible] अर्थात् सृजन के कार्यों से निवृत्त हो गये थे । नाम को भली भाँति जानकर वे तीनों अपवृत्त हो गये थे ।६३।

असृष्ट्वैव प्रजासर्गं प्रतिसर्गं ततस्ततः ।
ब्रह्मा तेषु व्यरक्तेषु ततोऽन्यान्साधकान्सृजन् ॥६४
स्थानाभिमानिनो देवाः पुनर्ब्रह्मानुशासनम् ।
अभूतसृष्ट्यवस्था ये स्थानिनस्तान्निबोध मे ॥६५
आपोऽग्निः पृथिवी वायुरन्तरिक्षो दिवं तथा ।
स्वर्गो दिशः समुद्राश्च नद्यश्चैव वनस्पतीन् ॥६६
ओषधीनां तथात्मानो ह्यात्मनो वृक्षवीरुधाम् ।
लताः काष्ठाः कलाश्चैव मुहूर्ताः संधिरात्र्यहाः ॥६७
अर्द्धमासाश्च मासाश्च अयनाब्दयुगानि च ।
स्थाने स्रोतः स्वभीमानाः स्थानाख्याश्चैव ते स्मृताः ॥६८
स्थानात्मनः स सृष्ट्वा तु ततोऽन्यांस तदाऽसृजत् ।
देवांश्चैव पितॄंश्चैव यैरिमा वर्द्धिताः प्रजाः ॥६९
भृग्वंगिरा मरीचिश्च पुलस्त्यः पुलहः क्रतुः ।
दक्षोऽत्रिश्च वसिष्ठश्च सोऽसृजन्नव मानसान् ॥७०

प्रजा की सृष्टि को न देखकर ही फिर ब्रह्माजी ने अनन्तर में प्रतिसर्ग की रचना की थी । उनके विरक्त हो जाने पर उन्होंने अन्य साधकों का सृजन किया था ।६४। देवगण अपने स्थान के अभिमान रखने वाले थे । ब्रह्माजी का अनुशासन हुआ । न हुई सृष्टि की अवस्था वाले जो स्थानी थे उनको अब तुम लोग मुझसे ज्ञात कर लेवें ।६५। जल-अग्नि—पृथिवी—वायु—अन्तरिक्ष—दिव—स्वर्ग—दिशा—समुद्र—नदियाँ—वनस्पति—औषधियों की आत्मायें—वृक्षों और वीरुधों की आत्मायें—लता—काष्ठा—कला—मुहूर्त—सन्धि—रात्रि—दिन—अर्धमास—मास अयन—अब्द—युग-ये स्थान में स्रोतों में अभिमान वाले हैं और ये स्थान नाम से कहे गये हैं ।६६-६८। उन ब्रह्माजी ने स्थानात्मा देखा तो ऐसा सेवलोकन करके उनका सृजन करके फिर उस समय में उन्होंने अन्यों का सृजन किया था । उन्होंने देवों की और पितृगणों की सृष्टि की थी जिनके द्वारा ये प्रजायें परिवर्धित हुई थीं ।६९। उन ब्रह्माजी ने अपने मन के द्वारा नौ पुत्रों की सृष्टि की थी । वे नौ ये हैं—भृगु—मरीचि—पुलस्त्य—पुलह—क्रतु—दक्ष—अत्रि और वसिष्ठ । उस समय में इनका सृजन किया था ।७०।

नव ब्रह्माण इत्येते पुराणे निश्चयं मताः ।
ब्रह्मा ययात्मकानां तु सर्वेषां ब्रह्मयोगिनाम् ॥७१
ततोऽसृजत्पुनर्ब्रह्मा रुद्रं रोषात्मसंभवम् ।
संकल्पं चैव धर्मं च सर्वेषामेव पर्वतान् ॥७२
सोऽसृजद् व्यवसायं तु ब्रह्मा भूतं सुखात्मकम् ।
संकल्पाच्चैव संकल्पो जज्ञे सोऽव्यक्तयोनिनः ॥७३
प्राणाद्दक्षोऽसृजद्वाणं चक्षुर्भ्यां च मरीचिनम् ।
भृगुश्च हृदयाज्जज्ञे ऋषिः सलिलयोनिनः ॥७४
शिरसश्चांगिराश्चैव श्रोत्रादत्रिस्तथैव च ।
पुलस्त्यश्च तथोदानाद्व्यानात् पुलहस्तथा ॥७५
समानतो वसिष्ठश्च ह्यपानान्निर्ममे क्रतुम् ।
इत्येते ब्रह्मण श्रेष्ठाः पुत्रा वै द्वादश स्मृताः ॥७६
धर्मादयः प्रथमजा विज्ञेया ब्रह्मणः स्मृताः ।
भृग्वादयस्तु ये सृष्टा न च ते ब्रह्मवादिनः ॥७७
गृहमेधिपुराणास्ते विज्ञेया ब्रह्मणः सुताः ।
द्वादशैते प्रसूयंते सह रुद्रेण च द्विजाः ॥७८

ये नौ ब्रह्मा ही हैं—ऐसा पुराण में निश्चय को प्राप्त हुए थे। इन सब ब्रह्मयोगी आत्मकों [illegible] ब्रह्मा [illegible] ही [illegible] प्रभाव था ।७१। इसके [illegible] ब्रह्माजी ने रोष रूपी अपने आत्मज रुद्रदेव का सृजन किया था। सङ्कल्प और धर्म का सृजन किया [illegible] और सभी के पर्वतों की रचना की [illegible] ।७२। उन ब्रह्माजी ने व्यवसाय की सृष्टि की थी और ब्रह्मा ने सुखात्मक भूत की रचना की थी। उन्होंने अव्यक्त योनी सङ्कल्प से सङ्कल्प को [illegible] किया था ।७३। [illegible] ने प्राण वायु का सृजन किया था और चक्षुओं से मरीचि को उत्पन्न किया था। सलिल योनी के हृदय से भृगु ऋषि उत्पन्न हुए थे ।७४। शिर से अङ्गिरा ने [illegible] ग्रहण किया था। उदान वायु से पुलस्त्य उत्पन्न हुए व्यान से पुलह [illegible] उद्भव हुआ था ।७५। समान नामक वायु [illegible] वसिष्ठ ऋषि की उत्पत्ति हुई थी, अपान वायु से क्रतु ने जन्म ग्रहण किया [illegible]। ये इतने ब्रह्माजी के परमश्रेष्ठ बारह पुत्र समुत्पन्न हुए थे। ये

द्विजगणो ! ये ब्रह्माजी के द्वादश पुत्र परमश्रेष्ठ हुए थे ।७६। सर्व सात्विक [illegible] उत्पन्न होने वाले ब्रह्माजी के पुत्र कहे गये जानने चाहिए । जो [illegible] आदि की सृष्टि की गयी थी वे ब्रह्मवादी नहीं थे ।७७। ये गृहमेधी पुराण ब्रह्माजी के पुत्र समझने चाहिए । ये द्वादश रुद्र के साथ प्रसूत होते हैं ।७८।

ऋतुः सनत्कुमारश्च द्वावेतावूर्द्ध्वरेतसौ ।
पूर्वोत्पन्नौ पुरा ह्येतौ सर्वेषामपि पूर्वजौ ॥७९
व्यतीते सप्तमे कल्पे पुराणौ लोकसाधकौ ।
विरजेतेऽत्र वै लोके तेजसाक्षिप्य चात्मनः ॥८०
तावुभौ योगधर्माणावारोप्यात्मानमात्मना ।
प्रजाधर्मं च कामं च वर्त्तयेते महौजसौ ॥८१
यथोत्पन्नस्तथैवेह कुमार इति चोच्यते ।
ततः सनत्कुमारेति नाम तस्य [illegible] ष्ठितम् ॥८२
तेषां द्वादश ते वंशा दिव्या देवगणान्विताः ।
क्रियावन्तः प्रजावन्तो महर्षिभिरलंकृता ॥८३
[illegible] णाँस्तु स दृष्ट्वा वै ब्रह्मा द्वादश सात्त्विकान् ।
ततोऽसुरान्पितॄन्देवान्मनुष्यांश्चासृजत् प्रभुः ॥८४

ऋतु और सनत्कुमार ये दो ब्रह्माजी के पुत्र ऊर्ध्वरेता [illegible] । पूर्व की उत्पत्ति में प्राचीन काल में ये दोनों सबके पूर्व में जन्म ग्रहण करने वाले [illegible] [illegible] ।७९। सप्तम कल्प में लोक [illegible] पुराण व्यतीत हो गये [illegible] और इस लोक में आत्मा के तेज से आक्षिप्त होकर विरेजित होते हैं ।८०। योग के धर्म वाले ये दोनों आत्मा [illegible] आत्मा का आरोप करके दोनों महान् ओज वाले [illegible] के धर्म को और काम को वर्तित करते [illegible] ।८१। [illegible] ही उत्पन्न हुआ [illegible] वैसे ही यहाँ पर कुमार—यह [illegible] [illegible] करता है । इसके अनन्तर उसका नाम [illegible]नत्कुमार—यह प्रतिष्ठित हुआ था ।८२। उनके द्वादश [illegible] थे जो परम दिव्य और देवगणों से समन्वित थे । वे सब क्रिया वाले थे और महर्षियों से अलंकृत थे ।८३। उन ब्रह्माजी ने उन बारह सात्विक आत्मजों को देख कर फिर प्रभु ने असुरों को—पितृगणों को—देवों को और मनुष्यों को सृजित किया [illegible] ।८४।

तेषां ते यांति कर्माणि प्राक् सृष्टानि स्वयंभुवा ।
तान्येव प्रतिपद्यंते सृज्यमानाः पुनः पुनः ॥६२
हिंस्राहिंस्रे मृदुक्रूरे धर्माधर्मौ कृताकृते ।
तेषामेव पृथक् सृतमविभक्तं मयं विदुः ॥६३
एतदेवं च नैवं च न चोभे नानुभे तथा ।
कर्म स्वविषयं प्राहुः सत्त्वस्थाः समदर्शिनः ॥६४
नामारूपञ्चभूतानां कृतानां च प्रपञ्चताम् ।
विपशब्देन पञ्चैते निर्ममे स महेश्वरः ॥६५
आर्षाणि चैव नामानि याश्च देवेषु सृष्टयः ।
शर्वर्यां ■ प्रसूयन्ते पुनस्तेभ्यो दधत्प्रभुः ॥६६
इत्येवं कारणात्भूतो लोकसर्गः स्वयंभुवः ।
महदाद्या विशेषान्ता विकाराः प्राकृताः स्वयम् ॥६७
चन्द्रसूर्यप्रभो लोको ग्रहनक्षत्रमण्डितः ।
नदीभिश्च समुद्रैश्च पर्वतैश्च सहस्रशः ॥६८

■ सब उनके कर्मों को प्राप्त होते हैं जिनका कि स्वयम्भु ने पूर्व में ही सृजन ■ किया था। बार-बार सृजन को प्राप्त होते ■ उन्हीं कर्मों को प्रतिपन्न हुआ करते ■।६२। हिंस और अहिंसा वाले, मृदु और क्रूर-धर्म और अधर्म और कृत तथा ■ उनके ही पृथक् उत्पन्न हुए ■। यह अवि- ■ तीन ■ लीजिए।६३। यह इस प्रकार ■ है और इस प्रकार से नहीं है—दोनों ही नहीं ■ और दोनों हैं। सत्व में स्थित समदर्शी अर्थात् सबको एक ही समान देखने वाले अपने विषय को कर्म कहते ■।६४। ■ पञ्च भूतों की और कृतों की ■ को बनाया था। उन महेश्वर ने विप शब्द से ये ही पाँच हैं जिनका निर्माण किया था।६५। देवों में जो सृष्टियाँ हैं और आर्ष नाम हैं शर्वरी ■ प्रसूत नहीं होते हैं—फिर प्रभु ने उनके लिए धारण किया था।६६। यह इसी रीति से स्वयम्भू ■ ■ से लोकों का सर्ग हुआ था। महत् जिनके आदि में होने वाला है तथा विशेष ■ अन्त पर्यन्त विकार स्वयं प्राकृत ■।६७। चन्द्रमा और सूर्य की ■ वाला लोक जो ग्रहों और नक्षत्रों से मण्डित है। जहाँ बहुत नदियाँ हैं—समुद्र हैं और सहस्रों पर्वत हैं—इन सबसे मण्डित है।६८।

पुरैश्च विविधै रम्यैः स्फीतैर्जनपदैस्तथा ।
अस्मिन् ब्रह्मवनेऽव्यो ब्रह्मा चरति सर्ववित् ॥९९
अव्यक्तबीजप्रभवस्तस्यैवानुग्रहे स्थितः ।
बुद्धिस्कन्धमयश्चैव इन्द्रियान्तरकोटरः ॥१००
महाभूतप्रकाशश्च विशेषैः पत्रवांस्तु सः ।
धर्माधर्मसुपुष्पस्तु सुखदुःखफलोदयः ॥१०१
आजीवः सर्वभूतानां ब्रह्मवृक्षः सनातनः ।
एतद्ब्रह्मवनं चैव ब्रह्मवृक्षस्य तस्य तत् ॥१०२
अव्यक्तं कारणं यत्र नित्यं सदसदात्मकम् ।
प्रधानं प्रकृतिं [illegible] चैवाहुस्तत्त्वचिन्तकाः ॥१०३
इत्येषोऽनुग्रहः सर्गो ब्रह्मनैमित्तिकः स्मृतः ।
अबुद्धिपूर्वकाः सर्गा ब्रह्मणः प्राकृतास्त्रयः ॥१०४
मुख्यादयस्तु षट् सर्गा वैकृता बुद्धिपूर्वकाः ।
वैकल्पात्संप्रवर्तन्ते ब्रह्मणस्तेभिमन्यवः ॥१०५

अनेक सुरम्य पुरों से तथा परम स्फीत जनपदों से समलंकृत है—इस ब्रह्मवन में सबके ज्ञाता अव्यक्त ब्रह्माजी सञ्चरण किया करते हैं।९९। अव्यक्त के बीज से जो समुत्पत्ति है वह अनेक ही अनुग्रह में स्थित होता है। यह एक वृक्ष है—ऐसा ही [illegible] यहाँ पर दिया जाता है—इसकी बुद्धि ही स्कन्धों से परिपूर्ण है और [illegible] इन्द्रियाँ कोटर हैं।१००। महाभूतों का प्रकाश है और विशेषों से वह पत्रों [illegible] है। इसके धर्म और अधर्म पुष्प हैं तथा उनका परिणाम रूप सुख और दुःख इसके फलों का उदय है।१०१। [illegible] सनातन अर्थात् सर्वदा से [illegible] आने वाला ब्रह्म वृक्ष समस्त प्राणियों की आजीव होता है। उस ब्रह्म वृक्ष [illegible] यह ब्रह्मवन है।१०२। जहाँ पर सत् और असत् स्वरूप वाला नित्य अव्यक्त ही कारण है। तत्त्वों के चिन्तन करने वाले मनीषी इसको प्रधान-प्रकृति और माया कहा करते हैं।१०३। कृपा से होने वाला इस रीति से यह अनुग्रह सर्ग ब्रह्म के निमित्त वाला कहा गया है। अबुद्धि पूर्वक ब्रह्माजी के तीन सर्ग हैं जो प्राकृत कहे गये हैं।१०४। मुख्य आदिक छै सर्ग हैं जो प्राकृत न होकर वैकृत कहे जाते हैं और बुद्धि

वृष्टि के न होने से शुष्क हो रहे थे और जिनके द्वारा शुष्क थे उन्हीं द्वारा बहुत तापित किये गये थे अर्थात् शुष्क थे एकदम प्राप्त हो गये थे ।१२५। इस समय में कहीं पर परित्राण नहीं और वे विवश होकर सूर्य के प्रखर प्रबल किरणों से निःशेष रूप से दग्ध हो गये थे। उनमें सभी स्थावर-जङ्गम और धर्म तथा अधर्म आदि थे ।१२६।

दग्धदेहास्तदा ते तु धूतपापा युगात्यये ।
ख्यातातपा विनिर्मुक्ताः शुभया चातिबंधया ॥१२७
ततस्ते ह्युपपद्यन्ते तुल्यरूपैर्जनैर्जनाः ।
उषित्वा रजनीं ते च ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः ॥१२८
पुनः सर्गे भवन्तीह मानस्यो ब्रह्मणः प्रजाः ।
ततस्तेषु प्रपन्नेषु जनैस्त्रैलोक्यवासिषु ॥१२९
निर्दग्धेषु च लोकेषु तदा सूर्यैस्तु सप्तभिः ।
वृष्ट्या क्षितौ प्लावितायां विजनेष्वर्णवेषु वा ॥१३०
समुद्राश्चैव मेघाश्च आपश्चैवाथ पार्थिवाः ।
शरमाणा व्रजन्त्येव सलिलाख्यास्तथाचलाः ॥१३१
आगतागतिकं चैव यदा तु सलिलं बहु ।
संछादयेमा स्थितां भूमिमर्णवाख्ये तदाऽभवत् ॥१३२
आभाति यस्माच्चाभासाद्भाशब्दः कान्तिदीप्तिषु ।
स सर्वः समनुप्राप्ता मासा भाम्यो विभाव्यते ॥१३३

इस अवसर पर युग के अत्यय में वे देहों के दग्ध हो जाने पर निष्पाप हो गये थे तथा ख्यातातप और शुभ बन्धा से विनिर्मुक्त थे ।१२७। इसके उपरान्त वे तुल्यरूप वाले जनों के स्वाका जन उत्पन्न होते हैं। और वे अव्यक्त जन्म वाले ब्रह्मा की रात्रि में वहाँ निवास करके फिर सृजन की वेला में ब्रह्माजी की मानसी प्रजा होती है। फिर जनों के साथ त्रैलोक्य वासी उनके प्रपन्न होने पर तथा संतप्त सूर्य की प्रखर किरणों से उस समय में लोकों के निर्दग्ध हो जाने पर वृष्टि के द्वारा सम्पात से भूमि के प्लावित होने पर तथा विजन अर्णवों में निमग्न हो जाने पर समुद्र-मेघ-जल और पार्थिव सब शरमाण होते हुए अचल सलिल से ज्ञान वाले होकर सब ही गमन कर जाया करते हैं अर्थात् विनष्ट हो जाते हैं ।१२९-१३१। जिस समय

का होता है।१३७। जिसके द्वारा यह अधिष्ठित ब्रह्मा के पर पुरुष प्रभु ने इस लोक विभाग करने इच्छा की थी।१३८। उस समय केवल एक ही समुद्र था और सभी चर अचर जगत् एकदम विनष्ट हो गया था। तब वह ब्रह्मा सहस्रों पादों होते हैं।१३९। वह पुरुष सहस्रों शीर्षों वाले हैं जिनका वर्ण सुवर्ण के है और जो इन्द्रियों की पहुँच परे हैं। उस समय में नारायण नामधारी ब्रह्माजी जल में शयन कर रहे ।१४०। सत्व के उद्रेक से प्रकृष्ट ज्ञान वाले उन्होंने सम्पूर्ण लोकों को शून्य देखा था। इस आद्य पाद ने पुराण का परिकीर्तित किया था।१४१।

प्रतिसन्धि वर्णनम्

सूत उवाच—इत्येवं प्रथमं पादं प्रकृत्यर्थं प्रकीर्तितम् ।
श्रुत्वा तु संहृष्टमनाः काण्वेयः संशयान्वितः ॥१
आराध्य वचसा सूतं तस्यार्थं त्वपरां कथाम् ।
प्रभृति कल्पस्य प्रतिसंधिः प्रचक्ष्यते ॥२
समतीतस्य कल्पस्य वर्तमानस्य चानयोः ।
कल्पयोरंतरं यच्च प्रतिसंधिश्च यस्तयोः ।
एतद्वे दितुमिच्छामि यथावत्कुशलो ह्यसि ॥३
काण्वेयेनैवमुक्तस्तु सूतः प्रवदतां वरः ।
त्रैलोक्यस्योद्भवं कृत्स्नमाख्यातुमुपचक्रमे ॥४
सूत उवाच—अत्र वै वर्णयिष्यामि याथातथ्येन सुव्रताः ।
कल्पं भूतं भविष्यं प्रतिसंधिश्च यस्तयोः ॥५
मन्वंतराणि कल्पेषु यानि यानि सुव्रताः ।
यश्चायं वर्तते कल्पो वाराहः सांप्रतः शुभः ॥६
अस्मात्कल्पात्तु यः पूर्वः कल्पोऽतीतः सनातनः ।
तस्य चास्य च कल्पस्य मध्यावस्थां निबोधत ॥७

श्री सूतजी ने कहा—यह प्रकीर्त्ति के लिए प्रथम पाद कीर्त्तित किया है। इसका श्रवण करके काण्वेय के बहुत ही संहर्षित हुआ था किन्तु उसके मन में संशय भी होता है।१। उन्होंने वाणी के द्वारा सूतजी की

आराधना की थी और उसका अर्थ ■■ दूसरी ■■ ■ ■■ करने की इच्छा की थी। आज से लेकर ■■ प्रति सन्धि कहा जाता ■ ।२। बीते हुए ■■ का और वर्तमान कल्प की इन दोनों का अन्तर और जहाँ ■■ उन दोनों की प्रतिसन्धि है। यह ■ जानना चाहता हूँ क्योंकि आप ठीक प्रकार से यह बताने के लिए परम कुशल ■ ।३। काश्यप के द्वारा इस प्रकार ■ पूछे जाने पर प्रवचन करने वालों ■ श्रेष्ठ सूतजी ने यह सम्पूर्ण ही करने का उपक्रम किया था ।४। श्री सूतजी ने कहा था—हे सुन्दर व्रतों वालो ! ■■ विषय में जो कुछ भी है वह सभी यथार्थ ■■ ■ वर्णन करूँगा। ■■ जो हो गये हैं और आगे होने वाले ■ ■■ इन दोनों की जो प्रति सन्धि है—इसको भी बताऊँगा ।५। इन कल्पों में जो-जो भी मन्वन्तर हैं और जो यह कल्प वर्तमान है वह ■■ समय ■■ परम शुभ वाराह है ।६। इस कल्प से पूर्व में होने वाला जो कल्प था जो कि सनातन व्यतीत हो गया है उसकी और इस कल्प की जो मध्य में होने वाली ■■ है उसका ज्ञान अब प्राप्त करलो ।७।

प्रत्यागते पूर्वकल्पे प्रतिसंधि निबोधत ।
अन्य: प्रवर्तते कल्पो जनलोकादय: पुन: ॥८

व्युच्छिन्नप्रतिसंधिस्तु कल्पात्कल्प: परस्परम् ।
व्युच्छिद्यंते प्रजा: सर्वा: कल्पांते सर्वशस्तदा ॥९

तस्मात्कल्पात्तु कल्पस्य प्रतिसंधिर्न विद्यते ।
मन्वंतरे युगाख्यानामविच्छिन्नास्तु संधय: ॥१०

परस्परात् प्रवर्तंते मन्वंतरयुगै: सह ।
उक्ता ये प्रक्रियार्थेन पूर्वकल्पा: समासत: ॥११

तेषां परार्द्धकल्पानां पूर्वो यस्मात् य: पर: ।
आसीत्कल्पे व्यतीते वै परार्द्धात्परमस्तु य: ॥१२

कल्पास्त्वन्ये भविष्या ये ह्यपरार्द्धगुणीकृता: ।
प्रथम: सांप्रतस्तेषां कल्पो यो वर्तते द्विजा: ॥१३

अस्मिन्पूर्वं परार्द्धे तु द्वितीय: पर उच्यते ।
एष संस्थितकालन्तु प्रत्याहारस्तत: स्मृत: ॥१४

फिर इस कल्प से पूर्व [illegible] होने वाला अतीत पुरातन [illegible] है जो पहिले एक सहस्र चारों युगों की चौकड़ी [illegible] अन्त [illegible] मन्वन्तरों के [illegible] है। ।१५। फिर उस [illegible] [illegible] क्षीण हो जाने पर और दाह काल के उपस्थित होता [illegible]। [illegible] समय में तब जो वैमानिक देव हैं वे थे ।१६। वे नक्षत्र-ग्रह और नारायण तथा चन्द्र सूर्य आदिक [illegible]। वे सब अट्ठाईस हैं। सुकृतात्माओं की करोड़ों की संख्या है अर्थात् जिन्होंने सुकृत् किया है उन्हीं की करोड़ों संख्या [illegible] ।१७। जिस प्रकार से एक मन्वन्तर में तथा चौदहों [illegible] वे तीन करोड़ [illegible] तथा बानवे करोड़ थे ।१८। इसके अनन्तर अर्थात् विमानों [illegible] रहने वाले देवगण कहे गये [illegible] ।१९। इसके अनन्तर आकाश [illegible] दिवलोक में चौदह मन्वन्तरों में थे। उनमें देवगण–पितृगण–ऋषिगण [illegible] अमृत के पान करने वाले थे ।२०। उनके अनुचर हैं, उनकी पत्नियाँ [illegible] और उनके पुत्र भी होते हैं। उस काल में आकाश में सुरगण वर्णों और आश्रमों [illegible] अतिरिक्त थे। ।२१। उस काल में वस्तुओं से परिपूर्ण प्राप्त होने पर उन-उन सायुज्य में गमन करने वालों के साथ [illegible] थे। आभूत संप्लव अर्थात् महा प्रलय के [illegible] होने पर वे तुल्य निष्ठा वाले हुए थे ।२२।

ततस्तेऽवश्यभावित्वाद् बुद्ध्वा: पर्यायमात्मन: ।
त्रैलोक्यवासिनो देवा इह स्थानाभिमानिक: ।।२३
स्थितिकाले तदा पूर्णे आसन्ने पश्चिमोत्तरे ।
कल्पावसानिका देवास्तस्मिन्प्राप्ते ह्युपप्लवे ।।२४
तदोत्सुका विषादेन त्यक्तस्थानानि भागश: ।
महर्लोकाय संविग्नास्ततस्ते दधिरे मन: ।।२५
ते युक्तानुपपद्यन्ते महतीं [illegible] शरीरिके ।
विशुद्धिबहुला: सर्वे मानसीं सिद्धिमास्थिता: ।।२६
तै कल्पवासिभि: सार्द्धं महानासादितस्तदा ।
ब्राह्मणै: क्षत्रियैर्वैश्यैस्तद्भक्तैश्चापरैर्जनै: ।।२७
गत्वा [illegible] ते महर्लोकं देवसंघाश्चतुर्दश ।
ततस्ते जनलोकाय सोद्वेगा दधिरे मन: ।।२८

इसके उपरान्त वे स्थान के अभिमानी देवगण जो त्रैलोक्य के निवासी थे यहाँ पर आत्मा की बुद्धि के अवश्य भावी होने से [illegible] ।२३। उस [illegible] में

स्थिति का समय पूर्ण हो चुका था और पश्चिमोत्तर में आसन्न था। जो शेष कल्प में प्राप्त होने वाले थे वे उस उपप्लव को प्राप्त हुआ देखने वाले थे।२४। उस अवसर में उत्सुक हुए और विषाद से मार्गों में स्थानों को व्यक्त करके फिर उन्होंने मविम्न होते हुए अयन भाग महर्लोक के लिए बनाया था।२५। ये पुरुषों को उपपन्न होते हैं और शरीर में महती को प्राप्त होते हैं ये सब प्रचुर विशुद्धि से समन्वित थे तथा मानसी सिद्धि में समास्थित हुए थे।२६। उस समय में उन कल्पवासियों के साथ महान आसादित हुआ था। उनके साथ में गमन करने वाले ब्राह्मण—क्षत्रिय—वैश्य और अपरजन भी थे। वे चौदह देवों के संघ महर्लोक में प्राप्त हो गये थे। फिर उस महर्लोक से गमन करके बड़े उद्वेग के सहित उन्होंने अपना मन जन-लोक में जाने के लिए किया था।२७-२८।

एतेन क्रमयोगेन ययुस्ते कल्पवासिनः।
एवं देवयुगानां तु सहस्राणि परस्परम् ॥२९
विशुद्धिबहुलाः सर्वे मानसीं सिद्धिमास्थिताः।
तैः कल्पवासिभिः सार्द्धं [illegible] आसादितन्तु वै ॥३०
तत्र कल्पान्दश स्थित्वा सत्यं गच्छंति वै पुनः।
गत्वा ते ब्रह्मलोकं वै अपरावर्तिनीं गतिम् ॥३१
आधिपत्यं विमाने वै ऐश्वर्येण तु तत्समाः।
भवंति ब्रह्मणा तुल्या रूपेण विषयेण च ॥३२
तत्र ते ह्यवतिष्ठंते प्रीतियुक्ताश्च संयमात्।
आनंदं ब्रह्मणः [illegible] मुच्यन्ते ब्रह्मणा सह ॥३३
अवश्यम्भाविनार्थेन प्राकृतेनैव ते स्वयम्।
मानार्चनाभिः संबद्धास्तदा तत्कालभाविताः ॥३४
स्वपतो बुद्धिपूर्वं तु बोधो भवति वै यथा।
तथा तु भाविनो तेषां ह्यानंदः प्रवर्तते ॥३५

इसी क्रम के योग से वे कल्पवासी चले गये थे। इस प्रकार से सहस्रों ही देवों के युग थे।२९। सभी विशुद्धि की प्रचुरता वाले थे और अतएव वे सब मानसी सिद्धि में समास्थित थे। उनने कल्प वासियों के साथ जनलोक

को प्राप्त किया था ।३०। वहाँ जनलोक में दस कल्पों तक स्थित होकर फिर सत्य लोक को चले जाते हैं । वे ब्रह्मलोक को प्राप्त करके अपरावर्तिनी गति को प्राप्त हो जाते हैं ।३१। वे विमान में आधिपत्य ██ ऐश्वर्य में उनके ही समान हो जाया करते हैं । फिर वे ब्रह्माजी के ही तुल्य हो जाया करते हैं और रूप तथा विषय के द्वारा ब्रह्मा के समान हैं ।३२। वहाँ पर वे प्रीति से युक्त होते हुए संयमों को अवस्थित हुआ करते हैं । वहाँ पर ब्रह्मा के आनन्द प्राप्त करके ब्रह्माजी के ही साथ मुक्ति को प्राप्त हो जाया करते हैं ।३३। ██ अवश्य भावी अर्थ से ██ स्वयं उस समय में ██ ██ भावित होते हुए सम्मान और अभेद आदि के द्वारा सम्बद्ध होते हैं ।३४। जिस प्रकार से बुद्धिपूर्वक स्वपन करते हुए बोध होता है उसी भाँति वैसा ही भावित होने पर वैसा ही आनन्द प्रवृत्त होता है ।३५।

प्रत्याहारैस्तु भेदानां येषां भिन्नानि सूक्ष्मणाम् ।
तैः सार्द्धं वर्द्धते तेषां कार्याणि करणानि च ॥३६
नानात्वदर्शिनां तेषां ब्रह्मलोकनिवासिनाम् ।
विनिवृत्ताधिकाराणां स्वेन धर्मेण तिष्ठताम् ॥३७
ते तुल्यलक्षणाः सिद्धाः शुद्धात्मानो निरंजनाः ।
प्राकृते करणोपेताः स्वात्मन्येव व्यवस्थिताः ॥३८
प्रख्यापयित्वा चात्मानं प्रकृतिस्त्वेषु तत्त्वतः ।
पुरुषान्यबहुत्वेन प्रतीना सम्प्रवर्तते ॥३९
प्रवर्तिते पुनः सर्गे तेषां साकारणात्मनाम् ।
संयोगे प्रकृतिर्ज्ञेया युक्तानां तत्त्वदर्शिनाम् ॥४०
तत्रोपवर्गिणां तेषां न पुनर्मार्गगामिनाम् ।
अभावः पुनरुत्पन्नः शान्तानामर्चिषामिव ॥४१
ततस्तेषु गतेषूर्ध्वं त्रैलोक्येषु महात्मसु ।
एतैः सार्द्धं महर्लोकस्तदानासादितस्तु वै ॥४२

जिन सूक्ष्मियों के भेदों के प्रत्याहारों से भिन्न हैं उनके कार्य और करण वर्धित होते हैं ।३६। वे नानात्व के देखने वाले और ब्रह्मलोक के निवास करने वाले हैं । निवृत्त अधिकारों वाले और अपने धर्म में स्थित

रहने वाले हैं ।३७। वे समान लक्षणों वाले सिद्ध ▮ शुद्ध आत्माओं वाले तथा निरञ्जन ▮ । प्राकृत में वे करणों से उपेत ▮ और अपनी आत्मा में ही व्यवस्थित ▮ ।३८। और आत्मा को प्रख्यापित करके तात्विक रूप से यह प्रकृति अन्य पुरुषों के बहुत्व होने ▮ प्रतीत होती हुई प्रवृत्त होती है ।३९। साकारणात्मा उनके फिर सर्ग के प्रवर्त्तित होने पर मुक्त तत्व दर्शियों के संयोग में प्रवृत्ति आननी चाहिए ।४०। वहाँ पर उपवर्गी और फिर मार्गगामी न होने वाले इनका पुनः ▮ अर्चियों के ही समान अभाव उत्पन्न हो गया है ।४१। इसके अनन्तर उन महान् आत्मा वाले त्रैलोकों के ▮ की ओर ▮ होने पर उस समय में इनके साथ महर्लोक निश्चय ही आलापित नहीं हुआ था ।४२।

तच्छिष्या वै भविष्यंति कल्पदाहु उपस्थिते ।
गंधर्वाद्याः पिशाचाश्च मानुषा ब्राह्मणादयः ॥४३
पशवः पक्षिणश्चैव स्थावराश्च सरीसृपाः ।
तिष्ठत्सु तेषु तत्कालं पृथिवीतलवासिषु ॥४४
सहस्रं यत्तु रश्मीनां स्वयमेव विभाव्यते ।
तत्सप्तरश्मयो भूत्वा एकैको जायते रविः ॥४५
क्रमेणोत्तिष्ठमानास्ते त्रींल्लोकान्प्रदहंत्युत ।
जंगमाः स्थावराश्चैव नद्यः सर्वे ▮ पर्वताः ॥४६
शुष्काः पूर्वमनावृष्ट्या सूर्य्यैस्ते ▮ प्रधूपिताः ।
▮ तु विवशाः सर्वे निर्दग्धाः सूर्यरश्मिभिः ॥४७
जङ्गमाः स्थावराश्चैव धर्माधर्मात्मिकास्तु वै ।
दग्धदेहास्तदा ते तु धूतपापा युगांतरे ॥४८
ख्यातातपा विनिर्मुक्ताः शुभया चातिबंधया ।
ततस्ते ह्युपपद्यंते तुल्यरूपैर्जनैर्जनाः ॥४९

कल्पदाह ▮ उपस्थित हो जाने पर उनके शिष्य होंगे । जो कि गन्धर्व आदि पिशाच—मानुष और ब्राह्मणादिक हैं ।४३। पशु-पक्षी-स्थावर और सरीसृप हैं । उस समय में पृथ्वी तल ▮ निवास करने वाले उनके स्थित होने पर जो सहस्र किरणें ▮ वे स्वयं ही विभावित हो ▮ करती हैं । वे

एकमात्र अर्णव के होने पर कोई जीव नहीं है उससे वे नर हैं। उस एक सहस्र युगों के अन्त में जबकि ब्रह्माजी का दिन संस्थित होता है।५७। उतने समय में सलिल के स्वरूप से रजनी के वर्तमान होने पर रहता है। फिर उस जल से पृथ्वी तल में अग्नि तल में अग्नि बिल्कुल नष्ट हो जाया करती है।५८। उस समय में वायु एकदम प्रशान्त होती है और सभी ओर घोर अन्धकार रहता है सभी ओर आलोक रहता है। यह इसके ही द्वारा अधिष्ठित रहता है और ब्रह्माजी ही वह प्रभु पुरुष होते हैं।५९। फिर उन्होंने लोक के विभाग करने की इच्छा की थी जिस समय में सभी जङ्गम और स्थावर विनष्ट हो चुके थे और केवल एक ही अर्णव सभी ओर था।६०। उस अवसर से वे ब्रह्माजी सहस्रों शिरों वाले और सहस्रों पादों वाले होते हैं। वे सहस्रों शिरों वाले पुरुष सुवर्ण के वर्ण वाले थे और इन्द्रियों पर विजय प्राप्त करने वाले थे। भगवान् नारायण के प्रति यहाँ पर इस श्लोक का उदाहरण किया करते हैं।६१। आप (जल) जो उसके तनु हैं—यह अर्थ सुनते हैं। वहाँ पर आपूर्यमाण हैं—इसलिए नारायण कहे गये हैं।६२। सहस्र शीर्षों से संयुत सुन्दर मन वाले—सहस्र चरणों से युक्त—सहस्र चक्षु और मुखों वाले सहस्र कृत हैं। सहस्र बाहुओं वाले हैं—ऐसे प्रथम प्रजापति हैं। वह पुरुष त्रयी से परिपूर्ण है—ऐसा कहा जाता है।६३।

आदित्यवर्णो भुवनस्य गोप्ता एको ह्यपूर्वः प्रथमस्तपसो

विराट्।

हिरण्यगर्भः पुरुषो महात्मा संपठ्यते वै मनसः परस्तात्॥६४

कल्पादौ रजसोद्रिक्तो ब्रह्मा भूत्वाऽसृजत्प्रभुः।

कल्पान्ते तमसोद्रिक्तः कालो भूत्वाग्रसत्पुनः॥६५

स वै नारायणो भूत्वा सत्त्वोद्रिक्तो जलाशये।

त्रिधा विभज्य चात्मानं त्रैलोक्ये संप्रवर्तते॥६६

सृजति ग्रसते चैव वीक्ष्यते च त्रिभिः स्वयम्।

एकार्णवे तदा तस्मिन्नष्टे स्थावरजंगमे॥६७

चतुर्युगसहस्रान्ते सर्वतः स जलावृते।

ब्रह्मा नारायणाख्यस्तु स काले च भवे स्वयम्॥६८

कल्पस्यादौ सुबहुला यस्मात्संख्याश्चतुर्दश ।
कल्पयामास वै ब्रह्मा तस्मात्कल्पो निरुच्यते ।।७४
स स्रष्टा सर्वभूतानां कल्पादिषु पुनः पुनः ।
व्यक्ताव्यक्तो महादेवस्तस्य सर्वमिदं जगत् ।।७५
इत्येष प्रतिसंबन्धः कीर्तितः कल्पयोर्द्वयोः ।
साम्प्रतं हि तयोर्मध्ये प्रागवस्था बभूव ह ।।७६
कीर्तितस्तु समासेन पूर्वकल्पे यथातथम् ।
सांप्रतं संप्रवक्ष्यामि कल्पमेतं निबोधत ।।७७

गति के अर्थ वाली ऋषिति धातु नाम की निष्पत्ति होती है—ऐसा कहा जाता है। जिससे ऋषिति के [illegible] होने [illegible] उससे महत् है अतएव महर्षि होते [illegible] ।७१। महर्लोक में स्थित होते हुए उन्होंने उस समय में सोये हुए काल को देखा था। जो कल्प [illegible] अतीत होने पर सत्यादि सात महर्षि थे ।७२। इस प्रकार से उन-उन सहस्रों रजनीयों में उस [illegible] में आगीत महर्षियों ने सुप्तकाल को देखा था ।७३। कल्प [illegible] आदि [illegible] जिससे सुबहुल चौदह संख्या हैं। ब्रह्माजी ने क्योंकि कल्पन किया था इसी कारण से कल्प कहा जाता [illegible] ।७४। कल्पों के आदि काल [illegible] पुनः पुनः वही [illegible] भूतों का सृजन करने वाला है। महादेव व्यक्त है। इसका ही यह सम्पूर्ण जगत है ।७५। यह दोनों कल्पों का प्रति सम्बन्ध कर दिया गया है। इस [illegible] में उन दोनों के मध्य में पूर्व की अवस्था हुई थी ।७६। पूर्व में होने वाले कल्प में ठीक-ठीक कह दिया गया है। [illegible] समय में [illegible] [illegible] विषय [illegible] बतलाऊँगा, उसको [illegible] लीजिए ।७७।

— × —

॥ पृथ्वी [illegible] विस्तरः ॥

सूत उवाच—एवं प्रजासन्निवेशं श्रुत्वा वै शांशपायनिः ।
पप्रच्छ नियतं सूतं पृथिव्युदधिविस्तरम् ।।१
कति द्वीपाः समुद्रा वा पर्वता वा कति स्मृताः ।
कियंति चैव वर्षाणि तेषु नद्यश्च काः स्मृताः ।।२
महाभूतप्रमाणं च लोकालोकं तथैव च ।

पर्यायं परिमाणं च गतिं चन्द्रार्कयोस्तथा ।
एतत्प्रब्रूहि नः सर्वं विस्तरेण यथार्थतः ॥३
सूत उवाच—हंत योऽहं प्रवक्ष्यामि पृथिव्यायामविस्तरम् ॥४
संख्यां चैव समुद्राणां द्वीपानां चैव विस्तरम् ।
द्वीपभेदसहस्राणि सप्तस्वन्तर्गतानि [illegible] ॥५
न शक्यंते क्रमेणेह वक्तुं यैः सततं जगत् ।
सप्त द्वीपान्प्रवक्ष्यामि चन्द्रादित्यग्रहैः सह ॥६
तेषां मनुष्यास्तर्केण प्रमाणानि प्रचक्षते ।
अचिन्त्याः खलु ये भावा न तांस्तर्केण साधयेत् ॥७

श्री सूतजी ने कहा—इस रीति [illegible] शांशपायनि ने [illegible] के सन्निवेश का [illegible] करके फिर उसने श्री सूतजी से नियत [illegible] से पृथिवी और उदधि [illegible] विस्तार के विषय में पूछा था ।१। द्वीप कितने हैं, समुद्र [illegible] पर्वत कितने बताये गये [illegible] ? कितने वर्ष हैं और उन वर्षों में नदियाँ कौन-कौन बतायी गयी हैं ? ।२। महाभूतों का क्या प्रमाण है तथा लोकालोक प्रमाण क्या है ? चन्द्र और सूर्य का पर्याय-परिमाण और गति क्या [illegible] ? हे भग-वान् ! यह [illegible] आप विस्तार पूर्वक यथार्थ रूप से हमको बतलाइए ।३। श्री सूतजी ने कहा—हर्ष की बात है, [illegible] आपके सामने पृथ्वी का आयाम और विस्तार बतलाऊँगा ।४। समुद्रों की संख्या और द्वीपों का विस्तार भी बत-लाऊँगा । यों तो द्वीपों के सहस्रों भेद होते हैं किन्तु वे भेद सात द्वीपों के सहस्रों भेद होते हैं किन्तु वे सभी भेद सात द्वीपों के ही अन्तर्गत है ।५। जिनके द्वारा निरन्तर यह जगत है [illegible] सब क्रम से यहाँ पर नहीं बताये जा सकते हैं । [illegible] इस [illegible] में तो आपके समक्ष में सात द्वीपों को ही बताऊँगा और उनके साथ चन्द्र-सूर्य और ग्रहों का वर्णन करूँगा ।६। मानव उनका प्रमाण तर्क के द्वारा कहा करते हैं । किन्तु निश्चित रूप से जो भाव चिन्तन करने के योग्य नहीं हैं उनका तर्क के सहारे [illegible] कभी नहीं करना चाहिए ।७।

प्रकृतिभ्यः परं यच्च तदचिन्त्यं प्रचक्षते ।
नववर्षं प्रवक्ष्यामि जंबूद्वीपं यथातथम् ॥८

विस्तारान्मण्डलाच्चैव योजनैस्तन्निबोधत ।
शतमेकं सहस्राणां योजनानां समंततः ॥९
नानाजनपदाकीर्णैः पुरैश्च विविधैश्शुभैः ।
सिद्धचारणसंकीर्णः पर्वतैरुपशोभितः ॥१०
सर्वधातुनिबद्धैश्च शिलाजालसमुद्भवैः ।
पर्वतप्रभवाभिश्च नदीभिः सर्वतस्ततः ॥११
जंबूद्वीपः पृथुः श्रीमान् सर्वतः पृथुमंडलः ।
नवभिश्चावृतः सर्वो भुवनैर्भूतभावनैः ॥१२
लवणेन समुद्रेण सर्वतः परिवारितः ।
जंबूद्वीपस्य विस्तारात् समेन तु समंततः ॥१३
प्रागायताः सुपर्वाणः षडिमे वर्षपर्वताः ।
अवगाढा ह्युभयतः समुद्रौ पूर्वपश्चिमौ ॥१४

जो प्रकृतियों से परे हैं वहीं चिन्तन न करने के योग्य नहीं है—ऐसा कहते हैं। नौ वर्षों से समन्वित जम्बू द्वीप को यथार्थ रूप से बतलाऊँगा ।८। उसको विस्तार से और मण्डल से योजनों के द्वारा समझ लीजिए। योजनाग्र से सभी ओर एक सौ सहस्र है। यह अनेक जनपदों से घिरा हुआ है और विविध परम शुभ नगरों से समन्वित है। यह सिद्धगण और चारणों से समाकीर्ण है और अनेक पर्वतों से उपशोभित है ।९-१०। शिलाओं के समुदायों से समुत्पन्न समस्त धातुओं से निबद्ध यह द्वीप है। इसके सभी ओर अनेक नदियाँ हैं जो पर्वत से उद्भूत हुई हैं ।११। यह जम्बूद्वीप बहुत विशाल है। श्री सम्पन्न है ... भी महान् है। भूतों के करने वाले नौ भुवनों से यह सम्पूर्ण समावृत है ।१२। इसके चारों ओर लवण समुद्र है जिसका भी विस्तार जम्बू द्वीप के विस्तार के ही समान है ।१३। प्रागायत सुपर्वा ये छै वर्ष पर्वत हैं जो दोनों ओर पूर्व और पश्चिम समुद्रों में अवगाढ हैं ।१४।

हिमप्रायश्च हिमवान् हेमकूटश्च हेमवान् ।
सर्वर्तु सु सुखश्चापि निषधः पर्वतो महान् ॥१५
चतुर्वर्णश्च सौवर्णो मेरुश्चारुतमः स्मृतः ।

द्वात्रिंशच्च सहस्राणि विस्तीर्णः [illegible] च मूर्द्धनि ॥१६
वृत्ताकृतिप्रमाणश्च चतुरस्रः समुच्छ्रितः ।
नानावर्णस्तु पार्श्वेषु प्रजापतिगुणान्वितः ॥१७
नाभिबंधनसंभूतो ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः ।
पूर्वतः श्वेतवर्णश्च ब्राह्मणस्तस्य तेन तत् ॥१८
पार्श्वमुत्तरतस्तस्य रक्तवर्णः स्वभावतः ।
तेनास्य क्षत्रभावस्तु मेरोर्नानार्थकारणात् [illegible] १९
पीतश्च दक्षिणेनासौ तेन वैश्यत्वमिष्यते ।
भृंगपत्रनिभश्चापि पश्चिमेन समाचितः ॥२०
तेनास्य शूद्रभावः स्यादिति वर्णाः प्रकीर्तिताः ।
वृत्तः स्वभावतः प्रोक्तो वर्णतः परिमाणतः ॥२१

हिमवान् गिरि में प्रायः हिम समूह होता है और हेमकूट पर्वत हेम से संयुत है। निषध एक महान पर्वत है जो सभी ऋतुओं में सुखदायी होता है ।१५। मेरु पर्वत चार वर्णों वाला [illegible] और सुवर्ण [illegible] युक्त है [illegible] अधिक सुन्दर कहा गया है और मूर्धा में बत्तीस सहस्र योजनों के विस्तार वाला है ।१६। यह वृत्त आकृति और [illegible] वाला है तथा चौकोर और समुच्छ्रित अर्थात् ऊँचा है। इसके पार्श्व भागों में अनेक वर्ण हैं तथा यह प्रजापति के गुणों से संयुत है ।१७। अव्यक्त जन्म वाले ब्रह्माजी के नाभिबन्धन [illegible] यह समुत्पन्न हुआ है। उसके पूर्व की ओर यह श्वेत वर्ण वाला है इससे ब्राह्मण है ।१८। उत्तर की ओर पार्श्वभाग [illegible] स्वभाव से ही रक्तवर्ण है। [illegible] कारण [illegible] मेरु के अनेक अर्थ कारण से इसका [illegible] [illegible] है ।१९। यह दक्षिण दिशा की ओर पीत [illegible] इससे [illegible] वैश्यभाव अभीष्ट होता है। पश्चिम की ओर पीत है इससे इसका वैश्यभाव अभीष्ट होता है। पश्चिम की ओर यह भृङ्गपत्र के सदृश समाचित है ।२०। इस कारण [illegible] इसका शूद्रभाव होता है—इस तरह से इसके चार वर्ण कहे गये हैं। यह स्वभाव से वृत्त कहा है और वर्ण तथा परिमाण से भी बताया गया है ।२१।

नीलश्च वैदूर्यमयः श्वेतः शुक्लो हिरण्मयः ।
मयूरबर्हवर्णस्तु शातकौम्भश्च शृंगवान् ॥२२

संततानि नदीभेदैरगम्यानि परस्परम् ॥३०
वसंति तेषु सत्त्वानि नानाजातीनि सर्वशः ।
इदं हैमवतं वर्षं भारतं नाम विश्रुतम् ॥३१
हेमकूटं परं ह्यस्मान्नाम्ना किंपुरुषं स्मृतम् ।
नैषधं हेमकूटात्तु हरिवर्षं तदुच्यते ॥३२
हरिवर्षात्परं चापि मेरोश्च तदिलावृतम् ।
इलावृतात्परं नीलं रम्यकं नाम विश्रुतम् ॥३३
रम्यकात्परतः श्वेतं विश्रुतं तद्धिरण्मयम् ।
हिरण्मयात्परं चैव शृंगवतः कुरु स्मृतम् ॥३४
धनुः संस्थे तु विज्ञेये द्वे वर्षे दक्षिणोत्तरे ।
दीर्घाणि तत्र चत्वारि मध्यमं तदिलावृतम् ॥३५

उनसे दो सहस्र नब्बे और जो [illegible] अस्सी आयत हैं। उनके मध्य में जनपद हैं जो सात वर्ष हैं ।२९। उन अन्तरों से विषम पर्वतों [illegible] जो हैं। निरन्तर बहने वाली नदियों के [illegible] [illegible] भेदों [illegible] जो परस्पर [illegible] [illegible] करने के अयोग्य हैं ।३०। उनमें अनेक जातियों वाले जीव निवास करते [illegible] और सभी ओर जो वहाँ रहा करते [illegible]। यह हैमवत वर्ष है जो भारत—इस नाम से प्रसिद्ध है ।३१। इसके आगे हेमकूट है जो नाम से किम्पुरुष कहा गया है। हेमकूट से आगे नैषध [illegible] जो हरि वर्ष कहा जाया करता है ।३२। हरिवर्ष से परे मेरु का यह इलावृत है। इलावृत से आगे नील है जो रम्यक [illegible] से विख्यात [illegible] ।३३। रम्यक से आगे श्वेत है जो हिरण्मय नाम से विश्रुत है। हिरण्मय से आगे शृङ्गवत् [illegible] जो कुरु कहा गया है ।३४। दक्षिण और उत्तर दिशा में धनु:संस्थ दो वर्ष जानने चाहिए। वहाँ पर चार दीर्घ हैं [illegible] [illegible] है वह इलावृत है ।३५।

अर्वाक् च निषधस्याथ वेदार्द्धं दक्षिणं स्मृतम् ।
परं नीलवतो यच्च वेदार्द्धं तु तदुत्तरम् ॥३६
वेदार्द्धे दक्षिणे त्रीणि त्रीणि वर्षाणि चोत्तरे ।
तयोर्मध्ये तु विज्ञेयो मेरुमध्य इलावृतम् ॥३७
दक्षिणेन [illegible] नीलस्य निषधस्योत्तरेण तु ।

उदगायतो महाशैलो माल्यवान्नाम नामतः ॥३८
योजनानां सहस्रं तु आनील निषधायतः ।
आयामतश्चतुस्त्रिंशत्सहस्राणि प्रकीर्तितः ॥३९
तस्य प्रतीच्यां विज्ञेयः पर्वतो गंधमादनः ।
आयामतोऽथ विस्ताराम्माल्यवानिति विश्रुतः ॥४०
परिमंडलयोर्मेरुर्मध्ये कनकपर्वतः ।
चतुर्वर्णः स सौवर्णः चतुरस्रः समुच्छ्रितः ॥४१
सुमेरुः शुशुभे शुभ्रो राजवत्समधिष्ठितः ।
तरुणादित्यवर्णाभो विधूम इव पावकः ॥४२

इसके [illegible] निषध के नीचे वेदी [illegible] अर्धभाग दक्षिण कहा [illegible] है । नीलवान् है और जो वेदार्ध है वह उत्तर है ।३६। वेदार्ध दक्षिण और उत्तर में तीन-तीन वर्ष हैं । उन दोनों के [illegible] में मेरु जानना चाहिए और मध्य में इलावृत [illegible] ।३७। नील [illegible] दक्षिण दिशा की ओर और निषध की उत्तर की ओर—उत्तर की ओर आयत एक महान् शैल है जो नाम से माल्यवान कहा जाता है ।३८। एक सहस्र योजन नील और निषध तक आयत है और आयाम से वह चौंतीस सहस्र योजन कहा गया [illegible] ।३९। इसके पश्चिम में गन्धमादन नामक पर्वत जानने के योग्य है । आयाम (चौड़ाई) और विस्तार से माल्यवान्—इस नाम से वह प्रसिद्ध [illegible] ।४०। परिमण्डलों के मध्य में मेरु पर्वत है जो कनक पर्वत है । वह चार वर्णों वाला और सुवर्ण [illegible] तथा चतुरस्र अर्थात् चौकोर समुच्छ्रित [illegible] ।४१। सुमेरु शोभाशाली होता था जो परम शुभ है और एक राजा के ही समान समधिष्ठित रहता है । इसके वर्ण की [illegible] तरुण सूर्य के ही [illegible] है [illegible] बिना धुँआ वाली अग्नि के तुल्य है ।४२।

योजनानां सहस्राणि चतुरशीतिरुच्छ्रितः ।
प्रविष्टः षोडशाधस्ताद्विस्तृतः षोडशैव तु ॥४३
शरावसंस्थितत्वात्तु द्वात्रिंशन्मूर्ध्नि विस्तृतः ।
विस्ताराञ्त्रिगुणस्तस्य परिणाहः समंततः ॥४४
मंडलेन प्रमाणेन व्यस्रं मानं तदिष्यते ।

चत्वारिंशत्सहस्राणि योजनानां समंततः ॥४५

अष्टाभिरधिकानि स्युस्त्र्यस्रे मानं प्रकीर्तितम् ।

चतुरस्रेण मानेन परिणाहः समंततः ॥४६

चतुःषष्टिसहस्राणि योजनानां विधीयते ।

स पर्वतो महादिव्यो दिव्यौषधिसमन्वितः ॥४७

भुवनैरावृतः सर्वो जातरूपमयैः शुभैः ।

तत्र देवगणाः सर्वे गंधर्वोरगराक्षसाः ॥४८

शैलराजे प्रदृश्यंते शुभाश्चाप्सरसां गणाः ।

स तु मेरुः परिवृतो भुवनैर्भूतभावनैः ॥४९

यह चौरासी सहस्र योजन ऊँचा है । एक योजन चार कोस [illegible] होता है । सोलह योजन नीचे की ओर प्रविष्ट [illegible] और सोलह ही योजन विस्तार वाला है ।४३। शराव संस्थित होने [illegible] बत्तीस योजन मूर्धा में विस्तृत है । विस्तार में सभी ओर उसका तिगुना परिमाण है ।४४। मण्डल प्रमाण से उसका मान [illegible] अभीष्ट होता है । [illegible] और चौवालीस सहस्र योजन [illegible] ।४५। त्र्यस्र [illegible] अर्थात् तीनों ओर में उसका मान आठ अधिक योजन कहा गया है । सभी ओर चतुरस्र मान से परिणाह होता है ।४६। चौंसठ सहस्र योजन कहा जाता है । यह पर्वत बहुत ही अधिक दिव्य है और दिव्य औषधियों से समन्वित है ।४७। यह सम्पूर्ण सुवर्णमय परम शुभ भुवनों से घिरा हुआ है । वहाँ पर समस्त देवों के गण—गन्धर्व—और [illegible] निवास किया करते हैं ।४८। उस शैलों के राजा के ऊपर शुभ अप्सराओं [illegible] समुदाय भी दिखलाई दिया करते हैं । यह मेरु पर्वत भूतों के भावन भुवनों [illegible] परिवृत रहा करता है ।४९।

चत्वारो यस्य देशा वै पार्श्वेष्वधिष्ठिताः ।

भद्राश्वा भरताश्चैव केतुमालाश्च पश्चिमाः ॥५०

उत्तराः कुरवश्चैव कृतपुण्यप्रतिश्रयाः ।

गंधमादनपार्श्वे तु परेषाऽपरगंडिका ॥५१

सर्वर्तु रमणीया च नित्यं प्रमुदिता शिवा ।

द्वात्रिंशत्तु सहस्राणि योजनैः पूर्वपश्चिमात् ॥५२

आयामतश्चतुस्त्रिंशत्सहस्राणि प्रमाणतः ।
तत्र ते शुभकर्माणः केतुमालाः प्रतिष्ठिताः ॥५३
तत्र काला नराः सर्वे महासत्त्वा महाबलाः ।
स्त्रियश्चोत्पलपत्राभाः सर्वास्ताः प्रियदर्शनाः ॥५४
तत्र दिव्यो महावृक्षः पनसः षड्रसाश्रयः ।
ईश्वरो ब्रह्मणः पुत्रः कामचारी मनोजवः ॥५५
तस्य पीत्वा फलरसं जीवंति च समायुतम् ।
पार्श्वे माल्यवतश्चापि पूर्वेऽपूर्वा तु गंधिका ॥५६

जिसके चार देश [illegible] जो चारों पार्श्वों में समधिष्ठित हैं। जिनके नाम भद्राश्व—भरत—केतुमाल और पश्चिम है ।५०। उत्तर और कुरु कृतपुण्य प्रतिश्रय हैं। गन्धमादन के पार्श्व में तो यह पर अपर गन्धिका [illegible] ।५१। ये सभी ऋतुओं में परम रमणीय हैं और नित्य ही प्रमुदित तथा स्निग्ध हैं। पूर्व और पश्चिम [illegible] बत्तीस सहस्र योजनों [illegible] युक्त हैं ।५२। प्रमाण से इनका आयाम चौंतीस सहस्र योजनों वाला है। वहाँ पर [illegible] परम शुभ कर्मों वाले केतुमाल देश प्रतिष्ठित [illegible] ।५३। वहाँ पर सब नर काले [illegible] जो महान् सत्त्व वाले और महान् बल [illegible] सम्पन्न [illegible] और वहाँ [illegible] स्त्रियाँ कमलदल की आभा वाली तथा देखने में बहुत प्रिय लगती हैं ।५४। वहाँ पर एक बहुत [illegible] [illegible] पनस का महान वृक्ष है जिसमें छैरस विद्यमान रहा करते हैं। उसकी स्वामी ब्रह्मा का पुत्र [illegible] से चरण करने वाले मनोजव है ।५५। वहाँ पर समायुत काल पर्यन्त उसके फलों का रस [illegible] पान करके प्राणी जीवित रहा करते हैं। पूर्व में माल्यवान् [illegible] पार्श्व में एक अपूर्व गन्धिका [illegible] ।५६।

—×—

॥ भारतवर्ष ॥

सूत उवाच—एवमेव निसर्गो वै वर्णितो भारते शुभे ।
दृष्टः परमतत्त्वज्ञैर्भूयः किं वर्णयामि वः ॥१
ऋषिरुवाच—यदिदं भारतं वर्षं यस्मिन्स्वायंभुवादयः ।
चतुर्दशैते मनवः प्रजासर्गेऽभवन्पुनः ॥२

एतद्वेदितुमिच्छामस्तन्नो निगद सत्तम ।
एतच्छ्रुत्वा वचस्तेषामब्रवीद्रोमहर्षणः ॥३
अत्र वो वर्णयिष्यामि वर्षेऽस्मिन् भारते प्रजाः ।
इदं तु मध्यमं चित्रं शुभाशुभफलोदयम् ॥४
उत्तरं यत्समुद्रस्य हिमवद्दक्षिणं च यत् ।
वर्षं तद्भारतं नाम यत्रेयं भारती [illegible] ॥५
भरणाच्च प्रजानां वै मनुर्भरत उच्यते ।
निरुक्तवचनाच्चैव वर्षं तद्भारतं स्मृतम् ॥६
इतः स्वर्गश्च मोक्षश्च मध्यश्चान्तश्च गम्यते ।
[illegible] खल्वन्यत्र मर्त्यानां भूमौ कर्म विधीयते ॥७

श्रीसूतजी ने कहा—इस प्रकार [illegible] परम शुभ भारत [illegible] वर्षों का निसर्ग है जो कि परम तत्वों [illegible] ज्ञाताओं के द्वारा देखा गया है [illegible] फिर आपके सामने [illegible] क्या वर्णन करूँ ? ।१। ऋषि ने कहा—जो यह भारतवर्ष [illegible] जिसमें ये चौदह स्वायम्भुव आदि मनुगण फिर प्रजा के सृजन करने में थे ।२। हे श्रेष्ठ पुरुषों में परमोत्तम ! हम लोग यही जानने की इच्छा करते हैं । यही आप हमारे समक्ष में वर्णन कीजिए । रोम हर्षणजी ने उन महर्षियों के इस [illegible] का श्रवण करके कहा था ।३। यहाँ पर इस भारतवर्ष [illegible] आप लोगों के सामने जो प्रजा हुई थी उनका [illegible] वर्णन करूँगा । यह तो मध्यम चित्र है जो शुभ और अशुभ फलों के [illegible] [illegible] ।४। समुद्र के उत्तर में और हिमवान् के दक्षिण में है वह भारत नाम वाला वर्ष [illegible] जहाँ पर यह भारत की प्रजा है ।५। प्रजाओं के भरण करने से भरत मनु कहा जाया करते हैं । इसी निरुक्ति के वचन से यह वर्ष भारत—इस नाम से कहा गया [illegible] । यहाँ से स्वर्ग होता है और यहाँ से ही बारम्बार जीवन-मरण के आवागमन से मुक्त हुआ [illegible] है और [illegible] [illegible] अन्त [illegible] शान मनुष्यों का कर्म करने का क्षेत्र नहीं है अर्थात् कर्म करने की भूमि यही देश है ।६-७।

भारतस्यास्य वर्षस्य नव भेदान्निबोधत ।
समुद्रांतरिता ज्ञेयास्ते त्वगम्याः परस्परम् ॥८

इन्द्रद्वीपः कशेरुमांस्ताम्रवर्णो गभस्तिमान् ।
नागद्वीपस्तथा सौम्यो गान्धर्वस्त्वथ वारुणः ॥९

अयं तु नवमस्तेषां द्वीपः सागरसंवृतः ।
योजनानां सहस्रं तु द्वीपोऽयं दक्षिणोत्तरात् ॥१०

आयतो ह्याकुमार्य्या वै चागंगाप्रभवाच्च वै ।
तिर्यगुत्तरविस्तीर्णः सहस्राणि नवैव तु ॥११

द्वीपो ह्युपनिविष्टोऽयं म्लेच्छैरन्तेषु सर्वशः ।
पूर्वे किराता ह्यस्यान्ते पश्चिमे यवनाः स्मृताः ॥१२

ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्या मध्ये शूद्राश्च भागशः ।
इज्यायुधवणिज्याभिर्वर्त्तयंतो व्यवस्थिताः ॥१३

तेषां संव्यवहारोऽत्र वर्त्तते वै परस्परम् ।
धर्मार्थकामसंयुक्तो वर्णानां तु स्वकर्मसु ॥१४

[illegible] भारत वर्ष के जो भेद हैं उनको आप लोग भली-भाँति समझ लीजिए ? वे [illegible] समुद्र [illegible] अन्तरित हैं—ऐसे ही मान लेने चाहिए और परस्पर में वे सब [illegible] अर्थात् अगम्य एवं गमन [illegible] करने [illegible] योग्य हैं ।८। उनके [illegible] ये हैं—इन्द्रद्वीप—कशेरुमान्—ताम्रवर्ण—गभस्तिमान्—नाग द्वीप—सौम्य—गन्धर्व—वारुण ।९। यह नौवाँ उन द्वीपों [illegible] जो सागर से संवृत है । यह द्वीप दक्षिण-उत्तर से एक सहस्र योजन है ।१०। भागीरथी गङ्गा [illegible] उद्गम स्थान से कन्या कुमारी तक यह आयत है । जो [illegible] योजन तिरछा उत्तर की ओर विस्तीर्ण है ।११। [illegible] द्वीप अन्तों में सभी ओर म्लेच्छों द्वारा उपनिविष्ट है । इसके अन्त में पूर्व [illegible] किरात रहा करते हैं और पश्चिम में यवन लोग बसे बताये गये हैं ।१२। [illegible] के भागों में ब्राह्मण—क्षत्रिय—वैश्य और शूद्र निवास करते हैं । जो यजार्चन—शस्त्र—प्रयोग—वाणिज्य से अभिवर्त्तन करते हुए व्यवस्थित हैं ।१३। यहाँ पर इन चारों वर्णों में परस्पर [illegible] समागीन व्यवहार रहा करता है । अपने वर्ण के अनुसार जो इनके अपने कर्म हैं उन्हीं में यह व्यवहार धर्म अर्थ और काम से समन्वित होता है ।१४।

संकल्पः पंचमानो च ह्याश्रमाणां यथाविधि ।
इह स्वर्गापवर्गार्थं प्रवृत्तिर्येषु मानुषी ॥१५
यस्त्वयं नवमो द्वीपस्तिर्यगायाम उच्यते ।
कृत्स्नं जयति यो ह्येनं सम्राडित्यभिधीयते ॥१६
अयं लोकस्तु वै सम्राडंतरिक्ष विराट् स्मृतम् ।
स्वराडसौ स्मृतो लोकः पुनर्वक्ष्यामि विस्तरात् ॥१७
सप्तैवास्मिन्सुपर्वाणो विश्रुताः कुलपर्वताः ।
तेषां सहस्रशश्चान्ये पर्वतास्तु समीपगाः ॥१९
अविज्ञाता. सारवंतो विपुलाश्चित्रसानवः ।
मंदरः पर्वतश्रेष्ठो वैहारो दुर्दुरस्तथा ॥२०
कोलाहलः ससुरसो मैनाको वैद्युतस्तथा ।
वातंधमो नागगिरिस्तथा पाण्डुरपर्वतः ॥२१

पंचमाम इस आश्रमों के सङ्कल्प विधि के ही अनुसार होता है । यहाँ पर जिनमें स्वर्ग प्राप्ति और मोक्ष के लिये मानुषी प्रवृत्ति रहा करती है । ।१५। जो यह नवम द्वीप है वह तिर्यग् [illegible] [illegible] कहा जाता है । इस सम्पूर्ण द्वीप पर अपने बल–विक्रम के द्वारा विजय प्राप्त कर लेता है वह यहाँ [illegible] सम्राट् चक्रवर्ती राजा [illegible] नाम [illegible] कहा जाया करता [illegible] ।१६। [illegible] लोक तो सम्राट है और अन्तरिक्ष विराट् कहा गया है । यह लोक स्वराट् [illegible] गया है । मैं फिर विस्तार के [illegible] बतलाऊँगा ।१७। इस द्वीप में सुपर्व [illegible] ही कुल पर्वत प्रसिद्ध हैं । महेन्द्र—मलय—सह्य—शुक्तिमान—ऋक्ष पर्वत—विन्ध्य और पारियात्र ये ही [illegible] कुल पर्वत हैं । इनके समीप में रहने वाले अन्य भी सहस्रों पर्वत हैं ।१८-१९। बहुत से पर्वतों [illegible] [illegible] ही नहीं [illegible] और वे सार सम्पन्न [illegible] विचित्र शिखरों वाले [illegible] । पर्वतों [illegible] परम श्रेष्ठ मन्दर—वैहार—दुर्दुर—कोलाहल—ससुरस—मैनाक—वैद्युत—वातंधम—नागगिरि और पाण्डुर पर्वत हैं ।२०-२१।

तुंगप्रस्थः कृष्णगिरिर्गोधनो गिरिरेव च ।
पुष्पगिर्युज्जयंतौ [illegible] शैलो रैवतकस्तथा ॥२२
श्रीपर्वतश्चित्रकूटः कूटशैलो गिरिस्तथा ।

अन्ये तेभ्योऽपरिज्ञाता ह्रस्वाः स्वल्पोपजीविनः ॥२३

तैर्विमिश्रा जनपदा आर्या म्लेच्छाश्च भागशः ।

पीयंते यैरिमा नद्यो गंगा सिंधुः सरस्वती ॥२४

शतद्रुश्चंद्रभागा च यमुना सरयूस्तथा ।

इरावती वितस्ता च विपाशा देविका कुहूः ॥२५

गोमती धूतपापा च बुद्बुदा च दृषद्वती ।

कौशिकी त्रिदिवा चैव निष्ठीवी गंडकी तथा ॥२६

चक्षुर्लोहित इत्येता हिमवत्पादनिःसृताः ।

वेदस्मृतिर्वेदवती वृत्रघ्नी सिंधुरेव ॥२७

वर्णाशा नंदना चैव सदानीरा महानदी ।

पाशा चर्मण्वती नूपा विदिशा वेत्रवत्यपि ॥२८

कुछ अन्य—कृष्णगिरि—जीवनगिरि—पुष्प गिरि—उज्जयन्त तथा रैवतक शैल हैं ।२२। श्री पर्वत-चित्रकूट—कूट शैलगिरि हैं । उनसे भी अन्य छोटे-छोटे गिरि हैं जो भली-भांति परिज्ञात नहीं हैं और स्वल्पोप जीवी हैं ।२३। इन शैलों से मिले-जुले जनपद बहुत भी हैं जिनके भागों में आर्य तथा म्लेच्छ निवास किया करते हैं जिनके द्वारा इन नदियों का जल-पान किया जाया करता है । उन नदियों के कुछ नामों का परिगणन किया जाता है जैसे—गङ्गा—सिन्धु—और सरस्वती हैं ।२४। शतद्रु—चन्द्रभागा—यमुना—सरयू—इरावती—वितस्ता—विपाशा—देविका—कुहू हैं ।२५। गोमती—धूतपापा—बुद्बुदा—दृषद्वती—कौशिकी—त्रिदिवा—निष्ठीवी—गण्डकी—चक्षु—लोहित—ये सब नदियाँ हिमवान् महाशैल के पाद से निकली हैं । वेदस्मृति—वेदवती—वृत्रघ्नी और सिन्धु हैं । वर्णाशा—नन्दना—सदानीरा—महानदी—पाशा—चर्मण्वती—नूपा—विदिशा—वेत्रवती हैं ।२६-२८।

क्षिप्रा ह्यवंति च तथा पारियात्राश्रयाः स्मृताः ।

शोणो महानदश्चैव नर्म्मदा सुरसा क्रिया ॥२९

मंदाकिनी दशार्णा च चित्रकूटा तथैव च ।

तमसा पिप्पला श्येना करमोदा पिशाचिका ॥३०

चित्रोपला विशाला च वंजुला वालुवाहिनी ।

सनेरुजा शुक्तिमती मंकुली त्रिदिवा क्रतुः ॥३१

ऋक्षवत्संप्रसूतास्ता नद्यो मणिजलाः शिवाः ।
तापी पयोष्णी निर्विन्ध्या सृपा च निषधा नदी ॥३२

वेणी वैतरणी चैव क्षिप्रा वाला कुमुद्वती ।
तोया चैव महागौरी दुर्गा चान्तशिला तथा ॥३३

विन्ध्यपादप्रसूतास्ता नद्यः पुण्यजलाः शुभाः ।
गोदावरी भीमरथी कृष्णवेणाथ वंजुला ॥३४

तुंगभद्रा सुप्रयोगा वाह्या कावेर्यथापि च ।
दक्षिणप्रवहा नद्यः सह्यपादाद्विनिः सृताः ॥३५

शिप्रा और अवन्ति ये नदियाँ पारियात्र के समाश्रय वाली हैं—ऐसा कहा गया है—शोण महानन्द है। सुरसा—नर्मदा—क्रिया—मन्दाकिनी दशार्णा—चित्रकूटा—तमसा—पिप्पला—श्येना—करमोदा और पिशाचिका—ये नदियाँ [illegible] ।२९-३०। चित्रोपला—विशाला—वंजुला—वालुवाहिनी—सनेरुजा—शुक्तिमती—मंकुली—त्रिदिवा—क्रतु नदियाँ हैं।३१। ये सब [illegible] वत्स पर्वत [illegible] संभूत होने वाली हैं जिनका जल मणि के [illegible] परम स्वच्छ और शिव हैं। तापी—पयोष्णी—निर्विन्ध्या—सृपा और निषधा नदी [illegible] ।३२। वेणी-वैतरणी—वाला—कुमुद्वती—तोया—महागौरी—दुर्गा-चान्तशिला नदियाँ हैं।३३। ये [illegible] नदियाँ विन्ध्य गिरि के पाद से प्रसूत होने वाली हैं जिनका जल परम पुण्यमय है और जो बहुत ही [illegible] है। गोदावरी-भीमरथी-कृष्णवेणा-वंजुला-तुङ्गभद्रा-सुप्रयोगा-वाह्या-कावेरी—ये नदियाँ दक्षिण की ओर प्रवाह करने वाली हैं और सह्य गिरि के पाद से निकलने वाली हैं।३४-३५।

कृतमाला ताम्रपर्णी पुष्पजात्युत्पलावती ।
नद्योऽभिजाता मलयात्सर्वाः शीतजलाः शुभाः ॥३६

त्रिसामा ऋषिकुल्या च वंजुला त्रिदिवाबला ।
लांगूलिनी वंशधरा महेन्द्रतनयाः स्मृताः ॥३७

ऋषिकुल्या कुमारी च मंदगा मंदगामिनी ।
कृपा पलाशिनी चैव शुक्तिमत्प्रभवाः स्मृताः ॥३८

तास्तु नद्यः सरस्वत्यः सर्वा गंगाः समुद्रगाः ।
विश्वस्य मातरः सर्वा जगत्पापहराः स्मृताः ॥३९
तासां नद्युपनद्योऽन्याः शतशोऽथ सहस्रशः ।
तास्विमे कुरुपांचालाः साल्वा माद्रेयजांगलाः ॥४०
शूरसेना भद्रकारा बोधाः सहपटच्चराः ।
मत्स्याः कुशल्याः सौशल्याः कुंतलाः काशिकोशलाः ॥४१
गोधा भद्राः कलिंगाश्च मागधाश्चोत्कलैः सह ।
मध्यदेश्या जनपदाः प्रायशस्तत्र कीर्त्तिताः ॥४२

कृतमाला-ताम्रपर्णी-पुष्पजाती-उत्पलावती—ये सब नदियाँ मलय पर्वत से अभिजात हुई हैं जिनका जल बहुत ही शीतल और शुभ है ।३६। त्रिसामा-ऋषिकुल्या-मंजुला-त्रिदिवा-बला-लांगूलिनी-वंशधरा—ये सब महेन्द्र-गिरि की तनया कही गयी हैं ।३७। ऋषिकुल्या-कुमारी-मन्दगामिनी-कृपा-पलाशिनी—ये नदियां शुक्तिमान् पर्वत से समुत्पत्ति पाने वाली हैं ।३८। ये सब नदियाँ सरस्वती हैं और सब समुद्र में गमन करने वाली गङ्गा हैं । ये सभी इस विश्व की मातायें हैं और जगत् के समस्त पापों के हरण करने वाली कही गयी हैं ।३९। इन सब नदियों की अन्य सैकड़ों और हजारों ही उप नदियाँ हैं । उनमें ये कुरु पाञ्चाल-साल्व-माद्रय-जांगल-शूरसेन-भद्रकार-बोध-सहपटच्चर-मत्स्य कुशल्य-कुन्तल-काशि-कोशल-गोध-भद्र-कलिंग-मागध-उत्कल-मध्य देश में होने वाले जनपद प्रायः करके यहाँ पर कीर्त्तित किये गये हैं ।४०-४२।

सह्यस्य चोत्तरान्तेषु यत्र गोदावरी नदी ।
पृथिव्यामपि कृत्स्नायां स प्रदेशो मनोरमः ॥४३
तत्र गोवर्द्धनं नाम पुरं रामेण निर्मितम् ।
रामप्रियार्थं स्वर्गीया वृक्षा दिव्यास्तथौषधीः ॥४४
भरद्वाजेन मुनिना तत्प्रियार्थेऽवरोपिताः ।
अतः पुरवरोद्देशस्तेन जज्ञे मनोरमः ॥४५
बाह्लीका वाटधानाश्च आभीरा कालतोयकाः ।
अपरांताश्च शुद्राश्च पाञ्चालाश्चर्ममंडलाः ॥४६

पंड्याश्च केरलाश्चैव चोलाः कुल्यास्तथैव च ।
सेतुका मूषिकाश्चैव क्षपणा वनवासिकाः ॥५६

कलिंगल-पारदाक-प्रस्थल-चकोरक-लमक-तालसाल-मूषिक-ईषिक-ये सब उत्तर दिशा में हैं। अब जो पूर्व दिशा में देश हैं उनका भी आप ज्ञान प्राप्त कर लीजिए। अङ्ग-वङ्ग-चोल भद्र-किरातों की जातियाँ-तोमर-हंसभंग-काश्मीर-तंगण-झिल्लिक-आहुक-हुणदर्व-अन्धवाक-मुद्गर अन्तगिरि-बहिर्गिरि—इसके अनन्तर प्लवङ्गव-मलद और मलवर्तिक जानने के योग्य हैं। ।५०-५२। समंतर-प्रावृषेय-भार्गव-गोपपार्थिव-प्राग्ज्योतिष-पुण्ड्र-विदेह-ताम्रलिप्तिक-मल्ल-मगध और गोनर्द—ये [illegible] पूर्व दिशा [illegible] हैं ऐसा कहा गया है। इसके उपरान्त दूसरे दक्षिणा पथवासी जनपद [illegible] ।५३-५५। पाण्ड्य-केरल-चोल-कुल्य-सेतुक-मूषिक-क्षपण और वनवासिक देश [illegible] ।५६।

माहाराष्ट्रा महिषिकाः कलिंगाश्चैव सर्वशः ।
आभीराश्च सहैषीका आटव्याः सारवास्तथा ॥५७
पुलिंदा विध्यमौलीया वैदर्भा दंडकैः सह ।
पौरिका मौलिकाश्चैव [illegible] भोगवर्द्धनाः ॥५८
कौंकणाः कंतलाश्चान्ध्राः पुलिन्दाङ्गारमारिषाः ।
दाक्षिणाश्चैव ये देशा अपरांस्तान्निबोधत ॥५९
सूर्पारकाः कलिवना दुर्गालाः कुन्तलैः ।
पौलेयाश्च किराताश्च रूपकास्तापकैः सह ॥६०
तथा करीतयश्चैव सर्वे चैव करंधराः ।
नासिकाश्चैव ये चान्ये ये चैवान्तरनर्मदाः ॥६१
सहकच्छाः समाहेया सह सारस्वतैरपि ।
कच्छिपाश्च सुराष्ट्राश्च आनर्ताश्चार्बुदैः सह ॥६२
इत्येते अपरांताश्च शृणुध्वं विंध्यवासिनः ।
मलदाश्च करूषाश्च मेकलाश्चोत्कलैः सह ॥६३

माहाराष्ट्र-महिषिक-कलिङ्ग-सब और आभीर-सहैषीक-आटव्य-सारव-पुलिन्द-विन्ध्य मौलीय-वैदर्भ-दण्डक-पौरिक-मौलिक-अश्मक-भोग वर्द्धन-कोङ्कण-कन्तल-आन्ध्र-पुलिन्द-अंगार-मारिष-ये सब देश दक्षिणा पथ वासी

युग संख्यावर्णन

ऋषिरुवाच—चतुर्युगानि यान्यासन्पूर्वं स्वायंभुवेऽन्तरे ।
तेषां निसर्गं तत्त्वं च श्रोतुमिच्छामि विस्तरात् ॥१
सूत उवाच—पृथिव्यादिप्रसंगेन यन्मया प्रागुदीरितम् ।
तेषां चतुर्युगं ह्येतत्तद्वक्ष्यामि निबोधत ॥२
संख्ययेह प्रसंख्याय विस्तराच्चैव सर्वशः ।
युगं च युगभेदश्च युगधर्मस्तथैव च ॥३
युगसंख्यांशकश्चैव युगसंधानमेव च ।
षट्प्रकारयुगाख्यैषा तां प्रवक्ष्यामि तत्त्वतः ॥४
लौकिकेन प्रमाणेन निष्पाद्याब्दं तु मानुषम् ।
तेनाब्देन प्रसंख्याय वक्ष्यामीह चतुर्युगम् ।
निमेषकालतुल्यं हि विद्याल्लघ्वक्षरं च यत् ॥५
काष्ठा निमेषा दश पंच चैव त्रिंशच्च काष्ठा गणयेत्कलां तु ।
त्रिंशत्कलाश्चापि भवेन्मुहूर्तस्तैस्त्रिंशता राज्यहनी समेते ॥६
अहोरात्रौ विभजते सूर्यो मानुषलौकिकौ ॥७

ऋषि ने कहा—जो चार युग हैं और पूर्व में स्वायम्भुव मन्वन्तर थे। हे भगवन्! उनका निसर्ग कैसे हुआ और उनका क्या है—यह विस्तार के श्रवण करना चाहता हूँ ।१। श्रीसूत जी ने कहा—पृथिवी आदि के प्रसंग से जो मैंने पूर्व में कहा उनके चारों युगों के विषय में बतलाऊँगा। उसको भली-भाँति लीजिए ।२। यहाँ पर संख्या द्वारा प्रसंख्यान करके और प्रकार से विस्तृत कहूँगा। युग-युग भेद-युग का धर्म-युग सन्धि का अंश-युग सन्धान-यह षट् प्रकार युग की है। उन सबको तात्त्विक रूप आपको बतलाऊँगा ।३-४। लौकिक प्रमाण मनुष्य के वर्ष निष्पादन करके उसी अब्द से प्रसंख्यान करके यहाँ पर चारों युगों को बतलाऊँगा। निमेष उसे ही जानना चाहिए जो कि लघु अक्षर के तुल्य होता है ।५। पन्द्रह निमेषों का जितना काल होता है उसकी एक काष्ठा होती और तीस काष्ठाओं के समय को

कला गिनना चाहिए। तीस कलाओं का एक मुहूर्त होता है। तीस मुहूर्तों का रात्रि और दिन हुआ करते हैं।६। दिन और रात्रि का विभाग सूर्य किया करता है जो कि मनुष्य का लौकिक होता है।७।

तत्राहः कर्मचेष्टायां रात्रिः स्वप्नाय कल्पते ।
पित्र्ये रात्र्यहनी मासः प्रविभागस्तयोः पुनः ॥८
कृष्णपक्षस्त्वहस्तेषां शुक्लः स्वप्नाय शर्वरी ।
त्रिंशद्ये मानुषा मासाः पित्र्यो मासस्तु सः स्मृतः ॥९
शतानि त्रीणि मासानां षष्ट्या चाप्यधिकानि वै ।
पित्र्यः संवत्सरो ह्येष मानुषेण विभाव्यते ॥१०
मानुषेणैव मानेन वर्षाणां यच्छतं भवेत् ।
पितॄणां त्रीणि वर्षाणि संख्यातानीह तानि वै ॥११
दश चैवाधिका मासाः पितृसंख्येह संज्ञिताः ।
लौकिकेनैव मानेन ह्यब्दो यो मानुषः स्मृतः ॥१२
एतद्दिव्यमहोरात्रं शास्त्रे स्यान्निश्चयो गतः ।
दिव्ये रात्र्यहनी वर्षं प्रविभागस्तयोः पुनः ॥१३
अहस्तत्रोदगयनं रात्रिः स्याद्दक्षिणायनम् ।
ये ते रात्र्यहनी दिव्ये प्रसंख्याते तयोः पुनः ॥१४

उनमें दिन तो कर्मों के करने की चेष्टा में समझा जाता है और रात्रि का समय सोने के लिए कहा जाता है। पित्र्य रात्रि और दिन मास होता है। उन दोनों का प्रविभाग फिर होता है।८। उनका कृष्ण पक्ष उनकी रात्रि होती है। मनुष्यों के जो तीस मास होते हैं वही पितृगणों का मास कहा गया है।९। तीन सौ साठ मासों का पितृगणों का एक वर्ष होता है। यह संख्या मनुष्यों के मासों से विभावित हुआ करती है।१०। मनुष्यों के मान से जो सौ वर्ष होते हैं वे पितृगणों के तीन वर्ष संख्यात किये गये हैं।११। यहाँ पर दस मास अधिक पितृ गणों की संख्या संज्ञा वाली हुई है। लौकिक मान से ही जो मनुष्यों का वर्ष कहा गया है।१२। यह दिव्य अर्थात् देवों का अहोरात्र अर्थात् एक दिन और रात है जो शास्त्र निश्चय को प्राप्त हुआ है। दिव्य रात्रि और दिन वर्ष है और उन दोनों का फिर

प्रतिष्ठत है ।१३। यहाँ पर जो दिन है वह उत्तरायण होता है और जो रात्रि है वह दक्षिणायन होता है जो ये दिव्य रात्रि और दिन हैं उनका पुनः प्रसंख्यान है ।१४।

त्रिंशद्यानि तु वर्षाणि दिव्यो मासस्तु स स्मृतः ।
यन्मानुषं शतं विद्धि दिव्या मासास्त्रयस्तु ते ॥१५
दश चैव तथाऽहानि दिव्यो ह्येष विधिः स्मृतः ।
त्रीणि वर्षशतान्येव षष्टिवर्षाणि यानि तु ।
दिव्यः संवत्सरो ह्येष मानुषेण प्रकीर्त्तितः ॥१६
त्रीणि वर्षसहस्राणि मानुषाणि प्रमाणतः ।
त्रिंशदन्यानि वर्षाणि मतः सप्तर्षिवत्सरः ॥१७
नव यानि सहस्राणि वर्षाणां मानुषाणि तु ।
अन्यानि नवतिश्चैव ध्रुवः संवत्सरः स्मृतः ॥१८
षट्त्रिंशत्तिसहस्राणि वर्षाणि मानुषाणि तु ।
वर्षाणि तु शतं ज्ञेयं दिव्यो ह्येष विधिः स्मृतः ॥१९
त्रीण्येव नियुतान्याहुर्वर्षाणां मानुषाणि तु ॥२०
षष्टिश्चैव सहस्राणि संख्यातानि तु संख्यया ।
दिव्यवर्षसहस्रं तु प्राहुः संख्याविदो जनाः ॥२१

मनुष्यों के जो तीस वर्ष होते हैं उतने समय का देवों का दिव्य मास कहा जाता है । जो मानवों के एक सौ वर्ष हैं उतने समय का दिव्य तीन मास हुआ करते हैं ।१५। तथा दश दिन हैं—यही दिव्य विधि कही गयी है । तीन सौ साठ जो वर्ष मनुष्यों के होते हैं वह एक दिव्य सम्वत्सर कहा गया है ।१६। मनुष्यों के तीन हजार वर्ष प्रमाण से होते हैं और अन्य वर्ष हैं उतने समय का सप्तर्षियों का एक वत्सर होता है ।१७। मानवों के जो नौ हजार वर्ष होते हैं और अन्य नब्बे वर्ष हैं—इतने समय का ध्रुव सम्वत्सर हुआ करता है । मनुष्यों के छत्तीस हजार वर्षों का जो समय होता है वह समय होता है वह समय देवों का अर्थात् दिव्य सौ वर्ष हुआ करते हैं—यह विधि कही गयी है ।१८-१९। तीन नियुत ही मनुष्यों के वर्ष कहे जाते हैं ।२०। संख्या के द्वारा साठ सहस्र वर्ष ही संख्यात किये गये हैं । संख्या के ज्ञाता मनीषी गण दिव्य सहस्र वर्ष कहते हैं ।२१।

इत्येवमृषिभिर्गीतं दिव्यया संख्यया त्विह ।
दिव्येनैव प्रमाणेन युगसंख्याप्रकल्पनम् ॥२२
चत्वारि भारते वर्षे युगानि कवयोऽब्रुवन् ।
कृतं त्रेता द्वापरं च कलिश्चेति चतुष्टयम् ॥२३
पूर्वं कृतयुगं नाम ततस्त्रेता विधीयते ।
द्वापरं च कलिश्चैव युगान्येतानि कल्पयेत् ॥२४
चत्वार्याहुः सहस्राणि वर्षाणां च कृतं युगम् ।
तस्य तावच्छती संध्या संध्यया: संध्यया समः ॥२५
इतरेषु ससंध्येषु ससंध्यांशेषु च त्रिषु ।
एकन्यायेन वर्तन्ते सहस्राणि शतानि च ॥२६
त्रीणि द्वे च सहस्राणि त्रेताद्वापरयोः क्रमात् ।
त्रिशती द्विशती संध्ये संध्यांशौ चापि तत्समौ ॥२७
कलिं वर्षसहस्रं तु युगमाहुर्द्विजोत्तमाः ।
तस्यैकशतिका संध्या संध्यांश संध्यया समः ॥२८

ऋषियों ने यह इस प्रकार से दिव्य संख्या के [illegible] गान किया [illegible] और दिव्य प्रमाण के ही द्वारा युगों की प्रकृष्ट संख्या की कल्पना की जाया करती है ।२२। कविगणों ने भारत [illegible] [illegible] चार युग बताये [illegible] । कृतयुग-त्रेता-द्वापर और कलियुग ये चार युगों की चौकड़ी है ।२३। सबसे प्रथम जो युग है [illegible] कृतयुग अर्थात् सत्ययुग है । इसके उपरान्त त्रेता युग का विधान किया जाता है । फिर द्वापर और इसके बाद कलियुग [illegible] है—इन [illegible] युगों की कल्पना की जाती है ।२४। कृतयुग के बरतने [illegible] काल चार सहस्र दिव्य वर्षों का होता है । उस युग की उतने ही सौ वर्षों की सन्ध्या होती है है और सन्ध्या का अंश सन्ध्या के ही [illegible] होता है ।२५। [illegible] के सहित और सन्ध्यांशों के सहित अन्य तीनों में एक ही न्याय से सहस्र और शत करना करते हैं ।२६। त्रेता और द्वापर [illegible] [illegible] से तीन और दो सहस्र होते हैं । तीन सौ और दो सौ सन्ध्यायें और सन्ध्यांश भी उनके ही समान हुआ करते हैं ।२७। द्विजोत्तम कलियुग एक सहस्र वर्ष कहते हैं । उसकी एक सौ वर्षों वाली सन्ध्या होती है और सन्ध्या [illegible] ही समान सन्ध्या का अंश हुआ करता है ।२८।

तेषां द्वादशसाहस्री युगसंख्या प्रकीर्तिता ।
कृतं त्रेता द्वापरं च कलिश्चैव चतुष्टयम् ॥२९
अत्र संवत्सरा दृष्टा मानुषेण प्रमाणतः ।
कृतस्य तावद्वक्ष्यामि वर्षाणि च निबोधत ॥३०
सहस्राणां शतान्याहुश्चतुर्दश हि संख्यया ।
चत्वारिंशत्सहस्राणि तथान्यानि कृतं युगम् ॥३१
तथा शतसहस्राणि वर्षाणि दशसंख्यया ।
अशीतिश्च सहस्राणि कालस्त्रेतायुगस्य सः ॥३२
सप्तैव नियुतान्याहुर्वर्षाणां मानुषेण तु ।
विंशतिश्च सहस्राणि [illegible] स द्वापरस्य [illegible] ॥३३
तथा शतसहस्राणि वर्षाणि त्रीणि संख्यया ।
षष्टिश्चैव सहस्राणि [illegible]: कलियुगस्य तु ॥३४
एवं चतुर्युगे काले ऋते संध्यांशकैः स्मृतः ।
नियुतान्येव षड्विंशन्निरंशानि युगानि वै ॥३५
चत्वारिंशत्तथा त्रीणि नियुतानीह संख्यया ।
विंशतिश्च सहस्राणि स संध्यांशश्चतुर्युगः ॥३६
एवं चतुर्युगाख्यानां साधिका ह्येकसप्ततिः ।
कृतत्रेतादियुक्तानां मनोरन्तरमुच्यते ॥३७

उनकी बारह सहस्रों वाली युगों की संख्या कीर्तित की गयी है। इस प्रकार से कृतयुग-त्रेता-द्वापर और कलियुग इन चार युगों की चौकड़ी है।२९। यहाँ पर मानुष प्रमाण [illegible] सम्वत्सर देखे गये हैं। [illegible] कृत युग के वर्षों को बतलाऊँगा। उनको भली भाँति समझ लीजिए।३०। संख्या के द्वारा चौदह सौ सहस्र कहे गये [illegible]। [illegible] चालीस सहस्र कृतयुग [illegible]।३१। दश की संख्या से सौ सहस्र वर्ष हैं। वह अस्सी सहस्र काल त्रेतायुग का होता है।३२। मानुष प्रमाण से सात ही विपुल वर्ष कहे गये हैं और द्वापर युग [illegible] काल बीस सहस्र वर्ष होता है।३३। संख्या से तीन शत सहस्र वर्ष कलियुग का काल होता है।३४। इस प्रकार से इन चार युगों में ऋत सन्ध्यांशों

के सहित काल कहा गया है। युग निरस छब्बीस नियुत ही [illegible] ।३५। इन चारों युगों का संख्या से तैंतालीस नियुत और बीस हजार वह सन्ध्यांश होता है ।३६। इस प्रकार से कृत [illegible] लेकर त्रेता आदि चारों युगों की साधिका इकहत्तर होती है। इसी [illegible] एक मन्वन्तर कहा जाता है अर्थात् इकहत्तर चारों युगों की चौकड़ियाँ [illegible] [illegible] हो जाती हैं तभी एक मनु के शासन का समय पूर्ण होकर दूसरा मन्वन्तर आता [illegible] ।३७।

> अंतरिक्षे समुद्रे [illegible] पाताले पर्वतेषु [illegible] ।
> इज्या दानं तपः सत्यं त्रेतायां धर्म उच्यते ।।३८
> तदा प्रवर्त्तते धर्मो वर्णाश्रमविभागशः ।
> मर्यादास्थापनार्थं च दण्डनीतिः प्रवर्त्तते ।।३६
> हृष्टपुष्टाः प्रजाः सर्वा अरोगाः पूर्णमानसाः ।
> एको वेदश्चतुष्पादस्त्रेतायुगविधौ स्मृतः ।।४०
> त्रीणि वर्षसहस्राणि तदा जीवन्ति मानवाः ।
> पुत्रपौत्रसमाकीर्णा म्रियंते च क्रमेण तु ।।४१
> एष त्रेतायुगे धर्मस्त्रेतासंध्यां निबोधत ।
> त्रेतायुगस्वभावानां संध्यापादेन वर्त्तते ।
> संध्यापादः स्वभावस्तु सोऽशपादेन तिष्ठति ।।४२

अन्तरिक्ष में—समुद्र में—पाताल में और पर्वतों में इज्या-दान, तप और सत्य का समाचरण ही त्रेतायुग में धर्म कहा जाया करता है ।३८। उस समय में वर्णों और आश्रमों के विभाग के अनुसार धर्म की प्रवृत्ति हुआ करती [illegible] । मर्यादा की स्थापना करने के लिए [illegible] देने की नीति भी [illegible] समय में प्रवृत्त होती है ।३६। उस [illegible] में समस्त प्रजा के जन समुदाय हृष्ट-पुष्ट, रोगों से रहित और पूर्ण [illegible] वाले होते हैं। त्रेतायुग की विधि में चार पादों वाला एक ही वेद कहा [illegible] है ।४०। उस समय [illegible] मानवों की आयु बड़ी होती थी और वे तीन हजार वर्षों तक जीवित करते रहा थे। वे सब अपने पुत्रों—पौत्रों से घिरे [illegible] रहा करते थे तथा उनकी मृत्यु भी आयु के अनुसार [illegible] से ही हुआ करती थी ।४१। त्रेतायुग में इसी प्रकार से धर्म होता [illegible] । अब त्रेता की [illegible] [illegible] भी ज्ञान प्राप्त कर लीजिए। त्रेता

युग के जो स्वभाव उनको बरता करती है। सन्ध्यापादका स्वभाव जो है वह अंश पाद से स्थित होता ।८२।

—※—

चतुर्युगाख्यान वर्णनम्

सूत उवाच—अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि द्वापरस्य विधिं पुनः ।
तत्र त्रेतायुगे क्षीणे द्वापरं प्रतिपद्यते ॥१
द्वापरादौ प्रजानां तु सिद्धिस्त्रेतायुगे तु या ।
परिवृत्ते युगे तस्मिंस्ततस्ताभिः प्रणश्यति ॥२
ततः प्रवर्त्तते तासां प्रजानां द्वापरे पुनः ।
संभेदश्चैव वर्णानां कार्याणां च विपर्ययः ॥३
यज्ञावधारणं दण्डो मदो दंभः क्षमा बलम् ।
एषा रजस्तमोयुक्ता प्रवृत्तिर्द्वापरे स्मृता ॥४
आद्ये कृते यो धर्मोऽस्ति स त्रेतायां प्रवर्त्तते ।
द्वापरे व्याकुलीभूत्वा प्रणश्यति कलौ युगे ॥५
वर्णानां विपरिध्वंसः संकीर्यन्ते तथाश्रमाः ।
द्वैविध्यं प्रतिपद्यन्ते युगे तस्मिन्श्रुतिस्मृती ॥६
द्वैधास्तथा श्रुतिस्मृत्योर्निश्चयो नाधिगम्यते ।
अनिश्चयाधिगमनाद्धर्मतत्त्वं न विद्यते ॥७

श्री सूतजी ने कहा—इसके आगे फिर द्वापर युग की विधि का वर्णन करूँगा। वहाँ पर त्रेता युग के क्षीण होने पर द्वापर युग प्रतिपन्न होता है ।१। द्वापर युग के आदि में प्रजाओं की वही सिद्धि थी जो कि त्रेतायुग में थी। उस युग के परिवर्तित हो जाने पर इसके पश्चात् सिद्धियों से विनष्ट हो जाता है।२। फिर द्वापर उन प्रजाओं का संभेद प्रवृत्त हो जाता है और समस्त वर्णों का और कार्यों का विपर्यय हो जाया करता है।३। यज्ञों का अवधारण, दण्ड, दम्भ, और बल द्वापर में यह प्रवृत्ति जो थी वह रजोगुण और तमोगुण से युक्त कही गयी है।४। सबसे आदि में होने वाले कृतयुग में जो धर्म है वह त्रेतायुग प्रवृत्त होता है। द्वापर युग में वह धर्म व्याकुलित होकर कलियुग में विनष्ट हो है।५। सभी वर्णों का विशेष से परिध्वंस होता है आश्रम भी विसङ्कर जाया करते

हैं। उस युग में श्रुतियाँ और स्मृतियाँ दो प्रकारों को प्राप्त कर लिया करती हैं। श्रुति-स्मृतियों के दो [illegible] [illegible] [illegible] हो जाने से किसी निश्चय का अधिगम नहीं हुआ करता है और अनिश्चय के अधिगम से धर्म का वास्तविक तत्व नहीं रहता है।६-७।

धर्मतत्वेन मिश्राणां मतिभेदो भवेन्नृणाम् ।
परस्परविभिन्नैस्तैर्दृष्टीनां विभ्रमेण [illegible] ॥८
अयं धर्मो ह्ययं नेति निश्चयो नाधिगम्यते ।
कारणानां च वैकल्यात्कार्याणां चाप्यनिश्चयात् ॥९
मतिभेदेन तेषां वै दृष्टीनां विभ्रमो भवेत् ।
ततो दृष्टिविभिन्नैस्तु कृतं शास्त्राकुलं त्विदम् ॥१०
एको वेदश्चतुष्पाद्धि त्रेतास्विह विधीयते ।
संक्षयाद्यायुषश्चैव व्यस्यते द्वापरेषु च ॥११
ऋषिभिर्मात्पुनर्भेदाद्भिद्यते दृष्टिविभ्रमैः ।
मन्त्रब्राह्मणविन्यासैः स्वरवर्णविपर्ययैः ॥१२
संहिता ऋग्यजुः साम्नां संपठ्यन्ते महर्षिभिः ।
सामान्या वैकृताश्चैव दृष्टिभिन्नैः क्वचित्क्वचित् ॥१३
ब्राह्मणं कल्पसूत्राणि मन्त्रप्रवचनानि च ।
अन्येऽपि प्रस्थितास्तान्वै केचित्तान्प्रत्यवस्थिताः ॥१४

धार्मिकता के न रहने से मित्र मनुष्यों की मति का भेद हो जाया करता है। वे सब आपस को भी किसी के साथ सहानुभूति नहीं होती है। [illegible] की सृष्टि [illegible] विभ्रम हो जाया करता है।८। यह धर्म है अथवा यह अधर्म है—इसका कोई भी निश्चय नहीं हुआ करता है। कारणों के विकल्प होने से और कार्यों के निश्चय नहीं होने [illegible] धर्माधर्म का कोई निश्चय नहीं हुआ करता है।९। उन मनुष्यों की मति के विभेद होने से उनकी दृष्टियों [illegible] भी विभ्रम हो जाता है। फिर विभिन्न दृष्टियों वाले मनुष्यों के द्वारा शास्त्रों को भी आकुलित कर दिया [illegible]।१०। वेद एक ही था उसको त्रेता-युग [illegible] चार पादों वाला किया [illegible] है। आयु के संक्षय होने से द्वापर युग [illegible] यह व्यवस्थित हो [illegible] है।११। ऋषियों ने और मन्त्रों के फिर भेद-

होने से यह दृष्टि के विभ्रमों से युक्त हो [illegible] है । जिस [illegible] मन्त्र भाग और ब्राह्मण भाग का विन्यास होता है और स्वरों तथा वर्णों का विपर्यय होता है ।१२। महर्षियों के द्वारा ऋग्वेद-यजुर्वेद और सामवेद की संहितायें पढ़ी जाया करती हैं । कहीं पर सामान्य और कहीं-कहीं पर दृष्टि की भिन्नता होने पर संकृत से पढ़ी जाया है ।१३। ब्राह्मण-कल्प सूत्र और मन्त्र प्रवचन और अन्य भी प्रचलित [illegible] और कुछ उनके प्रति अवस्थित हैं ।१४।

द्वापरेषु प्रवर्त्तन्ते निवर्त्तन्ते कलौ युगे ।
एकमाध्वर्यवं त्वासीत्पुनर्द्वैधमजायत ॥१५
सामान्यविपरीतार्थैः कृतशास्त्राकुलं त्विदम् ।
आध्वर्यवस्य प्रस्थानैर्बहुधा व्याकुलीकृतैः ॥१६
तथैवाथर्वऋक्साम्नां विकल्पैश्चापि संज्ञया ।
व्याकुले द्वापरे नित्यं क्रियते भिन्नदर्शनैः ॥१७
तेषां भेदाः प्रतीभेदा विकल्पाश्चापि संख्यया ।
द्वापरे संप्रवर्त्तन्ते विनश्यंति ततः कलौ ॥१८
तेषां विपर्ययोत्पन्ना भवन्ति द्वापरे पुनः ।
अवृष्टिर्मरणं चैव तथैव व्याध्युपद्रवाः ॥१९
वाङ्मनः कर्मजैर्दुःखैर्निर्वेदो जायते पुनः ।
निर्वेदाज्जायते तेषां दुःखमोक्षविचारणा ॥२०
विचारणाच्च वैराग्यं वैराग्याद्दोषदर्शनम् ।
दोषदर्शनतश्चैव द्वापरेऽज्ञानसंभवः ॥२१

यह [illegible] कुछ द्वापर युग में प्रवृत्त होते हैं और कलियुग में भी सभी भेद-प्रभेद निवृत्त हो जाते हैं । एक आध्वर्यव था और फिर दो प्रकार हो गये थे ।१५। साधारण और विपरित अर्थों के द्वारा यह शास्त्र आकुल कर दिया गया था यह बहुधा आध्वर्यव [illegible] व्याकुली कृत प्रस्थानों [illegible] द्वारा ही हुआ था ।१६। तथा अर्थात् उसी प्रकार [illegible] संज्ञा के द्वारा अथर्व-ऋक् और सामों के विकल्पों से भी हुआ था । नित्य ही इस तरह से व्याकुल द्वापर में विभिन्न दर्शन शास्त्रों के द्वारा किया जाता है ।१७। संख्या [illegible] उनके भेद-प्रतीभेद-और विकल्प द्वापर युग में भली-भाँति प्रवृत्त होते हैं और फिर [illegible] कलियुग आ जाता है तो सभी विनष्ट हो जाया करते [illegible] ।१८। द्वापर में फिर

उनके विपरीत समुत्पन्न हो जाते हैं। वृष्टि का अभाव-व्याधि-उपद्रव-मरण-ये सब होते हैं।१९। कायिक, वाचिक और मानसिक सभी प्रकार के दुःख होते हैं और इन दुःखों के समुदाय से फिर मनों निर्वेद उत्पन्न हो जाता है। यह सभी निस्सार है—ऐसा जब निर्वेद हृदयों में होता है तो फिर उन प्राणियों के हृदयों में इन सब दुःखों से छुटकारा पाने का विचार होता है।२०। ऐसी जब विचारणा होती है तो उससे सबके प्रति विरागता हो जाया करती है और उस वैराग्य से भोगोपभोगों में दोषों का दर्शन होने लगता है। दोषों के देखने से ही द्वापर में ज्ञान को उत्पत्ति हो जाती है।२१।

तेषामज्ञानिनां पूर्वमाद्ये स्वायंभुवेऽन्तरे ।
उत्पद्यंते हि शास्त्राणां द्वापरे परिपंथिनः ॥२२
आयुर्वेदविकल्पश्च अङ्गानां ज्योतिषस्य च ।
अर्थशास्त्रविकल्पाश्च हेतुशास्त्रविकल्पनम् ॥२३
प्रक्रियाकल्पसूत्राणां भाष्यविद्याविकल्पनम् ।
स्मृतिशास्त्रप्रभेदश्च प्रस्थानानि पृथक्पृथक् ॥२४
द्वापरेष्वभिवर्त्तते मतिभेदाश्रयान्नृणाम् ।
मनसा कर्मणा वाचा कृच्छ्राद्वार्ता प्रसिद्ध्यति ॥२५
द्वापरे सर्वभूतानां कायक्लेशपुरस्कृता ।
लोभो धृतिर्वणिक्पूर्वा तत्वानामविनिश्चयः ॥२६
वेदशास्त्रप्रणयनं धर्माणां संकरस्तथा ।
वर्णाश्रमपरिध्वंसः कामक्रोधौ तथैव च ॥२७
द्वापरेषु प्रवर्त्तन्ते रोगो लोभो वधस्तथा ।
वेदं व्यासश्चतुर्द्धा तु व्यस्यते द्वापरादिषु ॥२८

उन ज्ञान से रहित मानवों के पहिले स्वायम्भुव मन्वन्तर में जो कि सबसे पहिला है उस द्वापर में सभी शास्त्रों के परिपन्थी अर्थात् विरोध करने वाले लोग समुत्पन्न हो जाया करते हैं।२२। रोगों के विषय में आयुर्वेद शास्त्र का विकल्प और ज्योतिष शास्त्र का विकल्प-अर्थशास्त्र के विषय में विकल्प और हेतु शास्त्र का विकल्प है।२३। कल्पसूत्रों की प्रक्रिया, भाष्य विद्या का विकल्प और स्मृति शास्त्रों के प्रभेद ऐसे अलग-अलग प्रस्थान हैं

।२४। ये सभी द्वापर युग में मनुष्यों की बुद्धियों के भेद होने से अभिवर्तित हैं। मन से-वचन से और कर्म से बड़ी कठिनाई से वार्त्ता प्रसिद्ध होती है ।२५। द्वापर में समस्त प्राणियों के कार्य शारीरिक क्लेश के साथ ही होते हैं। सबकी वृत्ति होती है जैसी कि वणिजों की हुआ करती है और किसी को भी तत्वों का निश्चय नहीं होता है ।२६। लोग स्वयं ही वेदों और शास्त्रों का प्रणयन किया करते हैं और धर्म सब मिलकर एकमेक जाते हैं और धर्मों की सङ्कुरता हो जाती है। चारों वर्णों और चारों आश्रमों का पूर्णतया विध्वंस हो जाता है और प्राणियों में प्रायः काम और क्रोध उत्पन्न हो जाया करते हैं ।२७। द्वापर युग में लोगों के मनों में राग-लोभ और मद करने की भावनायें उत्पन्न हो जाया करती हैं। द्वापर के आदि में व्यासदेव जी ने वेद के चार भाग किये थे ।२८।

निःशेषे द्वापरे तस्मिस्तस्य संध्या तु यादृशी ।
प्रतिष्ठितगुणैर्हीनो धर्मोऽसौ द्वापरस्य तु ॥२९
तथैव संध्या पादेन ह्यंशः संध्या इहोच्यते ।
द्वापरस्यावशेषेण तिष्यस्य तु निबोधत ॥३०
द्वापरस्यांशशेषेण प्रतिपत्तिः कलेरपि ।
हिंसासूयानृतं माया वधश्चैव तपस्विनाम् ॥३१
एते स्वभावास्तिष्यस्य साधयंति च वै प्रजाः ।
एष धर्मः कृतः कृत्स्नो धर्मश्च परिहीयते ॥३२
मनसा कर्मणा स्तुत्या वार्ता सिध्यति वा न वा ।
कलौ प्रमारको रोगः सततं क्षुद्भयानि च ॥३३
अनावृष्टिभयं घोरं देशानां च विपर्ययः ।
न प्रमाणं स्मृतेरस्ति तिष्ये लोकेषु वै युगे ॥३४
गर्भस्थो म्रियते कश्चिद्यौवनस्थस्तथापरः ।
स्थविराः केऽपि कौमारे म्रियन्ते वै कलौ प्रजाः ॥३५

द्वापरयुग के निःशेष होने पर उसकी सन्ध्या का काल भी वैसा ही था। द्वापर का यह धर्म गुणों से हीन प्रतिष्ठित होता है ।२९। उसी भाँति की पाद से सन्ध्या होती है। यहाँ-ही सन्ध्या अभीष्ट हुआ करती है। द्वापर

[illegible] अवशेष से [illegible] तिष्य के विषय में [illegible] लो ।३०। जब द्वापर युग [illegible] अंश शेष रहता है तभी कलियुग की भी प्रतिपत्ति हो जाया करती है। जो तपश्चर्या का समाचरण करने वाले हैं उनमें भी युग के प्रभाव से हिंसा—असूया—अनृत—माया और [illegible] की भावनायें उत्पन्न हो जाती [illegible] ।३१। ये तिष्य (कलि) के स्वभाव हैं जिनका साधन प्रजा के जन किया करते हैं। यह ही किया गया पूर्ण धर्म है और वास्तविक जो भी धर्म है वह परिहीन हो जाया करता है ।३२। मन से-कर्म से और स्तुति से वार्त्ता सिद्ध होती है अथवा नहीं होती है। कलियुग में रोग प्रकृष्ट [illegible] से मारक होता है और क्षुधा तथा भय होते हैं ।३३। कलि [illegible] वृष्टि के समय पर न होने को घोर भय होता है तथा देशों का विपर्यय हो जाता है। कलियुग में लोगों में स्थिति का कोई भी [illegible] नहीं [illegible] जाता है। कोई तो माता के गर्भ में ही मृत्यु को प्राप्त हो जाता है, कोई युवावस्था में ही मर जाया करता है, कोई-कोई वृद्ध होकर मर जाते हैं। इस कलियुग में प्रायः कुमारावस्था में ही परलोक में चले जाया करते हैं ।३४-३५।

दुरिष्टैर्दुरधीतैश्च दुराचारैर्दुरागमैः ।
विप्राणां कर्मदोषैस्तैः प्रजानां जायते भयम् ॥३६
हिंसा माया तथेर्ष्या च क्रोधोऽसूयाक्षमा नृषु ।
तिष्ये भवन्ति जंतूनां रोषो लोभश्च सर्वशः ॥३७
संक्षोभो जायतेऽत्यर्थं कलिमासाद्य वै युगम् ।
पूर्णे वर्षसहस्रे वै परमायुस्तदा नृणाम् ॥३८
नाधीयते तदा वेदान्न यजंते द्विजातयः ।
उत्सीदंति नराश्चैव क्षत्रियाश्च विशः क्रमात् ॥३९
शूद्राणामंत्ययोनेस्तु संबंधा ब्राह्मणैः सह ।
भवंतीह कलौ तस्मिञ्छयनासनभोजनैः ॥४०
राजानः शूद्रभूयिष्ठाः पाखंडानां प्रवर्तकाः ।
गुणहीनाः प्रजाश्चैव तदा वै संप्रवर्त्तते ॥४१
आयुर्मेधा बलं रूपं कुलं चैव प्रणश्यति ।
शूद्राश्च ब्राह्मणाचाराः शूद्राचाराश्च ब्राह्मणाः ॥४२

बुरे मनोरथ-असद् विषयों का अध्ययन—बुरे पाप कर्म-बुरे शासन और प्रजाओं के कुत्सित कर्मों के दोषों से ही भय उत्पन्न हो जाया करता है ।३६। हिंसा-माया-ईर्ष्या-क्रोध-निन्दा और अक्षमा—राग और [illegible] प्रकार लोभ कलियुग [illegible] जन्तुओं में और मनुष्यों [illegible] होते [illegible] ।३७। अत्यधिक संक्षोभ कलियुग [illegible] प्राप्त होने पर समुत्पन्न हो जाता है । उस समय [illegible] मानवों की परमायु पूरे सहस्र वर्ष की होती [illegible] ।३८। उस समय में द्विजातिगण वेदों [illegible] अध्ययन नहीं किया करते [illegible] और न वे यजन ही किया करते हैं । सभी नर-क्षत्रिय और वैश्य [illegible] [illegible] उत्पन्न हो जाया करते हैं ।३९। शूद्रों के ब्राह्मणों साथ अन्त्यजों से सम्बन्ध होते हैं और उस कलियुग में शय-आसन और भोजन [illegible] [illegible] परस्पर [illegible] सम्बन्ध किया करते हैं ।४०। राजाओं में बहुधा शूद्र वर्ण वालों की अधिकता होती है [illegible] कि पाखण्डों के प्रवर्तक ही हुआ करते हैं । उस समय में प्रजाजनों में भी गुणों की हीनता संप्रवृत्त होती है ।४१। न तो मानवों में मेधा होती [illegible] और न उनकी [illegible] आयु ही होती [illegible] । बल-रूप और कुल सभी विनष्ट हो [illegible] करते [illegible] । जो [illegible] वर्ण वाले मानव हैं उनके आचार तो ब्राह्मणों के समान होते [illegible] और ब्राह्मण शूद्रों [illegible] तुल्य आचरण किया करते हैं ।४२।

राजवृत्ताः स्थिताश्चोराश्चोराचाराश्च पार्थिवाः ।
भृत्या एते ह्यसुभृतो युगान्ते समवस्थिताः ॥४३

अशीलिन्योऽनृताश्चैव स्त्रियो मद्याभिषप्रियाः ।
मायाविन्यो भविष्यंति युगान्ते मुनिसत्तम ॥४४

एकपत्न्यो न भिष्यंति युगान्ते मुनिसत्तम ।
श्वापदप्रबलत्वं च गवां चैव ह्युपक्षयः ॥४५

साधूनां विनिवृत्तिं च विद्यात्तस्मिन्युगक्षये ।
तदा धर्मो महोदर्को दुर्लभो दानमूलवान् ॥४६

चातुराश्रमशैथिल्यो धर्मः प्रविचरिष्यति ।
तदा ह्यल्पफला भूमिः क्वचिच्चापि महाफला ॥४७

न रक्षितारो भोक्तारो बलिभागस्य पार्थिवाः ।
युगान्ते च भविष्यंति स्वरक्षणपरायणाः ॥४८

अरक्षितारो राजानो विप्राः शूद्रोपजीविनः ।
शूद्राभिवादिनः सर्वे युगान्ते द्विजसत्तमाः ॥४९

चोरी कर्म करने वाले पुरुष राजाओं के समान आचरण वाले हैं और जो पार्थिव हैं वे चोरों के समान आचरण करने वाले हैं। इस युग के अन्त समय के उपस्थित होने पर भृत्यगण प्राणों का धरण करने वाले [illegible] ।४३। नारियाँ शील से शून्य-मिथ्याचार वाली तथा मदिरा और मांस से प्रेम करने वाली होती हैं। हे मुनि [illegible] ! इस युग के अन्त [illegible] सभी स्त्रियाँ माया रखने वाली होती हैं।४४। पुरुष [illegible] एक ही पत्नी रखने के व्रत वाले नहीं होते हैं। हे मुनिसत्तम ! युग के अन्त समय में सर्वत्र ऐसा ही दिखलाई देता है। सब जगह अन्य पशुओं की प्रबलता होती है और गौओं के कुल का क्षय होता है।४५। उस युग के क्षय में साधुजनों की विशेष [illegible] [illegible] निवृत्ति होती है। ऐसा ही जान लेना चाहिए। [illegible] [illegible] [illegible] अपने आपका बहुत ऊँचा उठाना ही धर्म [illegible] और दान के मूल वाला धर्म [illegible] दुर्लभ होता है।४६। ब्रह्मचर्य गार्हस्थ्य-वानप्रस्थ और संन्यास—इन चारों आश्रमों की शिथिलता वाला धर्म ही [illegible] जगह चलेगा। उस समय में भूमि भी अल्प फल देने वाली होती है और कहीं पर महान् फल वाली होगी।४७। राजा लोग केवल अपनी वृत्ति [illegible] भोग करने वाले होंगे और प्रजा की रक्षा करने वाले नहीं होंगे। और युग के अन्त में ये नृपगण अपनी ही रक्षा करने में तत्पर रहा करेंगे। राजा लोग संरक्षण नहीं करने वाले और विप्रगण शूद्रों से उपजीविका चलाने वाले हो जायेंगे। और युग के अन्त में श्रेष्ठ द्विजगण भी शूद्रों के अभिवादन करने वाले हो जायेंगे।४८-४९।

अट्टशूला जनपदाः शिवशूला द्विजास्तथा ।
प्रमदाः केशशूलाश्च युगान्ते समुपस्थिते ॥५०
तपोयज्ञफलानां च विक्रेतारो द्विजोत्तमाः ।
ऋतवश्च भविष्यन्ति बहवोऽस्मिन्कलौ युगे ॥५१
चित्रवर्षी यदा देवस्तदा प्राहुर्युगक्षयम् ।
सर्वे वाणिजकाश्चापि भविष्यन्त्यधमे युगे ॥५२
भूयिष्ठं कूटमानैश्च पण्यं विक्रीणते जनाः ।
कुशीलचर्यापाखण्डैर्वृथारूपैः समावृतम् ॥५३

पुरुषाल्पं बहुस्त्रीकं युगान्ते समुपस्थिते ।
बहुयाचनको लोको भविष्यति परस्परम् ॥५४

अव्याकर्त्ता क्रूरवाक्यो नार्जवो नानसूयकः ।
न कृते प्रतिकर्त्ता च युगे क्षीणे भविष्यति ॥५५

अशंका चैव पतिते युगान्ते [illegible] लक्षणम् ।
ततः शून्या वसुमती भविष्यति वसुन्धरा ॥५६

सभी [illegible] अट्टालिकाओं [illegible] शूल वाले [illegible] और द्विज के शूल वाले सब द्विजातिगण हैं । इस युगान्त के समुपस्थित होने पर सभी प्रमदायें केशों के शूल वाली हैं ।५०। ये [illegible] द्विज भी अपनी तपस्या और यज्ञों के फल को द्रव्य लेकर बेच देने वाले हो जायेंगे । इस कलियुग [illegible] काषाय वस्त्रों के धारण करने वाले बहुत से यतिगण हो जायेंगे ।५१। जिस समय [illegible] विविध रूप से अनिदेव वर्षा करने वाले हो जायेंगे उस समय [illegible] [illegible] युग की क्षय कहते हैं । [illegible] आधार युग में सभी वर्णों के मानव वाणिज्य व्यवसाय करने वाले हो जायेंगे ।५२। मनुष्य कूटमानों [illegible] द्वारा अधिक पण्य वस्तुओं का विक्रय किया करते [illegible] वह पण्य कुशील चर्या-पाखण्ड-ईर्ष्या और अन्यों से समाकुल होगा ।५३। पुरुष के रूप से युक्त मनुष्य [illegible] स्त्रियों वाला इस युग के अन्त के उपस्थित होने पर होंगे । लोग परस्पर में बहुत याचना करने वाले होंगे ।५४। [illegible] युग के क्षीण होने पर मनुष्य प्रायः अव्याकर्त्ता-क्रूर वाक्य बोलने वाला—कुटिल-निन्दक और किए हुए उपकार का प्रत्युपकार [illegible] करने वाला होगा ।५५। इस युग के [illegible] में यही [illegible] [illegible] है कि पतित [illegible] कोई भी शंका नहीं होती है अर्थात् निश्शङ्क होकर पतित व्यक्ति से [illegible] स्थापित रक्खा करते हैं । इसके पश्चात् [illegible] वसुमती वसुन्धरा शून्य हो जायगी ।५६।

गोप्तारश्चाप्यगोप्तारः प्रभविष्यंति शासकाः ।
हर्त्तारः पररत्नानां परदारविमर्षकाः ॥५७

कामात्मानो दुरात्मानो ह्यधमाः साहसप्रियाः ।
प्रनष्टचेतना धूर्त्ता मुक्तकेशास्त्वचूलिनः ॥५८

ऊनषोडशवर्षाश्च प्रजायन्ते युगक्षये ।
शुक्लदंता जिताक्षाश्च मुण्डाः काषायवाससः ॥५९

शूद्रा धर्मं चरिष्यंति युगान्ते समुपस्थिते ।
सस्यचोरा भविष्यंति तथा चैलापहारिणः ॥६०
चोराच्चोराश्च हर्त्तारो हर्तुर्हर्ता तथापरः ।
ज्ञानकर्मण्युपरते लोके निष्क्रियतां गते ॥६१
कीटमूषकसर्पाश्च धर्षयिष्यंति मानवान् ।
अभीक्ष्णं क्षेममारोग्यं सामर्थ्यं दुर्लभं तथा ॥६२
कौशिकान्प्रतिपत्स्यंति देशाः क्षुद्भयपीडिताः ।
दुःखेनाभिप्लुतानां च परमायुः शतं तदा ॥६३

भी रक्षक [illegible] वे भी रक्षा नहीं करने वाले शासक हो जायेंगे । ये दूसरों के रत्नों [illegible] हरण करने वाले तथा दूसरों की स्त्रियों से विमर्श करने वाले हो जायेंगे ।५७। सभी लोग काम वासना से परिपूर्ण—दुष्ट भावों वाले—बहुत अधम और दुस्साहस से प्रेम करने वाले—नष्ट चेष्टा वाले—धूर्त—अधूली [illegible] को खुले हुए रखने वाले होंगे ।५८। इस युग के अन्त [illegible] सोलह वर्ष से भी छोटी-उम्र वाले सन्तान का प्रजनन किया करते हैं । शुक्ल दन्तों वाले—जिताक्ष—मुण्डित सिर वाले और काषाय रङ्ग के वस्त्रों के धारण करने वाले होंगे ।५९। युगान्त [illegible] उपस्थित होने पर शूद्र लोग धर्म का आचरण करेंगे । लोग धान्य तथा फसल की चोरी करने वाले और वस्त्रों का अपहरण करने वाले होंगे ।६०। चोर से हरण करने वाले चोर तथा हरणकर्त्ता से दूसरे हरण करने वाले हो जायेंगे । ज्ञान पूर्वक कर्मों के उपरत हो जाने पर समस्त लोक निष्क्रियता को प्राप्त हो जायगा ।६१। कीड़े-मूषक और सर्प मानवों को प्रधर्षित करेंगे । उसी प्रकार [illegible] बराबर क्षेम-कुशल-आरोग्य और सामर्थ्य सभी बहुत दुर्लभ हो जायेंगे । भूख के भय से पीड़ित मनुष्यों [illegible] देश कौशिकों को प्रति वास किया करेंगे । इस प्रकार से दुःखों से [illegible] मनुष्य पूर्ण रूप से अभिप्लुत होंगे तो उनकी उस समय से परमायु सौ वर्ष की ही रह जायगी ।६२-६३।

दृश्यंते [illegible] न दृश्यंते वेदा कलियुगेऽखिलाः ।
उत्सीदन्ते तथा यज्ञाः केवलाधर्मपीडिताः ॥६४
वेदविक्रयिणश्चान्ये तीर्थविक्रयिणोऽपरे ॥६५

वर्णाश्रमाणां ये चान्ये पाषण्डाः परिपंथिनः ।
उत्पद्यंते तदा ते वै संप्राप्ते तु कलौ युगे ॥६६
अधीयंते तदा वेदाञ्छूद्रा धर्मार्थकोविदाः ।
यजंते चाश्वमेधेन राजानः शूद्रयोनयः ॥६७
स्त्रीबालगोवधं कृत्वा हत्वान्ये च परस्परम् ।
अपहृत्य तथाऽन्योन्यं साधयंति [illegible] प्रजाः ॥६८
दुःखप्रचलनाल्पायुर्देहोत्सादश्च रोगतः ।
अधर्माभिनिवेशित्वात्तमोवृत्तं कलौ स्मृतम् ॥६९
प्रजासु भ्रूणहत्या च तदा वैरात्प्रवर्तते ।
तस्मादायुर्बलं रूपं कलिं प्राप्य प्रहीयते ॥७०

इस कलियुग में समस्त वेद दिखलाई दिया करते [illegible] [illegible] नहीं दिखाई देते हैं। उसी प्रकार से इसलिए यज्ञ अधर्म से पीड़ित होकर दुःखित होते [illegible] ।६४। इस घोर कलियुग के सम्प्राप्त होने पर इस जगती तल में [illegible] वर्ण को वल्प धारण करने वाले संन्यासी [illegible] वेषधारी—निग्रन्थ तथा कापालिक लोग बहुत दिखाई दिया करते हैं। [illegible] [illegible] वेदों का विक्रय करने वाले [illegible] अर्थात् [illegible] लेकर वेद [illegible] मन्त्रों को पढ़ने वाले हैं और दूसरे तीर्थों को बेचने वाले हैं और अन्य लोग ऐसे [illegible] जो वर्णों और आश्रमों का ढोंग पाखण्ड दिखाया करते [illegible] और वास्तव [illegible] इन वर्णाश्रमों के विरोधी शत्रु होते हैं। ऐसे ही लोग बहुधा उत्पन्न हो [illegible] करते हैं।६५-६६। धर्म के अर्थ के पण्डित बनने वाले शूद्र लोग उस समय में वेदों का अध्ययन किया करते हैं जिनको वेदों के पढ़ने का शास्त्रानुसार कभी भी अधिकार नहीं होता है। शूद्र योनि वाले अश्वमेध [illegible] का यजन किया करते हैं।६७। वह ऐसा महान् घोर समय होगा कि उसमें स्त्रियों का—गौओं [illegible] और छोटे-छोटे निरीह बालकों का वध करके और आपस में ही एक दूसरे का [illegible] दूसरे लोग किया करते [illegible] [illegible] पारस्परिक वध करके ही प्रजा का [illegible] किया करते हैं।६८। दुःखों के तथा मिथ्या प्रवचनों के होने से [illegible] आयु हो जाती है और रोगों के कारण भी उम्र छोटी हो जाया करती है। सबके हृदयों [illegible] अधर्म का ही विशेष अभिनिवेश होने से इस कलियुग [illegible] सर्वत्र तमोगुण [illegible] ही बोलबाला रहेगा ऐसा बताया गया [illegible] ।६९। उस [illegible]

में प्रजाओं [illegible] भ्रूणों की अर्थात् गर्भस्थ शिशुओं की हत्याएं वैर के कारण हुआ करेगी। इसी [illegible] से कलियुग [illegible] करके लोगों की आयु-बल विक्रम [illegible] रूप [illegible] सौन्दर्य सभी [illegible] हो जाया करते [illegible] ।७०।

तदा चाल्पेन कालेन सिद्धि यच्छंति मानवाः ।
धन्या धर्मं चरिष्यंति युगान्तो द्विजसत्तमाः ॥७१
श्रुतिस्मृत्युदितं धर्मं ये चरंत्यनसूयकाः ।
त्रेतायामाब्दिको धर्मो द्वापरे मासिकः स्मृतः ॥७२
यथाशक्ति चरन्प्राज्ञस्तदह्ना प्राप्नुयात्कलौ ।
एषा कलियुगावस्था संध्यांशं तु निबोधत ॥७३
युगे युगे तु हीयंते त्रिस्त्रिपादास्तु सिद्धयः ।
युगस्वभावास्संध्यासु तिष्ठन्तीह तु यादृशः ॥७४
संध्यास्वभावाः स्वांशेषु पादशेषाः प्रतिष्ठिताः ।
एवं संध्यांशके काले संप्राप्ते तु युगान्तिके ॥७५
तेषां शास्ता ह्यसाधूना भृगूणां निधनोत्थितः ।
गोत्रेण वै चन्द्रमसो नाम्ना प्रमतिरुच्यते ॥७६
माधवस्य तु सोंऽशेन पूर्वं स्वायंभुवेऽन्तरे ।
समाः स त्रिंशतिः पूर्णाः पर्यटन्वै वसुंधराम् ॥७७

उस कलियुग में मनुष्य थोड़े समय में सिद्धि को प्राप्त कर लिया करते हैं—इस युग की विशेषता है। इस युग के अन्त में वे मानव और श्रेष्ठ द्विज परम धन्य हैं जो धैर्य [illegible] किया करते [illegible] ।७१। जो अनिन्दित मानव श्रुति और स्मृतियों में कहे हुए धर्म का समाचरण किया करते [illegible]। ऐसा धर्म त्रेतायुग [illegible] एक वर्ष में सम्पन्न एवं पूर्ण होता है वही धर्म द्वापर में एक मास में साङ्ग सफल होता है और वही धर्म इस कलियुग [illegible] अपनी शक्ति के अनुसार समाचरित होने पर एक ही दिन में प्राप्त प्राप्त कर लिया करता है। यह कलियुग के [illegible] की व्यवस्था है अब इस कलि के सन्ध्या का अंश [illegible] लो ।७२-७३। युग-युग में सिद्धियाँ तीन-तीन पाद क्षीण हुआ करती हैं जैसा भी युग-स्वभाव [illegible] सन्ध्याओं में यहाँ पर स्थित रहा करती हैं जैसा भी युग का स्वभाव हो ।७४। उनके अपने अंशों में संध्या के

पाद शेष प्रतिष्ठित होते हैं। इसी प्रकार युगान्तिक काल के होने पर सन्ध्या अंश में होता है ।७५। असाधु भृगुओं का शासन करने निम्नोक्ति । चन्द्रमा के गोत्र से है और नाम से प्रमति कहा करता है ।७६। यह पूर्व स्वायम्भुव अन्तर के अंश से पूर्ण बीस पर्यन्त इस वसुन्धरा पर्यटन करता ।७७।

अनुकर्षन्स वै सेनां सवाजिरथकुञ्जराम् ।
प्रगृहीतायुधैर्विप्रैः शतशोऽथ सहस्रशः ॥७८
स तदा तैः परिवृतो म्लेच्छान्हंति स्म सर्वशः ।
सह वा सर्वशश्चैव राज्ञस्ताञ्छूद्रयोनिजान् ॥७९
पाखण्डांस्तु ततः सर्वान् निःशेषं कृतवान्विभुः ।
नात्यर्थं धार्मिका ये च तान्सर्वान्हंति सर्वशः ॥८०
वर्णव्यत्यासजाताश्च ये च ताननुजीविनः ।
उदीच्यान्मध्यदेश्यांश्च पर्वतीयांस्तथैव च ॥८१
प्राच्यान्प्रतीच्यांश्च तथा विन्ध्यपृष्ठचरानपि ।
तथैव दाक्षिणात्यांश्च द्रविडान्सिंहलैः सह ॥८२
गान्धारान्पारदांश्चैव पह्लवान्यवनाञ्छकान् ।
तुषारान्बर्बरांश्चीनाञ्छूलिकान्दरदान् खशान् ॥८३
लंपाकान्सकलकान्किरातानां च जातयः ।
प्रवृत्तचक्रो बलवान्म्लेच्छानामन्तकृत्प्रभुः ॥८४

वह घोड़े-रथ और हाथियों के सहित सेना का अनुकर्षण करके सैकड़ों सहस्रों की संख्या में हथियार ग्रहण करने वाले विप्रों से समन्वित था ।७८। उस समय इन सबसे परिवृत होते हुए उसने सभी ओर से म्लेच्छों का हनन किया । उनके ही अथवा सभी ओर से उन शूद्र योनि समुत्पन्न राजाओं भी हनन कर दिया था ।७९। पाखण्ड से जो परिपूर्ण फिर उन सबका उस विभु ने कर दिया था । जो अत्यधिक धर्म के मानने वाले नहीं थे उन सबको सभी ओर में पूर्णतया हनन करता है ।८०। जो लोग वर्णों के व्यत्यास समुत्पन्न हुए थे अर्थात् वर्णसङ्कर थे और जो उनके अनुजीवी थे । चाहे उत्तर दिशा में रहने वाले होवें या

अन्य देश के होवें तथा पर्वतों में निवास करने वाले होवें।८१। दिशा में रहने वाले हों पश्चिम रहते हों अथवा विन्ध्याचल के पृष्ठ पर सञ्चरण करने वाले भी होवें। उसी भाँति जो दाक्षिणात्य थे, द्रविड़ थे और सिंहल ।८२। गान्धार-पारद-पह्लव-यवन-शक-तुषार-बर्बर-चीन-शूलिक-दरद-खस। लम्पाकार-सकतक और जो भी किरातों की जातियाँ थीं। इन सभी म्लेच्छों वह प्रतापी प्रभु चक्र ग्रहण करके अन्त कर देने वाला था।८३-८४।

अदृष्टः सर्वभूतानां चचाराथ वसुन्धराम्।
माधवस्य सोंऽशेन देवस्येह विजज्ञिवान् ॥८५
पूर्वजन्मनि विख्यातः प्रमतिर्नाम वीर्यवान्।
गोत्रतो वै चन्द्रमसः पूर्वे कलियुगे प्रभुः ॥८६
द्वात्रिंशेऽभ्युदिते वर्षे प्रक्रान्तो विंशतीः समाः।
विनिघ्नन्सर्वभूतानि मानवानेव सर्वशः ॥८७
कृत्वा बीजावशेषां तु पृथ्वीं क्रूरेण कर्मणा।
परस्परं निमित्तेन कोपेनाकस्मिकेन तु ॥८८
सुसाधयित्वा वृषलान्प्रायशस्तानधार्मिकान्।
गंगायमुनयोर्मध्ये निष्ठां प्राप्तः सहानुगः ॥८९
ततो व्यतीते कल्पे तु सामात्ये सहसैनिकः।
उत्साद्य पार्थिवान्सर्वान्म्लेच्छांश्चैव सहस्रशः ॥९०
तत्र संध्यांशके काले संप्राप्ते तु युगान्तिके।
स्थितास्वल्पावशिष्टासु प्रजास्विह क्वचित्क्वचित् ॥९१

समस्त प्राणियों के दर्शन में न आने वाला सम्पूर्ण वसुन्धरा पर विचरण किया करता था। वह यहाँ पर देव के अंश जाना गया था।८५। वह पूर्व जन्म में महान् वीर्य वाला प्रमति के प्रसिद्ध था। वह प्रभु पूर्व कलियुग में गोत्र से ।८६। बत्तीसवें वर्ष के अभ्युदित हो जाने पर वह बीस वर्ष तक प्रक्रान्त हुआ। सभी प्राणियों का और सभी ओर से मानवों का विहनन करते हुए उसने परिक्रमण किया ।८७। अकस्मात् परस्पर में समुत्पन्न कोप से उसने क्रूर कर्म से पृथ्वी बीजावशेष कर दिया था। उसमें जो वृषल उनको और प्रायः अधार्मिक

माधवों का सुसाधित किया था उसने अपने अनुचरों के साथ गंगा और यमुना के मध्य में बड़ी निष्ठा प्राप्त करली थी ।८८-८९। इसके अनन्तर कल्प के व्यतीत हो जाने पर अपने सैनिकों के साथ रहकर सभी सहस्रों म्लेच्छों को और राजाओं का उत्पादन कर दिया था ।९०। यहाँ पर युग के अन्त कर लेने वाले सन्ध्या के अंश के सम्प्राप्त होने पर वहाँ पर कहीं-कहीं पर बहुत ही थोड़ी प्रजा अवशिष्ट रह गयी थी ।९१।

अपप्रहास्ततस्ता वै लोभाविष्टास्तु वृंदश: ।
उपहिंसंति चान्योन्यं पीडयंत: परस्परम् ॥९२
अराजके युगवशात्संक्षये समुपस्थिते ।
प्रजास्ता वै तत: सर्वा: परस्परभयार्दिता: ॥९३
व्याकुलाश्च परिभ्रांतास्त्यक्त्वा दारान्गृहाणि च ।
स्वान्प्राणाननपेक्षंतो निष्कारणसुदु:खिता: ॥९४
नष्टे श्रौते स्मृतौ धर्मे परस्परहतास्तदा ।
निर्मर्यादा निराकन्दा नि:स्नेहा निरपत्रपा: ॥९५
नष्टे धर्मे प्रतिहता ह्रस्वका: पंचविंशतिम् ।
हित्वा पुत्रांश्च दारांश्च विषादव्याकुलेंद्रिया: ॥९६
अनावृष्टिहताश्चैव वार्तामुत्सृज्य दु:खिता: ।
प्रत्यंतास्ता निषेवंते हित्वा जनपदान्स्वकान् ॥९७
सरित: सागरानूपान्सेवंते पर्वतांस्तथा ।
मांसैर्मूलफलैश्चैव वर्तयंत: सुदु:खिता: ॥९८

वे सब ग्रहण करने वाले वृन्द के वृन्द लोभ से आविष्ट हुए परस्पर में एक दूसरे का पीडन करते हुए उपहनन किया करते थे ।९२। कोई भी समुचित शासन करने वाला नहीं था और सर्वत्र अराजकता फैली हुई थी तथा युग के प्रभाव के कारण सर्वत्र संक्षय प्राप्त हो गया था । फिर तो सभी प्रजा आपस में भय से उत्पीड़ित हो गये थे ।९३। वे सब बहुत व्याकुल हो गये थे और अपनी पत्नियों तथा गृहों को भी छोड़कर इधर-उधर परिभ्रमण कर रहे थे। बिना ही किसी कारण के बहुत अधिक दु:खित होकर अपने प्राणोंकी अपेक्षा नहीं करने वाले हो गये थे ।९४। और

और स्मार्त धर्म के विनष्ट हो जाने पर वे उस समय में हत हो रहे थे। उन्होंने अपनी मर्यादा का त्याग कर दिया था और वे निरानन्द हो गये थे उनमें किसी के प्रति भी स्नेह नहीं था तथा वे लज्जाहीन हो गये थे।९५। धर्म के विनष्ट हो जाने पर वे छोटे पच्चीस वर्ष में ही प्रतिहत हो जाते हैं। वे अपने पुत्रों को—पत्नियों को छोड़कर विषाद से व्याकुलित इन्द्रियों वाले हो जाते हैं।९६। वर्षा न होने के कारण बहुत हत हो [illegible] करते हैं और वार्ता को [illegible] कर परम दुःखित होते हैं। वे [illegible] प्रजाजन अपने जनपदों को त्याग कर प्रत्यन्तों का सेवन किया करते हैं।९७। कुछ लोग नदियों का—सागरों का—अनूपों का और पर्वतों का सेवन किया करते हैं और परम दुःखित होते हुए अपनी उदरपूर्ति मांस और मूलों के [illegible] किया करते हैं।९८।

चीरपत्राजिनधरा निष्क्रिया निष्परिग्रहाः।
वर्णाश्रमपरिभ्रष्टाः संकरं घोरमास्थिताः।
एतां काष्ठामनुप्राप्ता अल्पशेषाः प्रजास्ततः ॥९९
जराव्याधिक्षुधाविष्टा दुःखान्निर्वेदमागमन्।
विचारणा तु निर्वेदात्साम्यावस्था विचारणात् ॥१००
साम्यावस्थात्मको बोधः संबोधाद्धर्मशीलता।
तासूपशमयुक्तासु कलिशिष्टासु वै स्वयम् ॥१०१
अहोरात्रं तथा तासां युगान्ते परिवर्तिनि।
चित्तसंमोहनं कृत्वा तासां वै सुप्तमत्तवत् ॥१०२
भाविनोऽर्थस्य च बलात्ततः कृतमवर्तत।
प्रवृत्ते तु ततस्तस्मिन्पूर्वे कृतयुगे तु वै ॥१०३
उत्पन्नाः कलिशिष्टासु प्रजाः कार्तयुगास्तदा।
तिष्ठंति चेह ये सिद्धा अदृष्टा विचरंति [illegible] ॥१०४
सह सप्तर्षिभिश्चैव तत्र ते च व्यवस्थिताः।
ब्रह्मक्षत्रविशः शूद्रा बीजार्थं ये स्मृता इह ॥१०५

वस्त्रों के अभाव में सब लोग चीर, पत्र और चर्म को धारण करने वाले हैं। उनके पास कोई भी काम नहीं है अर्थात् एकदम कर्म शून्य हैं

और न उनके पास कुछ समान है। वर्णों और आश्रमों से परिभ्रष्ट हैं अर्थात् न उनका कोई वर्ण है और न कोई [illegible] ही रहा गया है। ये [illegible] परम घोर सङ्कट में समास्थित हैं। बहुत ही थोड़े से बचे [illegible] फिर इस दिशा में आकर [illegible] हुए [illegible]।९९। ये बुढ़ापे और व्याधियों [illegible] भूख से समाविष्ट हैं और परमाधिक दुःख [illegible] निर्वेद को प्राप्त हो गये हैं। निर्वेद से उनको विचारणा उत्पन्न हुई और विचारणा से वे [illegible] की अवस्था को प्राप्त हो गये [illegible]।१००। साम्यावस्था के [illegible] वाला उनको बोध हो गया [illegible] और उस भले [illegible] से धर्म का स्वभाव हो गया था। कलि [illegible] शिष्ट थे स्वयं उपशम से अवस्था में [illegible] हो गये थे।१०१। उस समय [illegible] उनके अहोरात्र (रात दिन) युगान्त के परिवर्तित होने पर उनके चित्त [illegible] संमोहन हो गया था और वे सब एक सोये हुए [illegible] [illegible] व्यक्ति के समान ही हो गये [illegible]।१०२। यह सब आगे होने वाले अर्थ के ही कारण से बलात् हुआ था। इसके अनन्तर कृतयुग हुआ था। फिर [illegible] परम पूत कृतयुग के प्रवृत्त हो जाने पर उस समय में जो कलियुग [illegible] अवशिष्ट प्रजाएँ थीं उनमें सतयुग [illegible] होने वाली प्रजा ने जन्म ग्रहण किया था। जहाँ पर जो भी सिद्ध स्थित रहते [illegible] [illegible] बिना किसी के द्वारा देखे गुप्त स्वरूप से विचरण किया करते हैं। वहाँ पर वे सप्तर्षियों के साथ व्यवस्थित हैं। वहाँ पर भी बीज के लिये ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य और शूद्र कहे गये हैं।१०३-१०४-१०५।

कलिजैः सह ते संति निर्विशेषास्तथाभवन् ।
तेषां सप्तर्षयो धर्मं कथयंतीतरेषु च ॥१०६
वर्णाश्रमाचारयुक्तः श्रौतः स्मार्तो द्विधा तु सः ।
ततस्तेषु क्रियावत्सु वर्तंते वै प्रजाः कृते ॥१०७
श्रौतस्मार्ते कृतानां च धर्मे सप्तर्षिदर्शिते ।
केचिद्धर्मव्यवस्थार्थं तिष्ठंतीहायुगक्षयात् ॥१०८
मन्वंतराधिकारेषु तिष्ठंति मुनयस्तु वै ।
यथा दावप्रदग्धेषु तृणेष्विह तपेन तु ॥१०९
वनानां प्रथमं वृष्ट्या तेषां मूलेषु संभवः ।
[illegible] कार्तयुगानां [illegible] कलिजेष्विह संभवः ॥११०
एवं युगो युगस्येह संतानस्तु परस्परम् ।

चतुर्युगे यथैकस्मिन्भवतीह यथा तु यत् ॥११७

तथा चान्येषु भवति पुनस्तद्वद्यथाक्रमम् ।

सर्गे सर्गे तथा भेदा उत्पद्यंते तथैव तु ॥११८

पंचविंशत्परिमिता न न्यूना नाधिकाः स्मृताः ।

[illegible] कल्पा युगैः सार्द्धं भवंति सह लक्षणैः ।

मन्वंतराणां सर्वेषामेतदेव तु लक्षणम् ॥११९

सन्ध्यांशों में युगों की सभी सिद्धियों का ह्रास हुआ करता है। इस प्रकार से यह जो प्रति सन्धि है। [illegible] द्विजो ! मैंने कीर्त्तित कर दी [illegible] ।११३। इसी से चारों युगों का सबका प्रसाधन है। यह चारों युगोंकी आवृत्ति सहस्र से लेकर गुणीकृत है।११४। यह ब्रह्मा का दिन कहा गया है। जितना बड़ा दिन होता [illegible] उतनी ब्रह्माजी की रात्रि हुआ करती है। यहाँ पर युग [illegible] से लेकर भूतों का जो सोधापन है वह बड़ी भान होता [illegible] ।११५। यही ही समस्त युगों [illegible] लक्षण कहा [illegible] है। यह चारों युगों की चौकड़ी जब इकहत्तर हो जाया करती ।११६। जब क्रम [illegible] यह चौकड़ियाँ इकहत्तर समाप्त होकर दूसरी बदलती हैं तभी दूसरे मनु का अन्तर हुआ करता [illegible]। चारों युगों की चौकड़ी में जिस प्रकार से यहाँ होती [illegible] उसी प्रकार से यह होता है ।११७। उसी भाँति अन्यों में होता है और फिर उसी [illegible] समान यथा [illegible] से हुआ करता [illegible]। उसी प्रकार से प्रत्येक सर्ग में भेद उत्पन्न हुआ करते हैं ।११८। ये पैंतीस परिमित ही हैं और न इनसे [illegible] [illegible] और न अधिक होते हैं ऐसा ही बताया गया है। उसी रीति [illegible] कल्प युगों के [illegible] लक्षणों [illegible] होते [illegible]। [illegible] मन्वन्तर का यह ही लक्षण होता है ।११९।

यथा युगानां परिवर्त्तनानि चिरप्रवृत्तानि युगस्वभावात् ।

तथा न संतिष्ठति जीवलोकः क्षयोदयाभ्यां परिवर्त्तमानः।१२०

इत्येतल्लक्षणं प्रोक्तं युगानां वै समासतः ॥१२१

अतीतानागतानां हि सर्वमन्वंतरेष्विह ।

मन्वंतरेण चैकेन सर्वाण्येवांतराणि वै ॥१२२

व्याख्यातानीह विज्ञानीध्वं कल्पं कल्पेन चैव हि ।

अनागतेषु तद्वच्च तर्कः कार्यो विजानता ॥१२३

मन्वंतरेषु सर्वेषु अतीतानागतेष्विह ।
तुल्याभिमानिनः सर्वे नामरूपैर्भवंत्युत ॥१२४
देवा ह्यष्टविधा ये वा इह मन्वंतरेश्वराः ।
ऋषयो मनवश्चैव सर्वे तुल्याः प्रयोजनैः ॥१२५
एवं वर्णाश्रमाणां ■ प्रविभागं पुरा युगे ।
युगस्वभावांश्च तथा विधत्ते वै सदा प्रभुः ॥१२६
वर्णाश्रमविभागाश्च युगानि युगसिद्धयः ।
अनुषंगात्समाख्याताः सृष्टिसर्गं निबोधत ।
विस्तरेणानुपूर्व्या च स्थितिं वक्ष्ये युगेष्विह ॥१२७

जिस तरह से युगों के परिवर्तन युगों के स्वभाव से चिरप्रवृत्त होते ■ उस प्रकार से क्षय और उदय ■ परि-वर्तमान जीव लोक भली भाँति स्थित नहीं रहता है ।१२०। बहुत ही संक्षेप के साथ यह इतना ही युगों का लक्षण बताया गया है ।१२१। यहाँ पर मन्वन्तरों में जो बीत चुके ■ तथा जो अनागत हैं उनका सब यही ■ और एक मन्वन्तर के द्वारा ■ समस्त वन्तर होते हैं ।१२२। कल्प से कल्प जो होता ■ ■ सब विख्यात ■ उनको जान लो । जो अभी तक नहीं आये हैं उनमें ■ पुरुष के द्वारा उसी प्रकार से तर्क कर लेना चाहिए ।१२३। समस्त मन्वन्तरों में व्यतीत हो गये ■ और जो अनागत हैं उनमें यहाँ पर नाम और रूपों से ■ तुल्य अभिमान वाले हैं ।१२४। जो आठ प्रकार के देवगण हैं अथवा यहाँ पर मन्वन्तरेश्वर हैं । ऋषिगण और मनुगण ■ प्रयोजनों से तुल्य हैं ।१२५। इस तरह से पहिले युग में वर्णों और आश्रमों के ■ विभाग को और युगों के स्वभावों को ■ प्रभु किया करते हैं ।१२६। वर्णाश्रमों के विभाग युग और युगों की सिद्धियाँ अनुषंग से यह कह दिये गये हैं । ■ सृष्टि के सर्ग को ■ लो । यहाँ पर युगों में विस्तार के साथ और आनुपूर्वी से अर्थात् आरम्भ से अन्त तक क्रम में से स्थिति का वर्णन करूँगा ।१२७।

— x —

॥ परशुराम का संवाद ॥

वसिष्ठ उवाच—इत्थं प्रवर्त्तमानस्य जमदग्नेर्महात्मनः ।
वर्षाणि कतिचिद्राजन्व्यतीयुरमितौजसः ॥१

पितामह्या बहुमुखैरिच्छंत्या मम दर्शनम् ॥९
पितुर्न्पितामहस्यापि प्रियमेव प्रदर्शनम् ।
मदीयं तेन तत्पार्श्वं गन्तुं मामनुजानत ॥१०
वसिष्ठ उवाच—इति तस्य वचः श्रुत्वा संप्रीतं समुदीरितम् ।
हर्षेण महता युक्तौ साश्रुनेत्रौ बभूवतुः ॥११
समालिंग्य महाभागं मूर्ध्न्युपाघ्राय सादरम् ।
अभिनंद्याशिषा तात इत्युभौ तावथमाहतुः ॥१२
पितामहगृहं तात प्रयाहि त्वं यथासुखम् ।
पितामहपितामह्योः प्रीतये दर्शनाय च ॥१३
तत्र गत्वा यथान्यायं तं शुश्रूषापरायणः ।
कंचित्कालं तयोर्वत्स प्रीतये वस तद्गृहे ॥१४

मैं अधिक समय से पितामह दर्शन करने के लिए उत्कण्ठित मन वाला हो रहा हूँ । इस कारण से आप दोनों की से में उनके समीप में गमन करूँगा ।८। तात ! बड़े प्रसन्न मन वाली पितामही के द्वारा मैं कितनी ही बार बुलाया गया और उनके हृदय में मुझसे मिलने की अधिक उत्कण्ठा है । बहुत लोगों के द्वारा उन्होंने यह कहलाया कि वे मुझे देखने की अधिक करती हैं ।९। मेरा मिलना पितृगण और पितामह को भी प्रिय है । से उनके समीप में जाने की मुझे आज्ञा प्रदान कीजिए ।१०। श्री वसिष्ठजी ने कहा—इस से उनके इस परम कहे हुए वचन का करके दोनों माता-पिता बहुत ही महर्षित हुए थे और उनके नेत्रों में अश्रुओं उठे थे ।११। उन दोनों ने उस महान् भाग वाले पुत्र आलिंगन किया था और बड़े आदर के साथ उसके मस्तक का किया था । आशीर्वाद से अभिनन्दन करके उन दोनों ने उससे कहा ।१२। हे तात ! पितामह के गृह को तुम सुख पूर्वक जाओ जिससे पितामह और पितामही के दर्शन करोगे और उनकी प्रीति भी होगी ।१३। वहाँ पहुँच कर न्यायपूर्वक उनकी शुश्रूषा में तत्पर रहना । हे ! उनकी प्रीति को प्राप्त करने के लिए उनके घर में निवास करो ।१४।

स्थित्वा नातिचिरं कालं तयोर्भूयोऽप्यनुज्ञया ।
समागच्छ महाभाग क्षेमेणास्मद्दिदृक्षया ॥१५
क्षणार्द्धमपि शक्ताः स्थो न विना पुत्रदर्शनम् ।
तस्मात्पितामहगृहे न चिरात्स्थातुमर्हसि ॥१६
तदाज्ञयाथ वा पुत्र प्रपितामहसन्निधिम् ।
गतोऽपि शीघ्रमागच्छ क्रमेण तदनुज्ञया ॥१७
वसिष्ठ उवाच—इत्युक्तस्तौ परिक्रम्य प्रणम्य च महामतिः ।
पितरावभ्यनुज्ञाप्य पितामहगृहं ततः ॥१८
स गत्वा भृगुवर्यस्य ऋचीकस्य महात्मनः ।
प्रविवेशाश्रमं रामो मुनिशिष्योपशोभितम् ॥१९
स्वाध्यायघोषैर्विपुलैः सर्वतः प्रतिनादितम् ।
प्रशान्तवैरसत्त्वाढ्यं सर्वसत्त्वमनोहरम् ॥२०
स प्रविश्याश्रमं रम्यमृचीकं स्थितमासने ।
ददर्श रामो राजेंद्र स पितामहमग्रतः ॥२१

बहुत समय तक वहाँ स्थित न रहकर फिर उन दोनों की अनुज्ञा से हे महाभाग ! हम लोगों के देखने की इच्छा से कुशलता के साथ यहीं पर आ जाना ।१५। अपने पुत्र के देखने के बिना हम लोग आधे क्षण भी नहीं रह सकते हैं । इसी कारण से आप पितामह के घर में अधिक लम्बे समय तक ठहरने के योग्य नहीं होते हो ।१६। पितामह के समीप में गये हुए भी हे पुत्र । उनकी ही आज्ञा प्राप्त कर उनकी अनुज्ञा से क्रम से शीघ्र ही यहीं पर आ जाओ ।१७। वसिष्ठजी ने कहा—इस प्रकार से जब उससे कहा गया तो वह महान् बुद्धिमान् था । उसने उनको प्रणाम करके परिक्रमा की थी और माता-पिता की आज्ञा पाकर वहाँ से वह पितामह के घर को गमन किया था ।१८। वहाँ पर जाकर उस राम ने महात्मा भृगुवर्य ऋचीक के आश्रम में प्रवेश किया था जो कि अनेक मुनिगण और शिष्यों से उपशोभित था ।१९। वह आश्रम सभी ओर वेदाध्ययन के बहुत बड़े उद्घोष से प्रतिध्वनित हो रहा था और वहाँ के सभी प्राणियों में सर्वथा वैर भाव नहीं था तथा सभी जीवोंके द्वारा वह अतीव मनोहर था ।२०। उस परशुराम ने परम

सुन्दर आश्रम में प्रवेश करके हे राजेन्द्र ! पर विराजमान ऋचीक दर्शन किया था और आगे स्थित पितामह को देखा था ।२१।

आज्वल्यमानं तपसा धिष्ण्यस्थमिव पावकम् ।
उपासितं सत्यवत्या यथा दक्षिणयाऽध्वरम् ।।२२
स्वसमीपमुपायातं राममालोक्य तौ नृप ।
सुचिरं तं विमर्शेतां समाज्ञापूर्वदर्शनौ ।।२३
कोऽयमेष तपोराशिः सर्वलक्षणपूजितः ।
बालोऽयं बलवान्भाति गांभीर्यात्प्रश्रयेण च ।।२४
एवं तयोश्चिन्तयतोः सहर्षं हृदि कौतुकात् ।
आससाद शनैः रामः समीपे विनयान्वितः ।।२५
स्वनामगोत्रं मतिमानुक्त्वा पित्रोर्मुदान्वितः ।
संस्पृश्य चरणौ मूर्ध्ना हस्ताभ्यां चाभ्यवादयत् ।।२६
ततस्तौ प्रीतमनसौ समुत्थाप्य च तत्क्षणम् ।
आशीर्भिरभिनन्द्येतां पृथक् पृथगुभावपि ।।२७
समाश्लिष्याङ्कमारोप्य हर्षाश्रुप्लुतलोचनौ ।
वीक्षंतौ तन्मुखाम्भोजं परं हर्षमवापतुः ।।२८

उनका स्वरूप धिष्ण्यमें स्थित पावकके ही समान तपसे आज्वल्यमान । दक्षिणा द्वारा अध्वर भाँति सत्यवती के द्वारा वे उपासित ।२२। हे नृप ! उन दोनों ने अपने समीप में समागत हुए राम को देखा था और समाज्ञा पूर्वक देखने वाले उन दोनों ने उसके विषय में बहुत समय मनमें विमर्श किया ।२३। यह तपश्चर्या के राशि के ही सदृश कौन है जो कि सभी लक्षणों से पूजित है । है तो यह बालक परन्तु गम्भीरता और विनय से युक्त बहुत बलवान् प्रतीत होता है ।२४। दोनों के हृदय में बड़ा कुतूहल हो रहा और वे हर्ष के साथ यही मन में चिन्तन रहे थे कि राम परम विनीत भाव से समन्वित होते हुए धीरे उनके समीप पहुँच गया था ।२५। उस बुद्धिमान् रामने अपने नाम और गोत्र का उच्चारण करके परमानन्दित होते हुए उन दोनों के चरणों का स्पर्श द्वारा किया और दोनों हाथों से उनका अभिवादन किया था ।२६। इसके अनन्तर परम प्रीतियुक्त मन वाले उनने श्रेष्ठतम को उठा लिया

वैसे बाला होगया [illegible]। उनकी शुश्रूषा में तत्पर होकर उसने वहाँ [illegible] मास तक निवास किया था।३३। हे राजन्! इसके पश्चात् महान् मन वाले भृगु वर्य ने उन दोनों की [illegible] प्राप्त करके पितामह के गुरु के निवास [illegible] आश्रम में गमन करने की इच्छा की थी।३४। परम प्रीति से संयुत उन दोनों के द्वारा उसका आशीर्वचनों से अभिनन्दन किया गया था और उन दोनों ने जिस प्रकार में औपाश्रम के प्रति प्रदर्शन [illegible] दिया था।३५।

तं नमस्कृत्य विधिवच्च्यवनं [illegible] महातपाः।
सहर्षं तदाज्ञातः प्रययावाश्रमं भृगोः ॥३६
स गत्वा मुनिमुख्यस्य भृगोराश्रममंडलम्।
ददर्श शांतचेतोभिर्मुनिभिः सर्वतो वृतम् ॥३७
सुस्निग्धशीतलच्छायैः सर्वर्तुकगुणान्वितैः।
तरुभिः संवृतं प्रीतः फलपुष्पोत्तरान्वितैः ॥३८
नानाखगकुमारावैर्मनः श्रोत्रसुखावहैः।
महाघोषैश्च विविधैः सर्वतः प्रतिनादितम् ॥३९
सर्वाज्याहुतिहोमोत्थधूमगंधेन सर्वतः।
निरस्तनिखिलामोदं वनांतरविसर्पिणा ॥४०
समित्कुशाहरैर्गच्छमेखलाजिनमंडितैः।
अभितः शोभितं राजन्मुनिकुमारकैः ॥४१
प्रसूनजलसंपूर्णपात्रहस्ताभिरंतरा।
शोभितं मुनिकन्याभिश्चरंतीभिरितस्ततः ॥४२

[illegible] महान तपस्वी ने विधिपूर्वक [illegible] की सेवा में प्रणाम किया था और बड़े हर्षपूर्वक उनसे [illegible] प्राप्त [illegible] वह राम भृगु के आश्रम की ओर रवाना हो गया [illegible]।३६। वह समस्त मुनिगणों में मुख्य [illegible] के [illegible] [illegible] में जाकर देखा था कि वह आश्रम परम शान्त चित्त वाले मुनियों से सभी ओर घिरा हुआ है।३७। अतीव घनी और शीतल छाया वाले और सभी ऋतुओं के गुणों से समन्वित तथा प्रीतिदायक फलों और पुष्पों से युक्त तरुवरों से वह [illegible] संवृत था।३८। विविध प्रकार के पक्षियों की ध्वनियाँ पर हो रही थीं जो मन और कानों को परम सुख प्रदान करने वाली थीं।

करने वाले मृगों के शब्दों से यहाँ पर [illegible] फैले हुए [illegible] वनांकीट [illegible] की [illegible] में नीवारों की राशि यहाँ पर सूख रही [illegible] ऐसा [illegible] सुरम्य [illegible] है ।४५। जिस आश्रम में समय पर अग्नि में आहुतियाँ दी जाती हैं और जहाँ पर अतिथियों के समुदाय [illegible] अर्चन एवं सत्कार किया जाया करता है । जिस आश्रम में वेदों के छन्दों का अभ्यास किया जाता है तथा जो कुछ भी शास्त्रों में कहा गया है उसका चिन्तन किया जाता है ।४६। पढ़े जाने वाले सम्पूर्ण स्मृति प्रतिपादित तथा वैदिक अर्थों का विचार किया जाता है । जिसमें देवों और पितृगणों [illegible] यजन प्रारम्भ कर दिया गया है तथा जो आश्रम सभी प्राणियों के लिए परम सुन्दर है ।४७। जिस परम सुरम्य आश्रम में बहुत से तपस्वी गण निवसमान हैं और जो कापुरुष नहीं [illegible] उन्हीं के द्वारा सेवित है यह तपश्चर्या की वृद्धि करने वाला—परम पुण्यमय और सभी जीवों के सुखों [illegible] स्थल [illegible] ।४८। जिनका एकमात्र तप ही [illegible] है उन तापसों के आनन्द का यह आश्रय देने वाला [illegible] और यह ऐसा दिखलाई देता है मानो यह दूसरा ब्रह्मलोक ही हो । पुष्पों [illegible] सुगन्ध से भ्रमण करते हुए भ्रमरों की गुञ्जार से यह आश्रम गुञ्जित [illegible] ।४९।

सर्वतो वीक्ष्यमाणेन विस्मितेन तपस्विना ।
एवंविधगुणोपेतं पश्यन्नाश्रममुत्तमम् ॥५०
प्रविवेश विनीतात्मा सुकृतीवामरालयम् ।
संप्रविश्याश्रमोपान्ते रामः स्वप्रपितामहम् ॥५१
ददर्श परितो राजन्मुनिभिश्च शतावृतम् ।
व्याख्यानवेदिकामध्ये निविष्टं कुशविष्टरे ।
सितश्मश्रु जटाकूर्चब्रह्मसूत्रोपशोभितम् ॥५२
वामेतरोरुमध्यास्त वामजंघेन जानुना ॥५३
योगपट्टेन संवीतस्वदेहम् [illegible]पुंगवम् ।
व्याख्यानमुद्राविलसत्सव्यपाणितलाम्बुजम् ॥५४
योगपट्टोपरिन्यस्तविभ्राजद्वामपाणिकम् ।
सम्यगारण्यकाम्नायानां सूक्ष्मतत्त्वार्थसंहितिम् ॥५५
विवृत्य मुनिमुख्येभ्यः श्रावयन्तं तपोनिधिम् ।
पितुः पितामहं दृष्ट्वा रामस्तस्य महात्मनः ॥५६

प्र... कुशल ...नं तमालोक्य भृगुस्तदा ।
कुशलं खलु ते वत्स पित्रोश्च किमनामयम् ॥६३

हे महाराज ! फिर वह ... उन महान आत्मा वाले के समीप में धीरे से ... हुआ ... । उसको ... हुआ देखकर वहाँ पर जो भी स्थित थे वे सभी राम के ... ... से चकित हो गये थे ।५७। हे नृप ! समस्त मुनिगण दूर ... ही ... ... हो गये थे ... ... अमेय आत्मा वाले भृगु उसके आगमन से तोषित हुए थे ।५८। हे पार्थिव ! उसको देखते हुए ही अन्य ... ... पीठ को उन्होंने ... कर दिया था । राम भी उनके समीप ... पहुँचकर विनय से विनम्र मुख ... ... हो गया था ।५९। जिस प्रकार ... उपेन्द्र ब्रह्माजी की वन्दना किया करते ... ठीक उसी तरह से न्याय पूर्वक राम ने उनकी वन्दना की थी । विनम्रता समन्वित राम ने ... पूर्वक ... अभिवादन किया था ।६०। राम ने ... मुनियों को ... के अनुसार क्रम ... सम्भावित किया था । और उन सब मुनियों ने भी आनन्द से समन्वित होकर आशीर्वादों के द्वारा उस रामको परिवर्धित किया था ।६१। वह परम मेधा से सुसम्पन्न राम भी उन सबकी अनुज्ञा से भूमि पर समीप में बैठ ... था । फिर जब बैठ गया तो सबने राम को आशीर्वचनों से अभिनन्दित किया था ।६२। उस समय में भृगु ने उस राम ... अवलोकन करके उससे कुशल प्रश्न पूछा था कि हे ... ! तुम्हारा कुशल तो है और तुम्हारे माता-पिता-पिता का स्वास्थ्य सुखमय है ।६३।

भ्रातृ़णां चैव भवतः पितुः पित्रोस्तथैव च ।
किमर्थमागतोऽत्र त्वमधुना मम सन्निधिम् ॥६४

केनापि ... त्वमादिष्टः स्वयमेवाथवागतः ।
ततो रामो यथान्यायं तस्मै सर्वमशेषतः ॥६५

... यत्पृष्टं तथा तेन महात्मनः ।
पितुर्मातुश्च वृत्तांतं भ्रातृ़णां ... महात्मनाम् ॥६६
पितुः पित्रोश्च कौशल्यं दर्शनं ... तयोर्नृप ।
एतदन्यच्च सकलं भृगोः समकथयं मुदा ॥६७
न्यवेदयद्यथान्याय्यमात्मनश्च समीहितम् ।
श्रुत्वैतदखिलं राजन्रामेण समुदीरितम् ॥६८

तं च दृष्ट्वा विशेषेण भृगुः प्रीतोऽभ्यनन्दत ।
एवं तस्य प्रियं कुर्वन्नुत्कृष्टैरात्मकर्मभिः ॥६९

तत्राश्रमेऽवसद्रामो दिनानि कतिचिन्नृप ।
ततः कदाचिदेकान्ते रामं मुनिवरोत्तमः ॥७०

तुम्हारे भाइयों [illegible] आपके पिता के माता-पिता का कुशल-मङ्गल तो [illegible] ? इस समय में तुम किस प्रयोजन [illegible] लिए यहाँ पर मेरे समीप [illegible] समागत हुए हो ? ।६४। क्या किसी ने तुम को यहाँ आने की आज्ञा दी है अथवा तुम स्वयं अपनी ही इच्छा से यहाँ पर आये ? इसके पश्चात् राम ने उनकी सेवा [illegible] न्यायपूर्वक सभी कुछ पूर्णतया निवेदित कर दिया था । उन महात्मा ने उस भक्त जो भी पूछा [illegible] [illegible] कह दिया था जो भी कुछ पिता-माता का और महान् आत्मा वाले भाइयों का वृत्तान्त [illegible] ।६५-६६। हे नृप ! उन दोनों पिता के माता-पिता [illegible] कुशलता से दर्शन का होना-यह और आप भृगु [illegible] नम्रता के साथ आनन्द से [illegible] [illegible] दिया था । और अपना जो भी कुछ अभीष्ट था उसका निवेदन कर दिया था । हे राजन् ! राम के द्वारा वर्णित यह सब श्रवण करके और विशेष [illegible] से उसको देखकर भृगु बहुत ही प्रसन्न हुए थे और [illegible] अभिनन्दन किया था । इस तरह से अतीव उत्कृष्ट अपने कर्मों के द्वारा उसका प्रिय करते हुए राम ने वहाँ निवास किया था । हे नृप ! राम उस आश्रम [illegible] [illegible] दिन [illegible] रहा था । इसके उपरान्त मुनिवर ने राम को किसी समय [illegible] एकान्त में बुलाया था । ।६७-७०।

वत्सागच्छेति तं राजन्नुपाह्वयदुपह्वरे ।
सोऽभिगम्य तमासीनमभिवाद्य कृताञ्जलिः ॥७१

तस्थौ तत्पुरतो रामः सुप्रीतेनान्तरात्मना ।
आशीर्भिरभिनंद्याथ भृगुस्तं प्रीतमानसः ॥७२
प्राह नातिगताशंकं राममालोक्य सादरम् ।
शृणु वत्स वचो मह्यं यत्त्वां वक्ष्यामि सांप्रतम् ॥७३
हितार्थं सर्वलोकानां तव चास्माकमेव च ।
[illegible] पुत्र ममादेशाद्धिमवंतं महागिरिम् ॥७४

अधुनैवाश्रमादस्मात्तपसे धृतमानसः ।
गच्छ [illegible] महाभाग कृत्वाऽऽश्रमपदं शुभम् ॥७५
आराधय महादेवं तपसा नियमेन [illegible] ।
प्रीतिमुत्पाद्य [illegible] त्वं भक्त्यानन्यगयाचिरात् ॥७६
श्रेयो महदवाप्नोषि नात्र कार्या विचारणा ।
तरसा तव भक्त्या च प्रीतो भवति शङ्करः ॥७७

मुनि ने कहा था—हे [illegible] ! उपस्थित में आओ । वह रामजी उन मुनि [illegible] समीप में जाकर अपने हाथ जोड़कर उनका उसने अभिवादन किया था ।७१। राम परम प्रसन्न आत्मा [illegible] उनके आगे स्थित हो गया [illegible] और प्रसन्न [illegible] वाले गुरु ने आशीर्वादों के द्वारा अभिनन्दन किया था ।७२। उसने न अकिञ्चन अंग वाले राम को आदर के साथ देखकर कहा था । हे वत्स ! आप मेरा वचन श्रवण करो जो इस समय में [illegible] आपको कहूँगा ।७३। यह वचन समस्त लोकों के तुम्हारे और हमारे हित के लिये है । हे पुत्र ! मेरे आदेश से [illegible] महान् पर्वत हिमवान् को चले जाओ ।७४। तपश्चर्या करने [illegible] लिये अपने मन [illegible] निश्चय करके इसी समय इस आश्रम [illegible] चले जाओ । [illegible] महाभाग, वहाँ जाकर उस आश्रम के स्थान को शुभ बना दो ।७५। वहाँ पर तपस्या और नियम से महादेवजी की समाराधना करो । चिरकाल [illegible] अनन्य भक्ति से आप उनकी प्रीति का समुत्पादन करो ।७६। इसके करने [illegible] [illegible] महान् श्रेय की प्राप्ति करेंगे—इस विषय [illegible] लेशमात्र भी सन्देह नहीं करना चाहिए । शीघ्र ही आपकी भक्ति से भगवान् शङ्कर परम प्रसन्न हो जावेंगे ।७७।

करिष्यति च ते सर्वं मनसा यद्यदिच्छसि ।
तुष्टे तस्मिञ्जगन्नाथे शङ्करे भक्तवत्सले ॥७८
अस्त्रग्राममशेषं त्वं वृणु पुत्र यथेप्सितम् ।
त्वया हितार्थं देवानां करणीयं सुदुष्करम् ॥७९
विपुलेऽप्यधिकं कर्म अस्त्रसाध्यमनेकशः ।
तस्मात्त्वं देवदेवेशं समाराधय शङ्करम् ॥८०
भक्त्या परमया युक्तस्ततोऽभीष्टमवाप्स्यसि ॥८१

वे भगवान् शङ्कर तुम्हारा सभी कुछ कार्य पूर्ण कर देंगे जो-जो भी आप अपने मन में चाहेंगे। उन भक्तों पर प्यार करने वाले जगत् के स्वामी भगवान् शङ्कर के सन्तुष्ट हो जाने पर तुम को यह करना चाहिए ।७८। हे पुत्र ! जो भी तुम्हारा अभीप्सित हो वह [illegible] अस्त्रों के समुदाय को आप उनसे वरदान में माँग लेना। तुमको [illegible] [illegible] की भलाई के लिए इस परम दुष्कर कर्म को कर ही लेना चाहिए ।७९। शस्त्रों के [illegible] साधन करने के योग्य अनेक कर्म होते हैं और विशेष अधिक होते हैं। इस कारण से तुम देवों के भी आराध्य देव भगवान् शङ्कर की आराधना करो। परमाधिक भक्ति से जब तुम संयुत हो जाओगे तो [illegible] सम्पूर्ण अपना [illegible] कर लोगे ।८०-८१।

परशुराम की तपश्चर्या

वसिष्ठ उवाच—इत्येवमुक्तो भृगुणा तथेत्युक्त्वा प्रणम्य तम् ।
रामस्तेनाभ्यनुज्ञातश्चकार गमने मनः ।।१
भृगुं ख्यातिं च विधिवत्परिक्रम्य प्रणम्य च ।
परिष्वक्तस्तथा ताभ्यामाशीर्भिरभिनंदितः ।।२
मुनींश्च तान्नमस्कृत्य तैः सर्वैरनुमोदितः ।
निश्चक्रामाश्रमात्तस्मात्तपसे कृतनिश्चयः ।।३
ततो गुरुनियोगेन तदुक्तेनैव वर्त्मना ।
हिमवंतं गिरिवरं ययौ रामो महामनाः ।।४
सोऽतीत्य विविधान्देशान्पर्वतान्सरितस्तथा ।
वनानि मुनिमुख्यानामावासांश्चात्यगाच्छनैः ।।५
[illegible] तत्र निवासेषु मुनीनां निवसन्नपि ।
तीर्थेषु क्षेत्रमुख्येषु निवसन्वा ययौ शनैः ।।६
अतीत्य सुबहून्देशान्पश्यन्नपि मनोरमान् ।
आससादाचलश्रेष्ठं हिमवंतमनुत्तमम् ।।७

श्री वसिष्ठ जी ने कहा—भृगु मुनि के द्वारा इस प्रकार से कहे जाने पर मैं ऐसा ही करूँगा-यह कहकर राम ने उनको [illegible] किया [illegible] और

राम उनके द्वारा आज्ञा प्राप्त करके वहाँ पर गमन करने का मन वाला हो गया था ।१। भृगु के सुयश का [illegible] कर [illegible] विधि पूर्वक उनकी परिक्रमा करते हुए प्रणाम करके राम ने प्रस्थान करने की तैयारी की थी । उन दोनों ने उसका परिष्वजन किया था और आशीर्वचनों से राम का अभिनन्दन किया था ।२। वहाँ पर जो भी मुनिगण [illegible] सबके लिए राम ने प्रणाम किया था [illegible] उन सब के द्वारा वहाँ [illegible] करने के लिए अनुमोदन प्राप्त करने वाला हुआ था । फिर [illegible] उस आश्रम के [illegible] से तपश्चर्या करने के लिए मन में पूर्ण निश्चय वाला होकर निकल दिया था ।३। इसके अनन्तर गुरु देव के नियोग से और उनके द्वारा बताये हुए बताये हुए मार्ग से महान् मन वाले राम ने गिरियों में परम श्रेष्ठ हिमवान् को गमन किया था ।४। मार्ग में उसको अनेक देश—पर्वत—नदियाँ—वन और प्रमुख मुनियों के आवास-स्थल मिले थे । उन सबका उसने धीरे-धीरे अतिक्रमण किया था ।५। मार्ग में जहाँ-जहाँ पर मुनियों के निवास स्थलों में विश्राम करते हुए और जो मुख्य क्षेत्र थे तथा तीर्थ [illegible] मिले थे उनमें निवास करते हुए धीरे-धीरे वह वहाँ पर चलते चला गया था ।६। मार्ग में अनेक देशों का अतिक्रमण करके और परम मनोरम देशों का अवलोकन करते हुए अन्त में परमोत्तम और पर्वतों में श्रेष्ठ हिमवान् पर वह पहुँच गया था ।७।

स गत्वा पर्वतवरं नानाद्रुमलतान्वितम् ।
ददर्श विपुलैः शृङ्गैरुल्लिखन्तमिवाम्बरम् ॥८

नानाधातुविचित्रैश्च देशैरुपशोभितम् ।
रत्नौषधीभिरभितः स्फुरद्भिरभिशोभितम् ॥६

मरुत्संघट्टनावहनीरसाग्निपजन्मना ।
सानिलेनानलेनोच्चैर्दह्यमानं नगं क्वचित् ॥१०

क्वचिद्रविकरामर्शज्वलदर्कोपलाग्निभिः ।
दुर्वाद्धमशिलाजातुज्वलज्जातदवानलम् ॥११

स्फटिकाञ्जनसुवर्णस्वर्णराशिप्रभाकरैः ।
स्फुरत्परस्परच्छायाभरैर्दीप्तवनं क्वचित् ॥१२

उपत्यकशिलापृष्ठवासातपनिषेविभिः ।
तुषारक्लिन्नसिद्धौघैस्समासितवनं क्वचित् ॥१३

सिंहानां चरणक्षुण्णनखभिन्नोपलं क्वचित् ॥१९

सहसा निपतत्सिंहनखनिर्भिन्नमस्तकैः ।

गजैराक्रंदनादेन पूर्यमाणं वनं क्वचित् ॥२०

अष्टपादबलाकृष्टकेसरा दारुणाग्रवैः ।

भेद्यमानाखिलशिलागंभीरकुहरं क्वचित् ॥२१

कहीं पर हरिणों के मुख से निकले हुए शरक्षुर्यों के उत्पतन ऊपर की ओर (उछाल) से समाकुल मृगों [illegible] त्रास नादों से जिसकी गुहा समापूरित हो रही थी ।१५। किसी स्थल पर एक दूसरे [illegible] परस्पर में युद्ध करते हुए वराह और शार्दूलों के यूथपतियों [illegible] द्वारा बलात् उन्मूल सुन्दर एवं विशाल शिला एवं तटके तरुवर जिसमें विद्यमान थे ।१६। कहीं पर कलभों के अन्वेषण से आकृष्ट हुई करिणियों के द्वारा भागे हुए गवयों के खुर से वहाँ [illegible] तट प्रदेश संक्षुण्ण थे ।१७। किसी स्थान पर वासित अर्थ में विशेष बढ़े हुए मद से उन्मत्त गजों से जो कि परस्पर में युद्ध कर रहे थे मध्य स्थलों के द्वारा अनेक तरु के वनों को वहाँ पर चूर्णित कर दिया था ।१८। कहीं पर हाथियों की ध्वनि [illegible] श्रवण से जो क्षोभ हुआ उसके कारण गजों को खदेड़ते हुए सिंहों के चरणों के क्षुण्ण नखों से पाषाण भिन्न हो गये थे ।१९। कहीं पर वहाँ ऐसा स्थल था कि अचानक [illegible] करने वाले सिंहों [illegible] नाखूनों से युक्त हाथियों [illegible] [illegible] की ध्वनि से सम्पूर्ण [illegible] पूरित हो रहा था ।२०। अष्टपादों के द्वारा बलपूर्वक जिनके केसर खींच लिए गये हैं उनके परम [illegible] शब्द [illegible] कहीं कहीं [illegible] पर्वत की घनघोर गुफाएँ भी [illegible] भेद्यमान थी ।२१।

संरब्धानेकशबरप्रसक्तं र्व्हं समूपपैः ।

इतरेतरसंमर्दविभ्रमन्महिषस्क्वचित् ॥२२

गिरिकुंजेषु संक्रीडत्करिणीमद्विपं क्वचित् ।

करेणुमाद्रवन्मत्तगजाकलितकाननम् ॥२३

स्वपत्सिंहमुखश्वाससमरत्पूर्णदरीशतम् ।

गहनेषु गुरुत्रासससाकविहरन्मृगम् ॥२४

कंटकश्लिष्टलांगूललोमत्रुटसकातरैः ।

क्रोडितं चमरीयूथैर्मंदमंदविचारिभिः ॥२५

गिरिकंदरसंसक्तकिन्नरीसमुदीरितैः ।
सतालनादैर्ध्वनितं मृ तत्रोषदिशामुखम् ॥२६
अरण्यदेवतानां च चरंतीनामितस्ततः ।
अलक्तकरसंमिलन्नचरणांकितभूतलम् ॥२७
मयूरकेकिनीवृंदैः संगीतमधुरस्वरैः ।
प्रवृत्तनृत्तं परितो वितत्तोदग्रबर्हिभिः ॥२८

किसी स्थल पर संरब्ध बहुत से चकरों के द्वारा प्रसक्त रीछों के यूथ पंक्तियों के आनन्द में एक दूसरे के साथ संघर्ष [illegible] विलाए भग्न हो गयी थीं ।२२। कहीं पर पर्वत की कुञ्जों [illegible] करिणियाँ क्रीड़ाएं कर रही थीं और कहीं पर कोई करी नहीं था तब करेणु पर मतमग्न दौड़कर चले आ रहे [illegible] इस प्रकार से वहाँ [illegible] समाकलित था ।२३। कहीं पर वहाँ ऐसा भी वन था जहाँ पर सोते हुए सिंहों [illegible] मुखों के श्वासों की वायु से सैकड़ों गुहाएं पूरित हो रही [illegible] और वनों में बड़े भारी भय के कारण मृगगण शङ्कित होकर ही विहार कर रहे थे ।२४। किसी जगह पर यह वन चमरी गौओं के द्वारा क्रीड़ा का स्थल बना हुआ था जिनके पूंछों [illegible] काँटे लगे हुए थे और उनसे लोम टूट गये [illegible] । जिसके कारण वे भयभीत होकर मन्दगति [illegible] विच-रण कर रही थीं ।२५। कहीं पर गिरि [illegible] कन्दराओं में वे सक्त किन्नरियों के समुदाय थे और उनके द्वारा कहे हुए ताल [illegible] नादों तथा गीतों से सभी दिशाएं पूरित [illegible] ।२६। [illegible] महान् गिरि पर का वन इधर-उधर विचरण करती हुईं अरण्य देवताओं के चरणों में लगे हुए महावर के रस [illegible] वह भूतल चरणों के चिह्नों [illegible] अंकित हो रहा था ।२७। सङ्गीत के मधुर स्वरों [illegible] समन्वित-मयूर-मयूरियों के झुण्ड अपनी पंखों को फैलाकर कहीं पर आनन्द पूर्वक नृत्य कर रहे थे ।२८।

रामो मतिमतां श्रेष्ठस्तपसे च मनो दधे ।
शाकमूलफलाहारो नियतं नियतेंद्रियः ॥२९
तपश्चचार देवेशं विनिवेश्यात्ममानसे ।
भृगूपदिष्टमार्गेण भक्त्या परमया मुदा ॥३०
पूजयामास देवेशमेकाग्रमनसा नृप ।
अनिकेतः स वर्षासु शिशिरे जलसंश्रयः ॥३१

ग्रीष्मे पंचाग्निमध्यस्थः स्थचारैवं तपश्चिरम् ।
रिपून्निर्जित्य कामादीनूर्मिषट्कं विधूय च ॥३२
द्वंद्वैरनुद्वेजितधीस्तापदोषैरनाकुलः ।
यमैः सनियमैश्चैव शुद्धदेहः समाहितः ॥३३
वशीचकार पवनं प्राणायामेन देहगम् ।
जितपद्मासनो मौनी स्थिरचित्तो महामुनिः ॥३४
वशीचकार चाक्षाणि प्रत्याहारपरायणः ।
धारणाभिः स्थिरोधक्रे मनश्चंचलमात्मवान् ॥३५

ऐसे अनेक परम मनोरम [illegible] परिपूर्ण उस हिमवान् गिरि पर एक आश्रम अपना बनाकर भक्तिभावों में परशु [illegible] राम ने तपस्या करने का मन में विचार किया था और वह तपश्चर्या करने के लिये शाकों तथा मूलों के आहार करने [illegible] होकर नियत इन्द्रियों वाला बन गया था ।२९। उसने देवेश भगवान् शङ्कर को अपने मन में विनिवेशित करके तपस्या की थी। भृगुमुनि ने भी जो मार्ग बताया [illegible] उसी के अनुसार वह परमाधिक भक्ति से युक्त हो गया था ।३०। हे नृप ! उसने एक नि [illegible] से देवेश्वर की पूजा की थी। वर्षा [illegible] में भी वह बिना कहीं पर [illegible] ग्रहण किये हुए खुले में तप करते [illegible] और शिशिर ऋतु में भी जल में स्थित रहा करता ।३१। ग्रीष्म में पाँच अग्नियों के [illegible] बैठा रहता था। [illegible] रीति [illegible] राम के तप किया था और चिरकाल वह तपश्चर्या [illegible] की। जिसमें वह ऊर्मियों का विधूनन करके काम क्रोध-लोभ-मोह आदि शत्रुओं को भली भाँति जीत लिया [illegible] ।३२। जितने भी शीत-उष्ण आदि [illegible] हैं इनसे उसकी बुद्धि उद्वेजित नहीं होती [illegible] और [illegible] ताप के दोषों से कभी व्याकुल भी नहीं होता था। यमों और नियमों के द्वारा [illegible] देह परम शुद्ध [illegible] तथा वह बहुत ही समाहित रहता [illegible] ।३३। उसके देह में जो वायु था उसको उसने प्राणायामों के द्वारा अपने [illegible] कर लिया था। वह महान् मुनि मौनधारी-पद्मासन को जीत लेने वाला और परम स्थिर चित्त वाला था ।३४। प्रत्याहार में तत्पर रहकर उसने अपनी [illegible] इन्द्रियों को अपने वश [illegible] कर लिया था। आत्मवान् उस राम ने धारणाओं के द्वारा परम चञ्चल तथा [illegible] शील बलवान् [illegible] को भी स्थिर [illegible] लिया था जो कभी भी [illegible] रण या काबू में नहीं आया करता है ।३५।

परसुराम परीक्षा

तपस्विनं तदा राममेकाग्रमनसं भवे ।
रसस्यैकांतनिरतं नियतं संसितव्रतम् ॥१
श्रुत्वा तमृषयः सर्वे तपोनिर्धूतकल्मषाः ।
ज्ञानकर्मवयोवृद्धा महांतः संसितव्रताः ॥२
दिदृक्षवः समाजग्मुः कुतूहलसमन्विताः ।
श्लाघयंतस्तपः श्रेष्ठं तस्य राजन्महात्मनः ॥३
भृग्वत्रिक्रतुजाबालिवामदेवमृकंडवः ।
संभावयंतस्ते रामं मुनयो वृद्धसंमताः ॥४
आजग्मुराश्रमं तस्य रामस्य तपसस्तपः ।
दूरादेव महांतस्ते पुण्यक्षेत्रनिवासिनः ॥५
गरीयं सर्वलोकेषु तपोऽस्य ज्ञानमेव च ।
प्रशस्य तस्य ते सर्वे प्रययुः स्वं स्वमाश्रमम् ॥६
एवं प्रवर्तितस्तस्य [illegible] भगवाञ्छिवः ।
प्रसन्नचेता नितरां बभूव नृपसत्तम ॥७

श्री वसिष्ठजी ने कहा—उस समय में भगवान् शिव में एकाग्र मन वाले—एकान्त [illegible] एक निष्ठ होकर निरत रहने वाले—नियत और संसित [illegible] युक्त उस तपस्वी राम [illegible] करके तप से निर्धूत [illegible] वाले ऋषियों ने जो [illegible] और कर्मों में वृद्ध महान् और संसित व्रत वाले [illegible] सभी दर्शन की [illegible] वाले हुए [illegible] ।१-२। देखने की इच्छा से समन्वित थे [illegible] कुतूहल वाले वहाँ पर आये थे। हे राजन् ! वे सब महान् आत्मा वाले [illegible] राम के परम श्रेष्ठ तप [illegible] वर्णन करने वाले थे ।३। बड़े-बड़े मुनियों के द्वारा संमत भृगु—अत्रि—क्रतु—जाबालि-वामदेव और मृकण्डु [illegible] राम की प्रशंसा करने वाले थे ।४। तपस्या का तपन करने वाले उस राम [illegible] में [illegible] समागत हुए [illegible] । वे सब बहुत महान् और पुण्य क्षेत्र के निवास करने वाले बहुत ही दूर से वहाँ आये थे ।५। समस्त लोकों में [illegible] बहुत बड़ा उत्तम है और ज्ञान भी है । इस रीति से उन सब ने उसके तप की प्रशंसा की थी और फिर वे सभी अपने-अपने आश्रम को चले गये थे ।६। हे नृपों

बड़े वेग से युक्त तेवी के चलने से वृक्षों के समूह को छिपाता हुआ रहा था ।१२। वह पदों से गमन करने पर्वत के समान ही पर उपस्थित हो गया था । वह पुष्पों से समन्वित उस सरोवर के पर समागत हुआ था ।१३। उसने किसी वृक्ष की जड़ में उस मांस के भार को उतार कर रख दिया था और कुछ क्षणों के लिए वहाँ पर उसने वृक्ष की छाया का आश्रय ग्रहण किया था ।१४।

तिष्ठंतं सरसस्तीरे सोऽपश्यद्भृगुनंदनम् ।
ततः स शीघ्रमुत्थाय समीपमुपसृत्य च ॥१५
रामाय सेषुचापाभ्यां कराभ्यां विदधेऽञ्जलिम् ।
सजलांभोदसन्नादगंभीरेण स्वरेण च ॥१६
जगाद भृगुशार्दूलं गुहांतरविसर्पिणा ।
तोषप्रवर्षव्याघ्रोऽयं वसाम्यस्मिन्महावने ॥१७
ईशोऽहमस्य देशस्य सप्राणितरुवीरुधः ।
करोमि समभितात्मा नानासत्वामिषाशनः ॥१८
समश्च सर्वभूतेषु न च मित्रादयोऽपि मे ।
अभक्ष्यागम्यपेयादिच्छंदवस्तुषु कुत्रचित् ॥१९
कृत्याकृत्यविधौ चैव न विशेषितधीरहम् ।
प्रपन्नो नाभिगमनं निवासमपि कस्यचित् ॥२०
भक्षस्यापि बलेनाहमनुमन्ये न संशयः ।
जानते तथ्यतः सर्वे देशोऽयं मदुपाश्रयः ॥२१

महान् भयङ्कर स्वरूपवान वकर ने वहाँ पर सरोवर के पर ध्यान में बैठे हुए भृगु को देखा था । इसके उपरान्त बहुत शीघ्र उठकर राम के समीप में गया था ।१५। उसने राम के लिये बाण और चाप से युक्त करों से अञ्जलि की थी और से परिपूर्ण मेघ के समान परम गम्भीर स्वर से उस शार्दूल से कहा था जो कि स्वर पर्वत की गुहाओं में फैल था । मैं तोष-प्रवर्ष व्याघ्र हूँ और इसी महावन में निवास किया करता हूँ ।१६-१७। इस के प्राणी और वनस्पतियों का मैं स्वामी हूँ । अनेक जीवों के मांस का भोजन करने वाला

की सिद्धि के लिये यहाँ पर समधिष्ठित हो रहे हैं ? अथवा यहाँ से किसी [illegible] [illegible] में जाने के समुद्यत हैं अथवा आपकी [illegible] करने की इच्छा [illegible] ।२३। श्री वसिष्ठ जी ने कहा—जब उसके द्वारा इस प्रकार से कहा [illegible] तो महान् द्युति से सम्पन्न राम ने हँसकर एक [illegible] [illegible] लिए चुप होकर कुछ नीचे की ओर मुख करके चिन्तन किया था ।२४। उसने अपने मन में विचार किया [illegible] कि यह दुराधर्ष कौन है जिसकी ध्वनि सजल मेघ [illegible] सदृश है और अधिक सुस्पष्ट अर्थ वाले पदों से युक्त वाणी बोलता है ।२५। इसका वपु मेरे हृदय में बहुत अधिक कौतुक समुत्पन्न कर रहा है । यह विजातीय है और नीच जाति का समाश्रय पाकर भी [illegible] शरीर वर की ही भाँति परम रमणीय है ।२६। इस तरह से चिन्तन करते [illegible] उसको परम शुभ निमित्त हो रहे थे जो भूमि में—देह में अपने अभीष्ट अर्थ के लिये पूर्ण रूप से [illegible] करने वाले थे ।२७। इसके अनन्तर उस भृगु कुल में श्रेष्ठ ने मन से बहुत बार विचार करके धीरे से उस [illegible] से सुस्फुट अक्षरों वाले वचन कहे थे ।२८।

जामदग्न्योऽस्मि विप्रेन्द्र रामो नाम्ना तु भार्गवः ।
तपश्चर्तुं मिहायातः सांप्रतं गुरुशासनात् ॥२९
तपसा सर्वलोकेशं भक्त्या [illegible] नियमेन च ।
आराधयितुमर्हमिमस्तु चिरायाहं समुद्यतः ॥३०
तस्मात्सर्वेश्वरं सर्वैश्वर्यमभयप्रदम् ।
त्रिनेत्रं पापदमनं शङ्करं भक्तवत्सलम् ॥३१
तपसा तोषयिष्यामि सर्वज्ञं त्रिपुरान्तकम् ।
आश्रमेऽस्मिन्सरस्तीरे नियमं समुपाश्रितः ॥३२
भक्तानुकंपी भगवान्यावत्प्रत्यक्षतां हरः ।
उपैति तावदत्रैव स्थास्यामीति मतिर्मम ॥३३
तस्मादितस्त्वयाद्यैव गन्तुमन्यत्र युज्यते ।
न चेद्भवति मे हानिः स्वकृतेर्नियमस्य च ॥३४
माननीयोऽथ वाहं ते भक्त्या देशान्तरातिथिः ।
स्वनिवासमुपायातस्तपस्वी च तथा मुनिः ॥३५

आयुष्मताऽमुनैवास्मात्स्वच्छन्दमाश्रमात् ।
स्वसंश्रयं परित्यज्य क्वाहं यास्ये बुभुक्षितः ॥४२

आपके समीप में मेरा निवास होना केवल पाप के ही लिए होगा और आपका भी मेरे निकट रहना भविष्य में असुख देने वाला ही होगा अर्थात् मेरे समीप में रहने से आपको भी कष्ट ही होगा ।३६। ऐसे आप मेरे [illegible] के समीप में इधर-उधर घूमने-फिरने के चक्र काटने को त्यागकर आप भी दोनों लोकों में सुखी होइये ।३७। वसिष्ठ जी ने कहा—उस राजा के इन वचनों का श्रवण करके वह रोष से लाल नेत्रों को करके रक्त नेत्रों वाले भृगु श्रेष्ठ से यह उत्तर देते हुए कहा ।३८। हे महान् ! मेरे समीप [illegible] रहने की आप इतनी अधिक अब क्यों बुराई कर रहे हैं जैसे कोई कृतघ्न किया करता है ।३९। मैंने [illegible] लोक में आपका अथवा कहीं पर अन्य किसी का [illegible] अपकार किया है ? जो पाप या अपराध नहीं करने वाला है उसका नाम से ही कौन अपमान किया करता [illegible] अर्थात् ऐसा तो कोई भी करता है ।४०। हे श्रेष्ठ विप्र ! यदि आपको मेरा समीप में रहना हटाना [illegible] और मेरा देखना—साथ में वार्तालाप और एक जगह पर [illegible] रहना भी दूर करना है तो आयुष्मान् आपको इसी समय [illegible] इस आश्रम से अपसरण कर जाना चाहिए । मैं तो बुभुक्षित हूँ और अपने निवास स्थान का परित्याग करके कहाँ पर जाऊँगा ।४१-४२।

स्वाधिवासं परित्यज्य भवता चोदितः कथम् ।
इतोऽन्यस्मिन्गमिष्यामि दूरे नाहं विशेषतः ॥४३
गम्यतां भवताऽन्यत्र स्वीयताममवेच्छया ।
नाहं चालयितुं शक्यः स्थानादस्मात्कथंचन ॥४४
वसिष्ठ उवाच—श्रुत्वा वचनं तस्य किंचित्कोपसमन्वितः
तमुवाच पुनर्वाक्यमिदं राजन्भृगूद्वहः ॥४५
व्याघ्रजातिरियं क्रूरा सर्वसत्त्वभयावहा ।
खलकर्मरता नित्यं धिक्कृता सर्वजंतुभिः ॥४६
तस्यां जातोऽसि पापीयान्सर्वप्राणिविहिंसकः ।
[illegible] कथं [illegible] परित्याज्यः सुजनैः स्यात् दुर्मते ॥४७

अपसर्पणताबुद्धिमहमुत्पादये स्फुटम् ॥५४

क्षणार्द्धमपि ते पाप श्रेयसी नेह संस्थितः ।

विरुद्धाचरणो नित्यं धर्मद्विट् को लभेच्च शम् ॥५५

वसिष्ठ उवाच—रामस्य वचनं श्रुत्वा प्रीतोऽपि तमिदं वचः ।

उवाच संक्रुद्ध इव व्याघ्ररूपी पिनाकधृक् ॥५६

इसी भाँति से समस्त प्राणधारियों को अपने प्राण परम प्रिय हुआ करते हैं—ऐसा ही अपने [illegible] में [illegible] लो । [illegible] जिनका हनन किया करते [illegible] उनकी भी व्यथा इसी प्रकार से हुआ करती [illegible] और अन्य प्रकार की नहीं होती [illegible] ।५०। प्राणिमात्र की हिंसा [illegible] करना ही सनातन अर्थात् सदा से चले आने वाला धर्म है । इसके विरुद्ध कार्यों का समाचरण करना ही नित्य सत्पुरुषों के द्वारा बुरा माना जाता है ।५१। अपने प्राणों की अभिरक्षा [illegible] ही लिए हम सब शरीर धारियों का हनन किया करेंगे । फिर आगे क्यों नहीं सत्पुरुषों में निन्दा को प्राप्त होंगे ।५२। हे [illegible] पुरुष ! [illegible] कारण से आप बहुत शीघ्र ही यहाँ [illegible] चले जाओ । तुम्हारे द्वारा किए कृत्यों के दोष से मेरे कार्य की कोई हानि नहीं होगी ।५३। यदि [illegible] स्वयं ही यहाँ से नहीं गमन करते [illegible] तो मैं बलपूर्वक भी स्पष्टतया तुम्हारे अपसर्पण की बुद्धि समुत्पन्न कर देता हूँ ।५४। हे पापात्मन् ! यहाँ पर आधे क्षण भी आपकी संस्थिति अच्छी नहीं है । विरुद्ध आचरण वाला धर्म का द्वेषी ऐसा कौन [illegible] जो सदा कल्याण को [illegible] किया करता [illegible] अर्थात् ऐसा कोई भी नहीं होता [illegible] ।५५। श्री वसिष्ठजी ने कहा—राम के ऐसे वचनों को सुनकर मन [illegible] बहुत [illegible] होते [illegible] भी वे व्याघ्ररूपधारी भगवान् शंकर [illegible] के ही समान [illegible] राम से यह वचन बोले थे ।५६।

सर्वमेतदहं मन्ये व्यर्थं व्यवसितं [illegible] ।

कुतस्त्वं प्रथमो ज्ञानी कुतः शंभुः कुतस्तपः ॥५७

कुतस्त्वं क्लिश्यसे मूढ तपसा तेन तेऽमुना ।

ध्रुवं मिथ्याप्रवृत्तस्य [illegible] हि तुष्यति शङ्करः ॥५८

विरुद्धलोकाचरणः शंभुस्तस्य वितुष्टये ।

प्रतपस्यबुधो मर्त्यंस्त्वां विना कः सुदुर्मते ॥५९

अथवा च गतं मेऽद्य युक्तमेतदसंशयम् ।

संपूज्य पूजकविधौ शंभोस्तव च संभ्रमः ॥६०

त्वया पूजयितुं युक्तः स एव भुवने रतः।

संपूजकोऽपि [illegible] त्वं योग्यो नात्र विचारणा ॥६१

पितामहस्य लोकानां ब्रह्मणः परमेष्ठिनः।

शिरश्छित्त्वा पुनः शम्भुर्ब्रह्महत्यामवाप्तवान् ॥६२

ब्रह्महत्याभिभूतेन प्रायस्त्वं शंभुना द्विज।

उपदिष्टोऽसि तत्कर्तुं नोचेदेवं कथं कृथाः ॥६३

मैं यह सब कुछ मानता [illegible] तथापि आपका ऐसा निश्चय कि भगवान् शङ्कर [illegible] दर्शन प्राप्त करूँगा यह [illegible] व्यर्थ है। कहाँ तो प्रथम आनी हैं—कहाँ भगवान् देवों के देव शम्भु हैं तथा कहाँ उनको प्राप्त करने के लिए यह तुम्हारी तपस्या [illegible] ? अर्थात् भगवान् शम्भु के [illegible] करने के लिए कहीं अत्यधिक ज्ञान और विशेष तपस्या होनी चाहिए क्योंकि वे साधारण [illegible] से प्राप्त होने वाले नहीं हैं। आपकी साधना सर्वथा अकिञ्चित्कर [illegible] ।५७। हे मूढ़ ! इस समय में इस [illegible] के द्वारा आप क्यों क्लेशित हो रहे हैं ? यह निश्चय है कि इस तरह से मिथ्याप्रवृत्ति वाले आपसे भगवान् शङ्कर कभी [illegible] सन्तुष्ट नहीं होंगे ।५८। हे सुदुर्मते ! शम्भु तो लोक के आचरण [illegible] सर्वथा विरुद्ध हैं। उनकी विशेष तुष्टि के लिए तुमको छोड़कर कौन मनुष्य ऐसी [illegible] तपस्या किया करता है अर्थात् ऐसा कोई भी नहीं करता [illegible] ।५९। और [illegible] [illegible] आज गया और यह बिना ही संशय के युक्त है। पूज्य और पूजन की विधि में भगवान् शम्भु का और आपका सङ्गम [illegible] ।६०। आपके द्वारा उनकी पूजा करना युक्त है। वे ही [illegible] भुवन [illegible] रत हैं। उनकी भली भाँति पूजा करने वाले आप भी योग्य हैं—इसमें कोई संशय नहीं [illegible] ।६१। समस्त लोकों के पिता यह परमेष्ठी ब्रह्माजी [illegible] शिर का छेदन करके शम्भु ने फिर ब्रह्म हत्या [illegible] की थी ।६२। हे द्विज ! ब्रह्महत्या से अभिभूत शम्भु ने प्रायः आपको उपदेश दिया है कि ऐसा करें। यदि ऐसा नहीं है तो आप इस रीति से कैसे कर रहे हैं ।६३।

तादात्म्यगुणसंयोगान्मन्ये स्वस्य तेऽमुना।

[illegible] सिद्धिरनुप्राप्ता कालेनाल्पीयसा मुने ॥६४

प्रायोऽद्य मातरं हत्वा सर्वैर्लोकैर्निराकृतः।

तपोव्याजेन गहने निर्जने संप्रवर्तसे ॥६५

गुरुस्त्रीब्रह्महत्योत्थपातकापनयाय च ।
तपश्चरसि नानेन [illegible] तत्प्रणश्यति ॥६६

पातकानां किलान्येषां प्रायश्चित्तानि सत्यपि ।
मातृद्रुहामवेहि त्वं न क्वचित्किल निष्कृतिः ॥६७

अहिंसालक्षणो धर्मो लोकेषु यदि ते मतः ।
स्वहस्तेन कथं राम मातरं कृत्तवानसि ॥६८

कृत्वा मातृवधं घोरं सर्वलोकविगर्हितम् ।
त्वं पुनर्धार्मिको भूत्वा कामतोऽन्यान्विनिन्दसि ॥६९

पश्यता हसतामोघं आत्मदोषजानता ।
अपर्याप्तमहं मन्ये परं दोषविमर्शनाम् ॥७०

मैं ऐसा मानता हूँ कि [illegible] भगवान् [illegible] [illegible] तादात्म्य के संयोग से सिद्धि को प्राप्त हो गये हैं। हे मुने ! [illegible] सिद्धि की प्राप्ति बहुत ही थोड़े समय में हो जायगी ।६४। बहुधा [illegible] आज अपनी माता [illegible] हनन करके सभी लोगों [illegible] द्वारा निराकृत हो गये हैं और तपस्या के करने के बहाने से इस निर्जन वन में तबसे निरादर पाकर प्रवृत्त हो गये [illegible] ।६५। गुरु-स्त्री और ब्रह्महत्या [illegible] समुत्पन्न पातक के दूर करने के लिए ही [illegible] तपश्चर्या का समाचरण कर रहे हैं सो यह [illegible] इस [illegible] से कभी भी विनष्ट नहीं होता है ।६६। अन्य प्रकार [illegible] किये हुए पातकों के निश्चित रूप [illegible] प्रायश्चित्त भी हैं। [illegible] यह समझ लेवें कि जो माता से द्रोह करने वाले [illegible] कहीं भी उनके पातकों [illegible] प्रायश्चित्त नहीं है ।६७। हे राम ! यदि आपको यह सम्मत है कि अहिंसा के लक्षण वाला धर्म [illegible] जो कि सभी लोकों में माना गया [illegible] तो फिर आपने ही अपने ही हाथ से अपनी माता को कैसे काट दिया था ? ।६८। समस्त लोकों में परमाधिक निन्दित घोर [illegible] का वध करके फिर बड़े धार्मिक [illegible] अपनी इच्छा [illegible] अन्य लोगों को विशेष निन्दा कर रहे हैं ।६९। इस अमोघ अपने दोष को देखते हुए भी उसको नहीं जानते हैं और हँस रहे हैं। मैं तो इस दूसरों के दोषों के विमर्शना को पर्याप्त नहीं मानता हूँ ।७०।

स्वधर्मं यद्यहं त्यक्त्वा वर्तेयमकुतोभयम् ।
तर्हि गर्हय मां कामं निरूप्य मनसा स्वयम् ॥७१
मातापितृसुतादीनां भरणायैव केवलम् ।
क्रियते प्राणिहननं निजधर्मतया मया ॥७२
स्वधर्माविमिषेणाहं सकुटुम्बो दिनेदिने ।
वर्तामि साऽपि मे वृत्तिविधात्रा विहिता पुरा ॥७३
मांसेन यावता मे स्यान्नित्यं पित्रादि पोषणम् ।
हनिष्ये चेत्तदधिकं तर्हि मुच्येयमेनसा ॥७४
यावत्पोषणघातेन [illegible] निन्दिताः ।
तदेतत्संप्रधार्य त्वं [illegible] मां प्रशंस वा ॥७५
साधु वाऽसाधु वा कर्म यस्य यद्विहितं पुरा ।
तदेव तेन कर्त्तव्यमापद्यपि कथंचन ॥७६
निरूप्य स्वबुद्ध्या त्वमात्मनो मम चान्तरम् ।
अहं तु सर्वभावेन पित्रादिभरणे रतः ॥७७

यदि मैं अपने [illegible] का त्याग कर अकुतोभय अर्थात् निर्भीकता वाला होते हुए बरताव करूँ तो स्वयं मन से निरूपण करके मुझे इच्छा पूर्वक निन्दित कहिए ।७१। मैं तो अपने माता-पिता और पुत्र आदि के भरण-पोषण [illegible] ही लिए केवल अपने धर्म के [illegible] ही प्राणियों [illegible] वध किया करता [illegible] ।७२। अपने ही धर्म होने [illegible] प्रतिदिन अपने कुटुम्ब [illegible] भरण मांस से किया करता [illegible] और यह [illegible] मेरी वृत्ति पहिले ही विधाता ने [illegible] ।७३। जितने मांस से नित्य ही मेरे माता-पिता और पुत्र आदि का भरण हो जाता है उतने ही प्राणियों का मैं हनन किया [illegible] हूँ । इससे भी अधिक मैं हनन करूँ तो मैं पाप से मुक्त होऊँगा ।७४। जितने मांस [illegible] पोषण होते उतने ही प्राणियों के घात करने [illegible] हम लोग कभी भी निन्दित नहीं होते हैं । यह सबका विचार करके ही आप मेरी निन्दा करें या प्रशंसा करें ।७५। अच्छा हो या बुरा हो जिसका जो कर्म पहिले ही विधाता ने [illegible] दिया है वही कर्म किसी [illegible] से आपत्काल [illegible] भी उसे करना चाहिए ।७६। [illegible] आप स्वयं अपनी ही बुद्धि से मेरे कर्म में जो भी [illegible] हो [illegible]

विचित्रार्थपदोदारगुणगाम्भीर्यजातिभिः ।
सर्वज्ञस्येव ते वाणी श्रूयतेऽतिमनोहरा ॥३
इन्द्रो वह्निर्यमो धाता वरुणो वा धनाधिपः ।
ईशानस्तपनो ब्रह्मा वायुः सोमो गुरुर्गुहः ॥४
एषामन्यतमः प्रायो भवान्भवितुमर्हति ।
अनुभावेन जातिस्ते हृदि शंका तनोति मे ॥५
मायावी भगवान्विष्णुः श्रूयते पुरुषोत्तमः ।
को वा त्वं वपुषानेन ब्रूहि मां समुपागतः ॥६
अथ वा जगतां नाथः सर्वज्ञः परमेश्वरः ।
परमात्मात्मसंभूतिरात्मारामः सनातनः ॥७

श्री वसिष्ठ जी ने कहा -हे भूपाल ! मतिमानों [illegible] परम श्रेष्ठ राम से [illegible] इस प्रकार से कहा गया था तो फिर उसने मन [illegible] निरूपण करके बहुत ही विस्मित होते हुए उससे कहा [illegible] ।१। राम ने कहा—हे महान् भाग वाले ! आप मुझे यह बतलाइए कि [illegible] कौन हैं ? [illegible] कोई प्राकृत पुरुष तो है नहीं । आपका शरीर तो अनुभाव से इन्द्र [illegible] ही समान लक्षित हो रहा है ।२। विचित्र [illegible] वाले पदों की उदारता-गुणों की गम्भीरता और जातियों से आपकी वाणी सर्वज्ञ की ही अधिक मनोहर सुनाई दे रही है ।३। आप या तो इन्द्र हैं—अग्निदेव हैं—यम—धाता—वरुण अथवा कुबेर हैं । आप या तो ईशान हैं—तपन-ब्रह्मा—वायु—सोम—गुरु और या गुह [illegible] ।४। इन ऊपर बताये हुओं में से ही आप कोई [illegible] भी एक हो सकते हैं—यही बहुधा प्रतीत होता है । आपके अनुभाव कुछ [illegible] ही हैं कि मेरे हृदय में आपकी जाति बड़ी भारी [illegible] उत्पन्न कर रही है ।५। भगवान् विष्णु बहुत अधिक मायावी हैं—ऐसा पुरुषोत्तम प्रभु के विषय में श्रवण किया जाता है । [illegible] में कौन हैं जो कि [illegible] शरीर को धारण करके यहाँ [illegible] हुए हैं—यह आप मुझे स्पष्टतया बतलाने की कृपा करें । अथवा समस्त भुवनों के स्वामी-सब कुछ के ज्ञाता साक्षात् परमेश्वर हैं जो परमात्मा [illegible] ही आत्मा की उत्पत्ति वाले सनातन आत्माराम हैं ।६-७।

स्वच्छन्दचारी भगवाञ्छन्नः सर्वजगन्मयः ।
वपुषानेन संयुक्तो भवान्भवितुमर्हति ॥८

वाले को देखा था ।१८। इसके अनन्तर अपनी आँखें खोलकर भार्गव ने शीघ्र उठकर उसी शरीरसे संयुत और सामने स्थित देव का दर्शन किया था ।१९। हे महाराज ! अपने ऊपर अनुग्रह करने के लिए—भक्तों पर प्रेम करने वाले शरण में समागत के देवेश्वर को राम ने बड़े सम्भ्रम के साथ प्रकट हुए देखा था ।२०। उस महामति के अङ्गों में रोमाञ्च उद्भिन्न हो गये थे और परमाधिक हर्ष के उद्रेक से आनन्दाश्रुओं से नेत्र भर गये थे। फिर भक्तिभाव से वह उनके चरणों में भूमि पर उनके सामने गिर गया अर्थात् उसने उनके चरण कमलों में साष्टाङ्ग प्रणाम किया था ।२१।

स गद्गदसुवार्चनं संभ्रमाकुलया गिरा ।
शरणं भव शर्वेति शंकरेत्यसकृन्नृप ॥२२
ततः स्वरूपधृक् शंभुस्तद्भक्तिपरितोषितः ।
राममुत्थापयामास प्रणामावनतं भुवि ॥२३
उत्थापितो जगद्धात्रा स्वहस्ताभ्यां भृगूद्वहः ।
तुष्टाव देवदेवेशं पुरः स्थित्वा कृताञ्जलिः ॥२४
राम उवाच—नमस्ते देवदेवाय शंकरायार्तिमूर्तये ।
नमः शर्वाय शांताय शाश्वताय नमोनमः ॥२५
नमस्ते नीलकण्ठाय नीललोहितमूर्तये ।
नमस्ते भूतनाथाय भूतवासाय ते नमः ॥२६
व्यक्ताव्यक्तस्वरूपाय महादेवाय मीढुषे ।
शिवाय बहुरूपाय त्रिनेत्राय नमोनमः ॥२७
शरणं भव मे शर्व त्वद्भक्तस्य जगत्पते ।
भूयोऽनन्याश्रयाणां तु त्वमेव हि परायणम् ॥२८

हे नृप ! उस राम ने सम्भ्रम से समाकुलित वाणी से गद्गद कण्ठ होकर इन प्रभु से कहा था और बारम्बार हे शर्व ! आप मेरे रक्षक होइए ऐसी प्रार्थना की थी ।२२। इसके अनन्तर अपने स्वरूप को धारण करने वाले शम्भु ने राम की भक्ति के भाव से परम सन्तुष्ट होते हुए भूमि में प्रणाम करने में पड़े हुए उसको ऊपर अपने कर कमलों से उठा लिया था ।२३। जगत् के धाता के द्वारा अपने ही करों से वह भृगूद्वह ऊपर उठा लिया गया

था । फिर उस राम ने उनके समक्ष में स्थित होकर हाथ जोड़कर उन देव-देवेश्वर का स्तवन किया था ।२४। राम ने कहा—देवों के भी देव आदि मूर्ति भगवान् शङ्कर के लिये मेरा प्रणाम स्वीकार हो । सर्व—परमात्मा और [illegible] प्रभु शम्भु के लिए मेरा बारम्बार प्रणाम है ।२५। नीलकण्ठ और नील-लोहित मूर्ति वाले के लिए मेरा अनेक बार प्रणाम निवेदित है । आप तो भूतों के नाथ हैं ऐसे भूतनाथ आपके लिए मेरा बारम्बार [illegible] है ।२६। आपका स्वरूप व्यक्त है और अव्यक्त भी है ऐसे महादेव—गौड़—शिव—त्रिनेत्र और अनेक रूप वाले देवेश की सेवा में मेरा बारम्बार प्रणाम स्वीकार हो ।२७। हे जगत् के स्वामिन् ! हे सर्व ! आपके ही चरणों में भक्ति रखने वाले मेरे आप रक्षक हो जाइए । जो किसी अन्य देव का समाश्रय ग्रहण न कर आपके ही चरणों का आश्रय लेते हैं वे अनन्य भक्त होते हैं उनके लिए आप ही परायण हैं ।२८।

यन्मयाऽपकृतं देव दुरुक्तं वापि शंकर ।
अजानता त्वां क्षमयन्मम तत्क्षंतुमर्हसि ॥२९
अनन्यवेद्यरूपस्य सद्भावमिह कः पुमान् ।
त्वामृते तव सर्वेश सम्यक् शक्नोति वेदितुम् ॥३०
तस्मात्त्वं सर्वभावेन प्रसीद मम शंकर ।
नान्याऽस्ति मे गतिस्तुभ्यं नमो भूयो नमो नमः ॥३१
वसिष्ठ उवाच—इति संस्तूयमानस्तु कृताञ्जलिपुटं पुरः ।
तिष्ठंतमाह भगवान्प्रसन्नात्मा जगन्मयः ॥३२
भगवानुवाच—प्रीतोऽस्मि भवते तात तपसाऽनेन सांप्रतम् ।
भक्त्या चैवानपायिन्या ह्यपि भार्गवसत्तम ॥३३
दास्ये चाभिमतं सर्वं भवतेऽहं त्वया वृतम् ।
भक्तो हि मे त्वमत्यर्थं नात्र कार्या विचारणा ॥३४
मयैवावगतं सर्वं हृदि यत्तेऽद्य वर्तते ।
तस्माद्ब्रवीमि यत्स्वाहं तत्कुरुष्वाविशंकितम् ॥३५

हे शङ्कर ! मैंने जो भी कुछ अपकार किया है अथवा आपके प्रति मैंने जो बुरे शब्दों का प्रयोग किया था वह मेरे अज्ञान के कारण से ऐसा

तमुत्थाप्य शिवः प्रीतः प्रसन्नमुखपंकजम् ।
रामं मधुरया वाचा प्रहसन्नाह सादरम् ॥६६

इमे दैत्यगणैः क्रांताः स्वाधिष्ठानात्परिच्युताः ।
अशक्नुवंतस्तान्हंतुं गीर्वाणा मामुपागताः ॥६७

तस्मान्ममाज्ञया राम देवानां च प्रियेप्सया ।
जहि दैत्यगणान्सर्वान्समर्थस्त्वं हि मे मतः ॥६८

ततो रामोऽब्रवीच्छर्वं प्रणिपत्य कृतांजलिः ।
शृण्वतां सर्वदेवानां सप्रश्रयमिदं वचः ॥६९

स्वामिन्न विदितं किं ते सर्वज्ञस्याखिलात्मनः ।
तथापि विज्ञापयतो वचनं मेऽवधारय ॥७०

भक्ति भाव से सम्भ्रम के [illegible] हर्ष से गद्गद वाणी के द्वारा व्याकुल अक्षरों में शम्भु [illegible] बोले—हे देवदेव ! आपके लिए मेरा प्रणाम निवेदित है ।६४। भगवान् त्रिपुरारि प्रभु के चरण कमलों को मस्तक से स्पर्श करते हुए उसने भूमि पतित होकर साष्टांग प्रणिपात किया था । समस्त देवों के समुदाय वहाँ पर देख रहे थे । उनके मध्य में उस भृगु कुलोद्वह ने प्रणिपात किया [illegible] ।६५। भगवान् शिव ने परम प्रसन्न होकर विकसित मुखकमल वाले उस राम को [illegible] [illegible] और हँसते हुए परम मधुर वाणी से आदर पूर्वक राम से कहा [illegible] ।६६। ये [illegible] देवों के समुदाय दैत्यों के द्वारा समा- [illegible] हो रहे हैं और ये सब अपने निवास स्थान से परिच्युत कर दिये गये हैं । बिचारे ये देवगण उनका हनन करने की सामर्थ्य [illegible] रखते [illegible] हीं [illegible] [illegible] मेरे समीप में समागत हुए हैं ।६७। इसलिए हे राम ! मेरी आज्ञा से और [illegible] देवों [illegible] प्रिय कार्य करने की इच्छा [illegible] समस्त दैत्यगणों [illegible] आप हनन कर डालिए । आप इस कार्य के सम्पादन करने के लिए समर्थ हैं ऐसा मेरा मत [illegible] ।६८। इसके उपरान्त राम ने भगवान् शम्भु को प्रणाम करके दोनों अपने करों को जोड़कर समस्त देवों के सामने उनके श्रवण करते हुए विनय पूर्वक यह वचन भगवान् शम्भु [illegible] कहे थे ।६९। हे स्वामिन् ! आप तो सर्वज्ञ [illegible] और सबकी आत्मा हैं । [illegible] आपको यह विदित नहीं है तो भी विज्ञापन करते हुए मेरे यह वचन को [illegible] धारण कीजिए ।७०।

यदि शक्रादिभिर्देवैरखिलैरमरारयः ।
न शक्या हंतुमेकस्य शक्याः स्युस्ते कथं मम ॥७१
अनस्त्रज्ञोऽस्मि देवेश युद्धानामप्यकोविदः ।
कथं हनिष्ये सकलान्सुरशत्रूननायुधः ॥७२
इत्युक्तस्तेन देवेशः सितं कालाग्निसप्रभम् ।
शैवमस्त्रमयं तेजो ददौ तस्मै महात्मने ॥७३
आत्मीयं परशुं दत्त्वा सर्वशस्त्राभिभावकम् ।
राममाह प्रसन्नात्मा गीर्वाणानां च शृण्वताम् ॥७४
मत्प्रसादेन सकलान्सुरशत्रून्विनिघ्नतः ।
शक्तिर्भवतु ते सौम्य समस्तारिदुरासदा ॥७५
अनेनैवायुधेन त्वं गच्छ युध्यस्व शत्रुभिः ।
स्वयमेव च वेत्सि त्वं यथावद्युद्धकौशलम् ॥७६
वसिष्ठ उवाच—एवमुक्तस्ततो रामः शंभुना तं प्रणम्य च ।
जग्राह परशुं शैवं विद्युदग्निरिवोद्यतः ॥७७

यदि इन्द्र आदि [illegible] देवों [illegible] द्वारा देवों [illegible] शत्रुगण दैत्य लोग मारे नहीं जाते [illegible] तो मुझ एक के द्वारा वे [illegible] कैसे मारे जा सकते हैं ।७१। हे देवेश ! मैं तो अस्त्रों के विषय में भी अज्ञ हूँ और युद्धों के करने में भी पण्डित नहीं हूँ । बिना ही आयुधों वाला मैं किस तरह से समस्त देवों [illegible] शत्रु असुरों का अकेला हनन करूँगा ।७२। उस राम के [illegible] इस रीति [illegible] कहे गये देवेश्वर शम्भु ने कालाग्नि [illegible] समान प्रभा वाले सित [illegible] अस्त्रों [illegible] परिपूर्ण शैव तेज [illegible] महान आत्मा वाले को दे दिया [illegible] ।७३। उन्होंने [illegible] शस्त्रों के अभिभावक अपने परशु को प्रदान [illegible] प्रसन्न आत्मा वाले शिव ने समस्त देवगणों के सुनते हुए उस राम से कहा [illegible] ।७४। हे सौम्य ! मेरे प्रसाद से समस्त देवों के शत्रुओं [illegible] हनन करते हुए तुम्हारे अन्दर ऐसी ही शक्ति हो जायेगी जो [illegible] अरिओं को दुरासद अर्थात् अतीव असह्य होगी ।७५। इसी एक मात्र आयुध को ग्रहण कर तुम चले जाओ और [illegible] शत्रुओं के साथ युद्ध करो । तुम अपने ही आप स्वयं यथा रीति से युद्ध करने [illegible] कौशल को ज्ञान पाओगे ।७६। श्री वसिष्ठजी ने कहा—इस तरह से [illegible] भगवान्

शिव के द्वारा राम से कहा गया तो उसने शम्भु को प्रणाम किया था और देवों के शत्रुओं का हनन करने के लिये उद्यत होते हुए उनके परशु को ग्रहण कर लिया था।७७।

ततः स शुशुभे रामो विष्णुतेजोंऽशसंभवः ।
रुद्रभक्त्या समायुक्तो द्युत्येव सवितुर्मह: ॥७८
सोऽनुज्ञातस्त्रिनेत्रेण देवैः सर्वैः समन्वितः ।
जगाम हंतुमसुरान्युद्धाय कृतनिश्चयः ॥७९
ततोऽभवत्पुनर्युद्धं देवानामसुरैः सह ।
त्रैलोक्यविजयोद्युक्तैराजन्नतिभयंकरम् ॥८०
अथ रामो महाबाहुस्तस्मिन्युद्धे सुदारुणे ।
क्रुद्धः परशुना तेन निजघान महासुरान् ॥८१
प्रहारैरशनिप्रख्यैर्निघ्नन्दैत्यान्सहस्रशः ।
चचार समरे रामः क्रुद्धः काल इवापरः ॥८२
हत्वा तु सकलान्दैत्यान्देवान्सर्वानहर्षयत् ।
क्षणेन नाशयामास रामः प्रहरतां वरः ॥८३
रामेण हन्यमानास्तु [illegible] दैत्यदानवाः ।
ददृशुः सर्वतो रामं हततेषा भयान्विताः ॥८४
हतेष्वसुरसंघेषु विद्रुतेषु च कृत्स्नशः ।
राममामंत्र्य विबुधाः प्रययुस्त्रिदिवं पुनः ॥८५
रामोऽपि हत्वा दितिजानभ्यनुज्ञाप्यचामरान् ।
स्वमाश्रमं समापेदे तपस्यासक्तमानसः ॥८६
मृगव्याधप्रतिकृतिं कृत्वा शम्भोर्महामतिः ।
भक्त्या संपूजयामास स तस्मिन्नाश्रमे वशी ॥८७
गन्धैः पुष्पैस्तथा हृद्यैर्नैवेद्यैरभिवन्दनैः ।
स्तोत्रैश्च विधिवद्भक्त्या परां प्रीतिमुपानयत् ॥८८

इसके अनन्तर भगवान् विष्णु के तेज के अंश से समुत्पन्न वह राम

प्रणाममकरोद्भक्त्या गत्वा भुवि महामंदः ।।३
उत्थायोत्थाय देवेशं प्रणम्य शिरसासकृत् ।
कृतांजलिपुटो रामस्तुष्टाव च जगत्पतिम् ।।४
राम उवाच—नमस्ते देवदेवेश नमस्ते परमेश्वर ।
नमस्ते जगतो नाथ नमस्ते त्रिपुरान्तक ।।५
नमस्ते सकलाध्यक्ष नमस्ते भक्तवत्सल ।
नमस्ते सर्वभूतेश नमस्ते वृषभध्वज ।।६
नमस्ते सकलाधीश नमस्ते करुणाकर ।
नमस्ते सकलावास नमस्ते नीललोहित ।।७

श्री वसिष्ठजी ने कहा—इसके अनन्तर उसकी भक्ति भाव से प्रसन्न आत्मा वाले जगत् के स्वामी समस्त भूतगणों के सहित उसके [illegible] [illegible] रूप में हो गये थे ।१। तीन नेत्रों के धारण करने वाले चन्द्रशेखर और वृषभेन्द्र के वाहन वाले और करोड़ों भूतगणों से समन्वित देवों के भी देवेश्वर भगवान् शम्भु का राम ने दर्शन किया था ।२। शम्भु का दर्शन प्राप्त होते ही अत्यन्त हर्ष से समाकुलित लोचनों वाले राम ने सम्भ्रम के साथ उठकर (उस धार्यन से) भूमि [illegible] भक्तिभाव से भगवान् शर्व के लिए [illegible] किया था ।३। बारम्बार उठ उठकर शिर के बल से अनेक बार प्रणाम करके उन जगत् के स्वामी देवेश्वर को हाथ जोड़कर उनकी स्तुति की थी ।४। राम ने कहा—हे परमेश्वर ! [illegible] तो देवों के भी देव हैं । आपकी सेवा में मेरा बार-बार प्रणिपात है । आप तो जगत् के नाथ हैं । [illegible] त्रिपुरासुर के हनन करने वाले ! आपके लिए मेरा [illegible] प्रणाम है ।५। हे भक्तों पर प्यार करने वाले ! [illegible] तो इस सम्पूर्ण विश्व के [illegible] हैं । आपकी सेवा में मेरा अनेक बार प्रणाम स्वीकृत होवे । हे सब भूतों के स्वामिन् ! हे वृषभध्वज ! आपके लिए मेरा प्रणाम है ।६। हे करुणानिधि ! [illegible] तो [illegible] अधीश हैं । हे नील लोहित ! आप सबमें निवास करने वाले हैं । आपकी चरण-सेवा में मेरा बारम्बार प्रणिपात स्वीकार होवे ।७।

नमः सकलदेवारिगणनाशाय शूलिने ।
कपालिने नमस्तुभ्यं सर्वलोकैकपालिने ।।८

श्मशानवासिने नित्यं नमः कैलासवासिने ।
नमोऽस्तु पाशिने तुभ्यं कालकूटविषाशिने ॥९

विभवेऽमरवंद्याय प्रभवे ते स्वयंभुवे ।
नमोऽखिलजगत्कर्मसाक्षिभूताय शंभवे ॥१०

नमस्त्रिपथगाफेनभासिताद्धेन्दुमौलिने ।
महाभोगींद्रहाराय शिवाय परमात्मने ॥११

भस्मसंच्छन्नदेहाय नमोऽर्काग्नीदुचक्षुषे ।
कपर्दिने नमस्तुभ्यमंधकासुरमर्दिने ॥१२

त्रिपुरध्वंसिने दक्षयज्ञविध्वंसिते नमः ।
गिरिजाकुचकाश्मीररंजितमहोरसे ॥१३

महादेवाय महते नमस्ते कृत्तिवाससे ।
योगिध्येयस्वरूपाय शिवायाचिंत्यतेजसे ॥१४

हे शम्भो ! आप [illegible] लोकों [illegible] एक ही पालन करने वाले हैं। ऐसे कपाल के धारण करने वाले और समस्त देवों के शत्रुओं के विनाश के लिए शूल के धारी आपके लिए मेरा प्रणिपात स्वीकृत होवे ।८। श्मशान भूमि में निवास करने वाले तथा कैलास पर रहने वाले आपके लिये नित्य ही मेरा प्रणाम [illegible]। पाश के धारी तथा महान् कालकूट विष के अशन करने वाले आपके लिए मेरा प्रणाम है ।९। विभव में देवों के द्वारा वन्दना करने [illegible] योग्य और प्रभव [illegible] स्वयम्भु [illegible] सम्पूर्ण जगत् [illegible] कर्मों [illegible] साक्षी स्वरूप शम्भु के लिए मेरा नमस्कार है ।१०। त्रिपथगा के फेनों के [illegible] वाले अर्द्धचन्द्र को मस्तक पर धारण किये [illegible] तथा महान् सर्पों के हार से भूषित परमात्मा भगवान् शिव के लिए मेरा प्रणाम स्वीकृत होवे ।११। [illegible] भस्म से संछन्न देह वाले—सूर्य और [illegible] वह्नि के धारण करने वाले चक्षुओं से समन्वित-कपर्दी और अन्धकासुर के मर्दन करने वाले आपके लिए मेरा बार-बार [illegible] स्वीकृत होवे ।१२। त्रिपुरासुर के विध्वंस करने वाले तथा प्रजापति दक्ष के महान् यज्ञ ध्वंस करने वाले और गिरिराज की पुत्री गौरी [illegible] स्तनों पर लगी हुई केसर के आलेप में विशेष रञ्जित महान् उरःस्थल वाले प्रभु के लिए मेरा नमस्कार है ।१३। कृत्ति चर्म के धारी—योगि जनों के द्वारा ध्यान करने के योग्य [illegible] वाले—न चिन्तन करने के योग्य तेज [illegible] समन्वित महान् महादेव के लिए मेरा नमस्कार है ।१४।

स्वभक्तहृदयांभोजकर्णिकामध्यवर्त्तिने ।
सकलागमसिद्धांतसाररूपाय ते नमः ॥१५
नमो निखिलयोगेंद्रबोधनायामृतात्मने ।
शंकरायाखिलव्याप्तमहिम्ने परमात्मने ॥१६
नमः शर्वाय शांताय ब्रह्मणे विश्वरूपिणे ।
आदिमध्यांतहीनाय नित्यायाव्यक्तमूर्त्तये ॥१७
व्यक्ताव्यक्तस्वरूपाय स्थूलसूक्ष्मात्मने नमः ।
नमो वेदांतवेद्याय विश्वविज्ञानरूपिणे ॥१८
नमः सुरासुरश्रेणिमौलिपुष्पार्चितांघ्रये ।
श्रीकंठाय जगद्धात्रे लोककर्त्रे नमोनमः ॥१९
रजोगुणात्मने तुभ्यं विश्वसृष्टिविधायिने ।
हिरण्यगर्भरूपाय हराय जगदादये ॥२०
नमो विश्वात्मने लोकस्थितिव्यापारकारिणे ।
सत्त्वविज्ञानरूपाय पराय प्रत्यगात्मने ॥२१

अपने भक्तजनों के [illegible] कमलों की कर्णिकाओं [illegible] मध्य में विराज- [illegible] रहने वाले और [illegible] आगमों के सिद्धान्त स्वरूप वाले भगवान् शङ्कर के लिए प्रणिपात है ।१५। समस्त योगीन्द्रों को बोध देने वाले—अमृतात्मा-सबसे व्याप्त महिमा वाले परमात्मा [illegible] शङ्कर के लिए [illegible] ।१६। परम शान्त स्वरूप-विश्व के [illegible] वाले ब्रह्म-आदि [illegible] और अन्त [illegible] रहित-नित्य और अव्यक्त मूर्ति [illegible] समन्वित भगवान् शिव [illegible] लिए मेरा अभिवादन है ।१७। व्यक्त (प्रकट) और [illegible] (अप्रकट) स्वरूप वाले तथा स्थूल और परम सूक्ष्म रूप वाले शम्भु [illegible] लिये मेरा प्रणाम है । वेदान्त शास्त्र के द्वारा ज्ञान प्राप्त करने के योग्य और विश्व [illegible] विज्ञान रूप के धारी शिव के लिए नमस्कार [illegible] ।१८। समस्त सुरगण और असुरों के मस्तकों [illegible] संलग्न पुष्पों से मस्तकों को चरण कमलों में झुकाने पर समर्चित पदों वाले-जगत् के धाता और सब लोकों की रचना करने वाले भगवान् श्रीकण्ठ के लिए बारम्बार नमस्कार निवेदित है ।१९। इस सम्पूर्ण विश्व की सृष्टि की रचना करने वाले रजोगुण के स्वरूप से संयुत-इस जगत् के आदि स्वरूप-

करने वाले आपके जब तक चरण कमलों की प्राप्ति नहीं करता है अर्थात् आपके चरणों का समाश्रय नहीं ग्रहण करता है तब तक चाहे कोई पण्डित हो अथवा अज्ञानी हो वह संसार में भ्रमण किया करता है।२७। इस भूमण्डल में वह ही परम दक्ष है—कृती है—मुनि है और वही महान् पण्डित है जिसने आपके चरण कमलों में अपनी बुद्धि को स्थिर करके लगा दिया है।२८।

सुसूक्ष्मत्वेन गहनः सद्भावस्ते त्रयीमयः ।
विदुषामपि मूढेन स मया ज्ञायते कथम् ॥२९
अशब्दगोचरत्वेन महिम्नस्तव सांप्रतम् ।
स्तोतुमप्यक्षमं सम्यक्त्वामहं जडधीर्यतः ॥३०
तस्मादज्ञानतो वापि मया भक्त्यैव संस्तुतः ।
प्रीतश्च भव देवेश ननु त्वं भक्तवत्सलः ॥३१
वसिष्ठ उवाच—इति स्तुतस्तदा तेन भक्त्या रामेण शंकरः ।
मेघगंभीरया वाचा तमुवाच हसन्निव ॥३२
भगवानुवाच—रामाहं सुप्रसन्नोऽस्मि वीर्यशालितया तव ।
तपसा मयि भक्त्या च स्तोत्रेण च विशेषतः ॥३३
वरं वरय तस्मात्त्वं यद्यदिच्छसि चेतसा ।
तुभ्यं तदशेषेण दास्याम्यहमशेषतः ॥३४
वसिष्ठ उवाच—इत्युक्तो देवदेवेन तं प्रणम्य भृगूद्वहः ।
कृताञ्जलिपुटो भूत्वा रामस्त्विदमुवाच ह ॥३५

आपका त्रयीमय सद्भाव परम सूक्ष्म होने से अत्यन्त गहन है और बड़े-बड़े विद्वानों के लिए भी अतीव गहन होता है तो आपका सद्भाव महामूढ़ मेरे द्वारा कैसे जाना जा सकता है।२९। इस समय में आपकी महिमा शब्दों के द्वारा गोचर न होने के कारण जड़ बुद्धि वाला मैं आपकी भली भाँति से स्तुति करने में भी असमर्थ हूँ।३०। इससे अज्ञान से या केवल भक्ति के भाव से ही आपकी संस्तुति की है। हे देवेश्वर! आप मुझ पर प्रीतिमान् हो जाइए क्योंकि आप तो अपने भक्तों पर प्यार करने वाले हैं।३१। श्री वसिष्ठ जी ने कहा—इस प्रकार से राम के द्वारा भक्ति की भावना से उस

समय में स्तुति की गयी थी । तब भगवान् शङ्कर हँसते हुए मेघ के समान परम गम्भीर वाणी से उनसे बोले थे ।३२। भगवान् ने कहा—हे राम ! आपकी शौर्यशालिता से मैं आप पर बहुत ही प्रसन्न हो गया हूँ । आपकी तपश्चर्या से—मेरे अन्दर अनन्य भक्ति के भाव से और विशेष रूप से आपके द्वारा किये गये स्तोत्र से मैं बहुत ही प्रसन्न हुआ हूँ ।३३। किसी वरदान का वरण करो जो-जो भी आप अपने चित्त से चाहते हो । वही मैं आपकी पूर्ण रूप से सभी कुछ दूँगा ।३४। वसिष्ठ जी ने कहा— देवों के देवेश्वर ने उस राम से इस रीति से कहा था तो उस भृगुकुल के उद्वहन करने वाले ने उनके चरणों में प्रणाम किया था और हे राघव ! उसने दोनों करों को जोड़कर प्रभु से यह कहा था ।३५।

यदि देव प्रसन्नस्त्वं वरार्होऽस्मि च यद्यहम् ।
भवतस्तदभीप्सामि हेतुमस्त्राण्यशेषतः ॥३६
अस्त्रे शस्त्रे च शास्त्रे च न मत्तोऽभ्यधिको भवेत् ।
लोकेषु मां रणे जेता न भवेत्त्वत्प्रसादतः ॥३७
वसिष्ठ उवाच—तथेत्युक्त्वा ततः शंभुरस्त्रशस्त्राण्यशेषतः ।
ददौ रामाय सुप्रीतः समंत्राणि क्रमाद्विभुः ॥३८
सप्रयोगं ससंहारमस्त्रग्रामं चतुर्विधम् ।
प्रसादाभिमुखो रामं ग्राहयामास शंकरः ॥३९
असंगवेगं शुभ्राश्वं सुध्वजं च रथोत्तमम् ।
इषुधी चाक्षयशरी ददौ रामाय शंकरः ॥४०
अभेद्यमजरं दिव्यं दृढज्यं विजयं धनुः ।
सर्वशस्त्रसहं चित्रं कवचं च महाघनम् ॥४१
अजेयत्वं च युद्धेषु शौर्यं चाप्रतिमं भुवि ।
स्वेच्छया धारणे शक्तिं प्राणानां च नराधिप ॥४२

हे देवेश्वर ! यदि आप मेरे ऊपर परम प्रसन्न हैं और यदि मैं आपके द्वारा वरदान देने के योग्य हूँ तो मैं आपसे उस हेतु को और सम्पूर्ण अस्त्रों को चाहता हूँ ।३६। मैं यही चाहता हूँ कि अस्त्र विद्या में—शस्त्रों के ज्ञान में और शास्त्रों की जानकारी में कोई भी मुझसे अधिक ज्ञाता न होवे मैं यह भी चाहता हूँ कि आपके प्रसाद से लोकों में युद्ध में कोई भी जीतने

वाला न होवे ।३७। वसिष्ठ जी ने कहा—भगवान् शंकर ने कहा [illegible] कि जो भी तुमने चाहा है, सभी तुम्हारी इच्छा पूरी हो जायगी । इसके उपरान्त उन्होंने पूर्ण अस्त्र और [illegible] भी हे नृप ! मन्त्रों के सहित [illegible] [illegible] परम [illegible] होते [illegible] राम के लिये प्रदान कर दिये थे ।३८। भगवान् शंकर ने प्रयोग करने [illegible] और संहार करने के [illegible] चार [illegible] के अस्त्रों [illegible] समुदाय को प्रसाद से परिपूर्ण होकर राम को ग्रहण करा दिया था ।३९। भगवान् शंकर ने असङ्ग वेग [illegible] समन्वित—शुभ्र रङ्ग वाले अश्वों से युक्त और सुन्दर ध्वजा वाले उत्तम रथ-धनुष और [illegible] चार राम के लिए दिये थे ।४०। एक ऐसा धनुष भी दिया था जो भेदन करने [illegible] अशोध्य—जीर्ण [illegible] होने वाला-परम सुदृढ़ ज्या (प्रत्यञ्चा) वाला और विजय करने वाला था । तथा सभी प्रकार के शस्त्रों के [illegible] को सहन करने वाला-परम अद्भुत महाधन सम्पन्न एक कवच भी प्रदान किया था ।४१। [illegible] नराधिप ! इसके अतिरिक्त भगवान् शंकर ने उस अपने परम [illegible] राम [illegible] लिए युद्धों में अजेय होना-भूलोक में अनुपम शूर वीरता और अपनी ही इच्छा से प्राणों के धारण करने में शक्ति भी [illegible] की थी ।४२।

ख्यातिं [illegible] वीजमन्त्रेण तन्नाम्ना सर्वलौकिकीम् ।
तपःप्रभावं च महत्प्रददौ भार्गवाय सः ॥४३

शक्तिं चात्मनि रामाय दत्वा राजन्यपोषिताम् ।
सहितः सकलैर्भूतैरमरैश्च सुरेश्वरः ॥४४

तेनैव वपुषा शंभुः क्षिप्रमंतरधादरः ।
कृतकृत्यस्ततो रामो लब्ध्वा सर्वमभीप्सितम् ॥४५

अदृश्यतां गते शर्वे महोदरमुवाच ह ।
महोदर मदर्थे त्वमिदं सर्वमशेषतः ॥४६

रथचापादिकं तावत्परिरक्षितुमर्हसि ।
यदा कृत्यं ममैतेन तदानीं त्वं मया स्मृतः ।
रथचापादिकं सर्वं प्रहिणु त्वं मदंतिकम् ॥४७

वसिष्ठ उवाच—तथेत्युक्त्वा गते तस्मिन्भृगुवर्यो महोदरे ।
कृतकृत्यो गुरुजनं द्रष्टुं मंतुमियेष सः ॥४८

गच्छामि मोचितः शापात्त्वयाऽहमधुना दिवम् ॥५८

इत्युक्त्वा [illegible] गते तस्मिन्रामो वेगेन विस्मितः ।
पतितं द्विजपुत्रं तं कृपया [illegible] ॥५९

माभैरेवं वदन्वाचमोपारादेव द्विजात्मजम् ।
परामृशस्तदंगानि शनैरुज्जीवयन्नृप ॥६०

रामेणोत्थापितश्चैवं स तदोन्मील्य लोचने ।
विलोकयन्ददर्शाग्रे भृगुश्रेष्ठमवस्थितम् ॥६१

भस्मीकृतं च शार्दूलं दृष्ट्वा विस्मयमागतः ।
गतभीराह कस्त्वं भोः कथं चेह समागतः ॥६२

केन चायं निहंतुं मामुद्यतो भस्मसात्कृतः ।
तरक्षुर्भीषणाकारः साक्षान्मृत्युरिवापरः ॥६३

यह व्याघ्र भी महा पापी अग्नि से दग्ध शरीर वाला आकाश में एक गन्धर्व [illegible] शरीर धारण करके बड़े ही आदर के साथ राम से बोला था ।५७। हे राम ! एक विप्र के शाप से पूर्व में हम तरक्षु के स्वरूप को प्राप्त करने वाला हुआ था । इस समय में आपके द्वारा उस शाप से छुड़ाया गया मैं अब स्वर्गलोक में गमन कर रहा [illegible] ।५८। इतना ही कहकर बड़े वेग से उसके चले जाने पर राम को बड़ा विस्मय हुआ था और फिर दया के वशीभूत होकर वह उस भूमि पर पड़े हुए द्विज पुत्र के पास पहुँचा था ।५९। हे नृप ! समीप में ही [illegible] द्विज के पुत्र [illegible] 'डरो मत'—यह वाणी बोलते हुए धीरे-धीरे उसको उज्जीवित करते हुए उस बालक के अङ्गों को सहलाया ।६०। इस प्रकार से राम के द्वारा उठाये [illegible] उसने [illegible] समय में अपने नेत्रों को खोला था । इधर-उधर अवलोकन करते हुए उसने अपने सामने अवस्थित भृगुकुल में परम श्रेष्ठ राम को देखा था ।६१। और अपने समीप में ही भस्मीभूत शार्दूल को देखकर [illegible] [illegible] को बड़ा भारी विस्मय हुआ [illegible] । [illegible] उसका भय बिल्कुल समाप्त हो गया था तो उसने राम से कहा था—आप कौन हैं अथवा यहाँ पर आप कैसे समागत हुए हैं ? ।६२। और मुझको मारने के लिए उद्यत यह शार्दूल किसके [illegible] निर्दग्ध करके भस्मीभूत कर दिया गया है ? यह तरक्षु तो महा भीषण आकार वाला साक्षात् दूसरे [illegible] [illegible] ही सदृश था ।६३।

[illegible] कर उद्देश करके एक कोश भर ही गया था। वहाँ पर [illegible] के वशीभूत होकर मैं भय से उत्पीड़ित होकर भाग लिया था।६९। मैं फिर भूमि पर गिर गया था। आपने कृपा करके इस समय [illegible] फिर मुझे भूमि से उठाया था। दयालु आपने पिता की ही भाँति मेरे पर कृपा की थी जैसे पिता अपने पुत्र पर अत्यधिक प्रेम किया करता है। मेरा यही इतना वृत्तान्त है जो कि मेरे द्वारा पूर्ण रूप [illegible] आपके समक्ष [illegible] कह दिया गया [illegible]।७०।

वसिष्ठ उवाच—इति पृष्टस्तदा तेन स्ववृत्तांतमशेषतः ।
कथयामास राजेंद्र रामस्तस्मै यथाक्रमम् ॥७१
ततस्तौ प्रीतिसंयुक्तौ कथयंतौ परस्परम् ।
स्थित्वा नाति चिरं [illegible] गंतुमियेष सः ॥७२
अन्वीयमानस्तेनाथ रामस्तस्माद्गुहामुखात् ।
निष्क्रम्यावसथं पित्रोः स प्रतस्थे मुदान्वितः ॥७३
अकृतव्रण एवासौ व्याघ्रेण भुवि पातितः ।
रामेण रक्षितश्चाभूत्तस्माद्गात्रं विभिन्नता ॥७४
तस्मात्तदेव नामास्य बभूव प्रथितं भुवि ।
विप्रपुत्रस्य राजेंद्र तदेतत्सोऽकृतव्रणः ॥७५
[illegible] प्रभृति रामस्य च्छायेवातपगा भुवि ।
बभूव मित्रमत्यर्थं सर्वावस्थासु पार्थिव ॥७६
स तेनानुगतो राजन्भृगोराश्रम सन्निधिम् ।
दृष्ट्वा ख्याति च सोऽभ्येत्य विनयेनाभ्यवादयत् ॥७७

श्री वसिष्ठजी ने कहा—हे राजेन्द्र ! [illegible] समय में इस प्रकार से उस विप्रसुत के द्वारा पूछे गये रामने कहकर सुना दिया [illegible]।७१। इसके अनन्तर वे दोनों परस्पर में प्रीति [illegible] समन्वित होकर वार्तालाप करते रहे [illegible]। अत्यधिक कालतक नहीं न ठहरकर उसने गमन करने की इच्छा की थी।७२। राम भी उसके पश्चात् उसी [illegible] पीछे गमन करने [illegible] हो गया था और उस गुफा के मुख से निकलकर बड़े आनन्द के साथ अपने माता-पिता [illegible] निवास [illegible] की ओर उसने भी प्रस्थान कर दिया [illegible]।७३। व्याघ्र के द्वारा भूमि में गिरा भी दिया गया था तो भी उसके देह में कोई भी कहीं

पर नहीं हुआ था। उस विनिहनन करने वाले व्याघ्र से वह राम सुरक्षित हुआ था ।७४। हे राजेन्द्र ! इसी कारण इसका भूमण्डल प्रथित हो गया था फिर विप्र के पुत्र अकृत ही नाम पड़ गया ।७५। हे पार्थिव ! तभी लेकर के पीछे करने वाली छाया के ही समान वह भूमि सभी प्रकार की अवस्थाओं में उसका अत्यधिक प्रिय मित्र हो गया ।७६। हे राजन् भृगु सन्निधि को प्राप्त करके वह उसी के अनुगत हो था और ख्याति को देखकर सामने उपस्थित हुआ था तथा विनय के उसने अभिवादन किया ।७७।

स ताभ्यां प्रियमाणाभ्यामाशीभिरभिनंदितः ।
दिनानि कतिचित्तत्र न्यवसत्तत्प्रियेप्सया ॥७८
ततस्तयोरनुमते च्यवनस्य महामुनेः ।
आश्रमं प्रतिचक्राम शिष्यसंघैः समावृतम् ॥७९
नियंतितांतःकरणं तं च संशांतमानसम् ।
सुकन्या चापि तद्भार्यामवंदत महामनाः ॥८०
ताभ्यां च प्रीतियुक्ताभ्यां रामः समभिनंदितः ।
और्वाश्रमं समापेदे ब्रह् कामस्तपोनिधिम् ॥८१
तं चाभिवाद्य मेधावी तेन प्रतिनंदितः ।
उवास तत्र तत्प्रीत्या दिनानि कतिचिन्नृप ॥८२
विसृष्टस्तेन शनकैर्ऋचीकभवनं पुनः ।
प्रतस्थे भार्गवः श्रीमानकृतव्रणसंयुतः ॥८३
अवंदत पितुः पित्रोर्नत्वा पादौ पृथक् पृथक् ।
तौ च तं नृपसंहृष्टाच्चाशिषा प्रत्यनन्दताम् ॥८४

परमप्रीति से समन्वित उन दोनों के द्वारा वह आशीर्वचनों से अभिनन्दित किया गया था। उसके प्रिय करने की अभिलाषा से उसने वहाँ पर कुछ दिन तक निवास किया था ।७८। इसके दोनों की अनुमति शिष्यों के समुदायों से समावृत महामुनि च्यवन की ओर वह चला गया था ।७९। उस महान मन वाले ने अपने अन्तः-करण को नियन्त्रण में रहने वाले और मन वाले उस महा मुनि की तथा सुकन्या

स्वाध्यायदक्षैर्बहुभिरजिनांबरधारिभिः ॥१७
सम्यक् प्रयोज्यमानेषु मंत्रेषूच्चावचेषु च ।
प्रैषेषूच्चार्यमाणेषु हूयमानेषु वह्निषु ॥१८
यथावन्मंत्रतंत्रोक्तक्रियासु विततासु च ।
ज्वलदग्निशिखाकारे तमस्तपनतेजसि ॥१९
प्रतिहृत्य दिशः सर्वा विजृम्भाने च मेदिनीम् ।
सवितर्युदयं याति नंष्टे तमसि नश्यति ॥२०
तारकासु विलीनासु काष्ठासु विमलासु च ।
कृतमंत्राह्निको राजा मृगया हैहयेश्वरः ॥२१

उस प्रातःकालीन वेला सभी ओर कमल खिले उठे और विकसित पंकजों के ऊपर भ्रमरों के वृन्द गुञ्जार रहे थे । सभी ओर से अपने-अपने घोंसलों से पक्षीगण नीचे उतर कर भ्रमण कर रहे थे ।१५। उस समय मन्द वायु वहन कर रही थी और सुमधुर वेला में जो भी विशेष व्यग्र नहीं ऐसे मदोन्मत्त हाथी-अश्व और रथों द्वारा गमन करने वालों के शरीर को आह्लाद का विषय भंग हो रहा था ।१६। बहुत कर्मनिष्ठ पुष्प और तीर्थजल का आहरण करके अपने-अपने आश्रमों की ओर गमन कर रहे थे । वेदों के करने में परम बहुत से मृगचर्मों के धारण करने वालों के द्वारा भली-भाँति मन्त्रों प्रयोग किये जा रहे तथा प्रैषों का उच्चारण किया जा रहा था । अग्नि में आहुतियाँ दी जा रही थीं ।१७-१८। रीति के अनुसार मन्त्र और तन्त्र- वर्णित क्रियाओं विस्तार हो रहा था । जलती हुई अग्नि की शिखा के आकार वाले तपन के तेज में दिशाओं में को प्रतिहृत करके वसुन्धरा पर वह फैला हुआ था । सूर्यदेव के उदित हो जाने पर में रात्रि के समय अन्धकार विनष्ट हो रहा था ।१९-२०। जिस में तारागण विलीन हो गये थे और सभी दिशाएँ एकदम स्वच्छ दिखलाई रही थीं । उस समय में हैहयेश्वर राजा प्रातःकालीन कृत्य पूर्ण करके शिकार करने के लिए चल दिया था ।२१।

निर्ययौ नगरात्तस्मात्पुरोहितसमन्वितः ।
बलैः सर्वैः समुदितैः सवाजिरथकुंजरैः ॥२२

सचिवैः सहितः श्रीमान् समयोभिश्च राजभिः ।
महता बलभारेण नमयन्वसुधातलम् ॥२३
नादयन्रथघोषेण ककुभः सर्वतो नृपः ।
स्वबलौघपदाघातप्रक्षुण्णावनिरेणुभिः ॥२४
ययौ संच्छादयन्व्योम विमानगणसंकुलम् ।
संप्रविश्य वनं घोरं विध्याद्रेर्बलसंचयैः ॥२५
कृत्स्नं विलोलयामास समंताद्राजसत्तमः ।
परिवार्य वनं तत्तु स राजा निजसैनिकैः ॥२६
मृगान्नानाविधान्हिंस्रान्निजघान शितैः शरैः ।
आकर्णकृष्टकोदंडयोधमुक्तैः शितेषुभिः ॥२७
निकृत्तगात्राः शार्दूला न्यपतन्भुवि केचन ।
उदग्रवेगपादातखड्गखंडितविग्रहाः ॥२८

रथ-हाथी और अश्वों से समन्वित सैनिकों से युक्त होकर अपने पुरोहित के साथ वह राजा हैहयेश्वर अपने नगर से शिकार करने के लिए निकल दिया था ।२२। अपने सभी सचिवों के और यथोचित अन्य कितने ही राजाओं को साथ में लेकर श्रीमान् वह बड़ी भारी सेना वीरों के भार से समस्त वसुधा को नीचे की ओर झुकाते हुए वह रहा था ।२३। वह राजा अपनी सेना रथों के चलने की ध्वनि से सभी दिशाओं को गुञ्जित कर रहा था और अपनी सेना के समुदायों के सहित प्रवेश करके सैकड़ों विमानों (वायुयानों) आकाश को संछादित करता हुआ वह राजा था । उस राजेश्वर ने अपने सैनिकों के द्वारा उस सम्पूर्ण देखकर परमश्रेष्ठ नृप ने उस स्थल को अत्यन्त विलोलित कर दिया था ।२५-२६। उस नृप ने अपने कानों तक समाकृष्ट धनुषों की प्रत्यञ्चा वाले योद्धाओं के द्वारा छोड़े हुए तीक्ष्ण बाणों से वहाँ पर अनेक प्रकार के हिंसक पशुओं का हनन किया था ।२७। अतीव उदग्र वेग से युक्त पदातियों के खड्गों से खण्डित शरीर वाले जिनके शरीर के भाग कट गये हैं ऐसे कुछ शार्दूल वहाँ पर भूमि में गिर गये थे ।२८।

वराहयूथपाः केचिद्रुधिरार्द्रा धरामगुः ।
प्रचंडशाक्तिकोन्मुक्तशक्तिनिर्भिन्नमस्तकाः ॥२९

सैनिकों सहित राजा ने तरुवरों के समूह से मण्डित उस सरिता के तट पर विश्राम किया था। फिर उन विन्ध्याचल के गहन वन से अपने नगर में जाने के लिये राजा निकल दिया था। वहाँ से गमन करते हुए ही उसने नर्मदा के तट पर समाश्रित एक आश्रम का दर्शन किया था।४१-४२।

आश्रमं पुण्यशीलस्य जमदग्नेर्महात्मनः।
ततो निवृत्य सैन्यानि दूरेऽवस्थाप्य पार्थिवः ॥४३
परिचारैः कतिपयैः सहितोऽयात्तदाश्रमम्।
गत्वा तदाश्रमं रम्यं पुरोहितसमन्वितः ॥४४
उपेत्य मुनिशार्दूलं ननाम शिरसा नृपः।
अभिनंद्याशिषा तं वै जमदग्निर्नृपोत्तमम् ॥४५
पूजयामास विधिवदर्घ्यपाद्यासनादिभिः।
संभावयित्वा तां पूजां विहितां मुनिना तदा ॥४६
निषसादासने शुभ्रे पुरस्तस्य महामुनेः।
समासीनं नृपवरं कुशासममतो मुनिः ॥४७
पप्रच्छ कुशलप्रश्नं पुत्रमित्रादिवंधुषु।
सह संकथयंस्तेन राजा मुनिवरोत्तमः ॥४८
स्थित्वा नातिचिरं कालमामिन्त्र्यार्थं न्यमंत्रयत्।
ततः स राजा सुप्रीतो जमदग्निमभाषत ॥४९

वह एक महान् आत्मा वाले और पुण्यशील जमदग्नि मुनि का आश्रम था। राजा ने वहाँ से लौटकर कुछ दूरी पर अपनी सेनाओं को अब स्थापित कर दिया था।४३। अपने साथ में कतिपय परिचारकों को लेकर ही वह उस आश्रम में गया। पुरोहित के सहित ही राजा ने उस परम रम्य आश्रम में गमन किया था।४४। राजा ने वहाँ पर पहुँच कर उन मुनिशार्दूल के चरणों में शिर झुकाकर प्रणाम किया था। जमदग्नि ने उस श्रेष्ठ राजा का आशीर्वचनों के द्वारा अभिनन्दन किया था।४५। मुनि ने अर्घ्य-पाद्य और आसन आदि के द्वारा उस राजा का अर्चन किया था। उस समय में मुनि के द्वारा की हुई पूजा को स्वीकार किया था।४६। फिर राजा उन महामुनि के सामने परम शुभ्र आसन पर विराजमान हो गया था। जब राजा अपने

आसन पर उपविष्ट हो गये तो वे मुनिवर जमदग्नि एक कुशा के आसन पर संस्थित हो गये थे ।४७ महामुनि ने उस राजा के साथ संलाप करते हुए पुत्र-मित्र और बन्धु आदि के विषय में प्रेम से क्षेम-कुशल पूछा था ।४८। थोड़े ही समय तक स्थित होकर महामुनि ने अपना अतिथि-सत्कार करने के लिए राजा को निमन्त्रित किया था । इसके अनन्तर राजा परम प्रीतिमान् होकर जमदग्नि मुनि से बोला था ।४९।

महर्षे देहि मेऽनुज्ञां गमिष्यामि स्वकं पुरम् ।
समग्रवाहनबलो ह्यहं तस्मान्महामुने ।।५०
कर्तुं न शक्यमातिथ्यं त्वया वन्याशिना वने ।
अथवा त्वं तपः शक्त्या कर्तुमातिथ्यमद्य मे ।।५१
शक्तोऽप्यपि पुरीं गंतुं मामनुज्ञातुमर्हसि ।
अन्यथा मेऽस्वलैः सैन्यैरत्यर्थं मुनिसत्तम ।।५२
तपस्विनां भवेत्पीडा नियमक्षयकारिका ।
वसिष्ठ उवाच—
इत्येवमुक्तः स मुनिस्तं प्राह स्वीयतां क्षणम् ।।५३
सर्वं संपादयिष्येऽहमातिथ्यं सानुगस्य ते ।
इत्युक्त्वाहूय तां दोग्ध्रीमुवाचायं समातिथिः ।।५४
उपागतस्त्वया तस्मात्क्रियतामस्य सत्कृतिः ।
इत्युक्ता मुनिना दोग्ध्री सातिथेयमशेषतः ।
दुदोह नृपतेराशु यथोक्तं मुनिनादरात् ।।५५
अथाश्रमं तत्सुरराजसद्मनिकाशमासीद्भृगुपुंगवस्य ।
विभूतिभेदैरविचिन्त्यरूपमनन्यसाध्यं सुरभिप्रभावात् ।।५६

हैहयेश्वर राजा ने महामुनि से प्रार्थना की थी कि हे महर्षे ! आप मुझे अपनी आज्ञा दीजिए । मैं अब अपने पुर को गमन करूँगा । हे महामुने ! कारण यह है कि मेरे साथ समस्त सेनाएँ वाहन भी हैं ।५०। इस वन में वन्य फल मूलों का अशन करने वाले आपके द्वारा आतिथ्य नहीं किया जा सकता है । अथवा यह भी हो सकता है कि आप अपनी तपश्चर्या की

स भक्ष्यभोज्यादिभिरन्नपानैरुपेतपाकोपगतैकदेशैः ॥६१

गृहैरमर्त्योचितसर्वसंपत्समन्वितैर्नयनमनोऽभिरामैः ।

तस्याश्रमं सन्नगरोपमानं बभौ वस्तुभिश्च मनोहराभिः ॥६२

अब सुरभि की महिमा के की कैसी विशाल शोभा हुई उसकी छटा का वर्णन किया है—उस आश्रम के अन्दर का नाना भाँति के रत्नों की देदीप्यमान द्युति से विचित्र हो गया और सुवर्ण से चारुचित्र से संयुत माला से घिरा हुआ था तथा पूर्ण चन्द्र के परम शुभ्र और अत्युच्च अन्तरिक्ष को छूने वाली शिखरों से समन्वित प्रासादों से चारों ओर परिपूर्ण वह हो गया था ।५७। कांस्य-आरकूट-ताम्र-हेम-सुवर्ण सौशोपल-दारु और मृत्तिका से पृथक्-पृथक् और मिश्रित भैनों तथा मन को परम अभिराम प्रतीत होने वाले अनेक भवनों से वह आश्रम समुद्भासित हो गया था ।५८। उस महामुनि का वह आश्रम उस समय में महा मूल्यवान रत्नों से समुज्ज्वल था और हेम की वेदिका-निष्कूट-सोपान-कुटी और विटंकों से समन्वित था । तुला-कपाट-अर्गला-कुड्य (भीत)-देहली-निकामशाला-अजिर (आंगन) की शोभा से बहुत ही वह आश्रम संयुत था ।५९। वलभी-अलिन्द-मञ्जुल और रम्य तोरणों से युक्त था चतुष्किका आदि से विशोभित था । उस में स्तम्भ बने हुए थे उनमें और जो दीवालें उनमें परिशोभमान दिव्य रत्नों से विविध चित्र विद्यमान थे । इनसे आश्रम की अद्भुत शोभा हो रही थी ।६०। वह महामुनि का आश्रम छोटे व कीमती श्रेष्ठ रत्नों से युक्त था और उसमें अत्यद्भुत सुवर्ण के अनेक सिंहासन और आदि निर्मित थे । के एक देश में और भोज्य-लेह्य-चोष्य आदि उपभोगयोगी पदार्थ वर्त्तमान थे अन्न-पानों से समुपेत भी वहाँ पर विद्यमान थे ।६१। उसमें ऐसे अनेक गृह बने हुए थे जो देवों के प्रकार की नयनों और मन को परम रमणीक लगने वाली सम्पदा से समन्वित थे । वह मुनि का आश्रम सुरभि की महिमा से मनोहर वस्तुओं से सुन्दर नगर के परमशोभित हो रहा था ।६२।

—×—

॥ जमदग्नि द्वारा अतिथि ■■■ ॥

वसिष्ठ उवाच—

तस्मिन्पुरे सन्तुलितामरेंद्रपुरीप्रभावे मुनिवर्यधेनुः ।
विनिर्ममे तेषु गृहेषु पश्चात्तद्योग्यनारीनरवृन्दजातम् ॥१
विचित्रवेषाभरणप्रसूनगन्धांशुकालंकृतविग्रहाभिः ।
सद्भावभावाभिरुदारचेष्टाश्रीकांतिसौन्दर्यगुणान्विताभिः ॥२
मंदस्फुरद्दन्तमरीचिजालविद्योतिताननसरोजजितेंदुभाभिः ।
प्रत्यग्रयौवनभरालसवल्गुगीभिः स मन्मथरकटाक्ष
निरीक्षणाभिः ॥३
प्रीतिप्रसन्नहृदयाभिरतिप्रभाभिः शृङ्गारकल्पतरुपुष्पविभू-
षिताभिः ।
देवांगनातुलितसौभगसौकुमार्यरूपाभिलापमधुराकृति-
रंजिताभिः ॥४
उत्तप्तहेमकलशोपमचारुपीनवक्षोजद्वयभरानतमध्यमाभिः ।
श्रोणिभरालसमणवेवपरिश्रितासृगारक्तपादकरसारुणिता-
भिभूभिः ॥५
केयूरहारमणिकंकणहेमकंठसूत्रामलश्रवणमण्डलमंडिताभिः ।
सन्दामचुम्बितसकुम्भकेशपाशकांचीकलापपरिशिंजित-
नूपुराभिः ॥६
आमृष्टरोषपरिसांत्वननर्महासकेलीप्रियालपनसंस्मरोषणेषु ।
भावेषु पार्थिवनिजप्रियधैर्यबन्धसर्वापहारचतुरेषु
कृतांतराभिः ॥७

श्री वसिष्ठजी ने कहा—सन्तुलित महेन्द्र की नगरी के ■■■ वाले उस पुर में मुनिवर की धेनु ने उन गृहों में इसके पश्चात् उनके ही योग्य नर-नारियों ■ समुदायों की रचना भी ■■ दी थी ।१। ■■ जो नारीगणों का निर्माण उस पुर में किया था उनकी वेष-भूषा—रूप माधुर्य—सौन्दर्य

सर्वर्तु कप्रवरसौरभवायुमंदमंदप्रचारितमतिप्रसितधर्मकालम् ।
इत्थं सुरासुरमनोरमभोगसंपद्विस्मयमानविभवं नगरं
नरेंद्र ॥१९

सौभाग्यभोगभरितं मुनिहोमधेनुः सद्यो विधाय
विनिवेदयदाशु तस्मै ।
ज्ञात्वा ततो मुनिवरो हविर्होमधेन्वा संपादितं नरपते
रुचिरातिथेयम् ॥२०

आहूय कंचन तपस्विकमात्मशिष्यं प्रास्थापयत्सगुण-
गामिनमाशु राजन् ।
गत्वा विशामधिपतेस्तरसा समीपं सप्रश्रयं मुनिसुतस्तमिदं
बभाषे ॥२१

उस सुरम्य नगर में बहुत ही मूल्यवान् रत्नों [illegible] उज्ज्वल एवं समुन्नत गोपुर बने हुए [illegible] तथा क्रीडा-गृहों के समुदायों के दर्शन के [illegible] बने हुए थे। उसमें विविध ध्वजाएँ-पताकाएँ और शुभ पटों से संयुत उन्नत मण्डपिकाएँ निर्मित थीं।१४। उस नगर में जल [illegible] भरे हुए अनेक तालाब-बावड़ी और सरोवर थे जिनमें अनेक प्रकार की रमणीक ध्वनि हो रही थी तथा वहाँ पर उनका [illegible] कह्लार-कमल-कुमुद और उत्पलों की रेणु से सुवासित था और चक्रवाक-हंस-कुररी-बगुला तथा सारसों [illegible] ध्वनियाँ सुनाई दे रही थीं।१६। उस नगर [illegible] अनेक प्रकार के वृक्ष लगे हुए थे जिनके आलवाल भी बने हुए थे। उन तरुवरों [illegible] आम्र-प्रियालपन-मधूक जम्बू और प्लक्ष के वृक्ष थे। वहाँ पर पर्वतों [illegible] परम सुन्दर नाग केतकी पुन्नाग और चम्पक के वन थे जो पक्षियों के द्वारा सेवित [illegible] अर्थात् जिन पर अनेक पक्षी निवास कर रहे थे।१७। वह नगर अनेक तरह [illegible] वृक्षों [illegible] शोभित था जिनका स्वरूप अत्यन्त परमाश्चर्य जनक था। वहाँ पर सुसंरक्षित चारों ओर उपवनों की पंक्तियाँ थीं एवं वहाँ अनेक मन्दार-कुन्द-करवीर-सुन्दर यूथिका और मालती आदि के पुष्पों तथा फलों वाले [illegible] लगे हुए थे।१८। हे नरेन्द्र! उस नगर में समस्त ऋतुओं [illegible] श्रेष्ठ वसन्त [illegible] सुरभित वायु के मन्द-मन्द प्रचलन से धर्म के काल को भसित कर दिया गया था। इस प्रकार से वह नगर सुरासुरों की परम मनोरम भोगों की सम्पदा के

विस्मयमान वैभव [illegible] था ।१९। [illegible] मुनि की होम धेनु ने तुरन्त ही अमित सौभाग्य के भोग को करके शीघ्र ही उस महामुनीन्द्र की सेवा [illegible] कर दिया था । इसके अनन्तर [illegible] मुनिश्रे[illegible] ने द्विज होम धेनु के द्वारा राजा का परम रुचिर आतिथेय-सम्पादित किया हुआ [illegible] लिया था ।२०। फिर उस मुनीन्द्र ने अपने किसी गुणशाली शिष्य को बुलाकर हे राजन् ! शीघ्र ही हैहयेश्वर के समीप में भेज दिया था । उस मुनि सुत [illegible] शीघ्र वेग [illegible] विप्रों के अधिपति के समीप [illegible] गमन करके बहुत ही नम्रता से यह उससे कह [illegible] था ।२१।

आतिथ्यमस्मदुपपादितमाशु राजन्संभावनीयमिति नः कुलदेशिकाज्ञा ।
राजा ततो मुनिवरेण कृताभ्यनुज्ञः संप्रापितस्तुरवरं स्वकृते कृतं तत् ॥२२
सर्वोपभोग्यनिलयं मुनिहोमधेनुसामर्थ्यसंभृतमशेषजनैः समेतः ।
अन्तः प्रविश्य नगरर्द्धिमशेषलोकसंमोहिनीमभिसमीक्ष्य स राजवर्यः ॥२३
श्रीतिप्रसन्नवदनः सबलस्तु दानी धीरोऽपि विस्मयवाप नृपस्तदानीम् ।
गच्छन्सुरस्त्रीनयनालिवृथपानैकपात्रोचितचारुमूर्तिः ॥२४
रेमे स हैहयपतिः पुरराजमार्गे सक्तः कुबेरवसतावित्र शक्रशेषः ।
तं प्रस्थितं राजपथात्समंतात्पौरांगणाश्चन्दनवारिसिक्तैः ॥२५
प्रसूनलाजाप्रकरैरजस्रमवीवृषन्सौधगताः सुहृद्यैः ।
अभ्यागताहूणसमुत्सुकपौरकान्ता हस्तारविन्दगलिताम-लुलाजवर्षैः ॥२६
कालेयपंकसुरभीकृतनन्दनोत्थपुष्पप्रसूननिकरै-रलिवृन्दगम्यैः ।

थे । वहाँ पर वह राजा वहाँ की वनिताओं के द्वारा अकञ्चन रत्न सार मुक्ताओं से अनुपद प्रकीर्यमाण हो रहा था ।२५-२६-२७। वह अवनिपति इस प्रकार की विशद वृष्टियों से चारों ओर [illegible] रूप से भ्राजित हुआ था जैसे मन्दराचल चन्द्रमा की किरणों के समुदाय से शोभाशाली हुआ करता है । उस समय अत्यन्त उदार और लोकों में चिन्तन न करने के योग्य ब्राह्मणों की तपश्चर्या का भी अवलोकन राजा ने किया था जो कि अन्य लोकों [illegible] महादुर्लभ और स्पृहणीय शोभा से समन्वित थी ।२८।

तपस्विनामाक्षिपतिः पुरसंपदं तामुच्चैः शशंस मनसा सचिवेन राजन् ।
मेने च हैहयपतिर्मुनि दुर्लभियं श्रद्धो मनोहरतरा सहिता हि संपत् ॥२९

अस्याः शतांशतुलनामपि नोपयातुं विश्वश्रियं प्रभवतीति सुराधिपायाः ।
मध्येपुरं पुरजनोपचितां विभूतिमालोकयन्सह पुरोहितमन्त्रिसार्थैः ॥३०

गच्छन्स्वपार्श्वचरदर्शितनर्मगोष्ठो मेने मुदं पुरजनैः परिपूज्यमानः ।
राजा ततो मुनिवरोपचितां सपर्यामात्मानुरूपमिह सानुचरो समस्य ॥३१

इत्यश्रमेण नृपतिर्विनिवर्तयित्वा स्वार्थं प्रकल्पितगृहाभिमुखो जगाम ।
पौरैः समेत्य विविधार्हणपाणिभिश्च मार्गे मुदा विरचिताञ्जलिभिः समन्तात् ॥३२

संभावितोऽप्यनुपदं जयशब्दघोषैस्तूर्यरवैश्च बधिरीकृतदिग्विभागैः ।
कक्षान्तराणि नृपतिः अनेकैरतीत्य भोगि क्रमेण [illegible] ससंभ्रमकंचुकीनि ॥३३

नैवं चित्रं तव विभो शक्नोति तपसा भवान् ।
भुवं कर्तुं हि लोकानामवस्थात्रितयं क्रमात् ॥२३
सुदृष्टा ते तपः सिद्धिर्महती लोकपूजिता ।
गमिष्यामि पुरीं ब्रह्मन्ननुजानातु मां भवान् ॥२४
वसिष्ठ उवाच—
इत्युक्तस्तेन स मुनिः कार्तवीर्येण सादरम् ।
संभावयित्वा नितरां तथेति प्रत्यभाषत ॥२५
मुनिना समनुज्ञातो विनिष्क्रम्य तदाश्रमात् ।
सैन्यैः परिवृतः सर्वैः संप्रतस्थे पुरीं प्रति ॥२६
स गच्छंश्चिन्तयामास मनसा पथि पार्थिवः ।
अहोऽस्य तपसः सिद्धिर्लोकविस्मयदायिनी ॥२७
यया लब्धेदृशी धेनुः सर्वकामदुहा वरा ।
किं मे सकलराज्येन योगर्द्धया चाप्ययत्नया ॥२८

हे विभो ! इस जगती तल में आप जैसे महा पुरुषों के तपों के प्रभावों से ही निश्चित रूप से सर्वदा ब्राह्मणों के वर्चस् को नित्य ही प्राप्त किया करते हैं ।२२। हे विभो ! इसमें कुछ भी विचित्रता नहीं है । आप अपने तप के द्वारा लोकों को क्रम से तीनों अवस्थाओं की ध्रुवकर सकते हैं ।२३। हमने आपको लोकों में पूजित महान् तप की सिद्धि भली भाँति देखली है । हे ब्रह्मन् ! मैं अब अपनी नगरी में जाऊँगा अतः आप मुझे गमन करने के लिए अपना आदेश प्रदान कीजिए ।२४। वसिष्ठ जी ने कहा—जब कार्त-वीर्य राजा के द्वारा आदर इस प्रकार से उन महामुनि से सादर प्रार्थना की गयी थी तब मुनि ने बहुत कुछ सत्कार करके यही उत्तर दिया था कि यदि आप जाना ही चाहते हैं तो स्वेच्छया गमन कीजिए ।२५। उस महामुनि से अनुज्ञा प्राप्त करने वाले राजा ने उनके आश्रम से बाहिर निकल कर समस्त सेनाओं से परिवृत होते हुए अपनी पुरी की ओर प्रस्थान कर दिया था ।२६। मार्ग में गमन करने के समय में उस राजा ने अपने मन में विचार किया था कि ओहो ! इस मुनि की तपश्चर्या की कैसी अद्भुत शक्ति है जो सभी लोकों को विस्मय देने वाली है ।२७। जिस तपश्चर्या की सिद्धि से ऐसी

स्वीकार करनी चाहिए अर्थात् उस धेनु को आप ग्रहण कर लीजिए। यदि यह कार्य आपको पसन्द हो तो इसको अपने अनुजीवियों के द्वारा कहला देना चाहिए।३७। इस प्रकार [illegible] भी इसको नहीं जानता हूँ। किन्तु यह सब [illegible] कथन अयुक्त है। चाहे कितनी ही आपत्ति क्यों न उपस्थित हो जावे, ऐसे [illegible] में भी ब्राह्मणों के धन का कभी भी आहरण नहीं करना चाहिए। मेरा मन परम शङ्कित रहा करता है।३८। इस रीति से जिस समय में राजा कह रहा [illegible] उस समय में राजा [illegible] पुरोहित ने राजा [illegible] यह कहा था—हे भूपते ! मतिमानों में परम श्रेष्ठ गर्ग मुनि ने ऐसे कर्म की निन्दा करते हुए यही कहा था।३९। आपत्ति [illegible] [illegible] भी कभी ब्राह्मणों के धन का किसी भी तरह से अपहरण नहीं करना चाहिए। इस लोक [illegible] ब्रह्मस्व [illegible] समान अन्य कुछ भी दुष्कर अर्थात् बुरा कर्म नहीं होता है।४०। हे नृप ! विष भी मारक होता है किन्तु वह अपने उपभोक्ता को ही [illegible] उसका मध्य मूल [illegible] मारता है किन्तु ब्राह्मणों का धन कभी [illegible] मूल [illegible] सहित सम्पूर्ण कुल को भस्मीभूत कर दिया करता [illegible]।४१। हे पार्थिव ! लोक में यह बड़ा भारी आश्चर्य [illegible] संयुत [illegible] कि ब्रह्मस्व अनिवार्य रूप से महान् दुर्धर विष है। यह तो केवल ग्रहण करने वाले को ही नहीं प्रत्युत उसके सभी पुत्र-पौत्र आदि का विनाश कर देने वाला [illegible] और विपाक में महान् कष्ट होता [illegible]।४२।

ऐश्वर्यमूढं हि मनः प्रभूणामसतामनाम् ।
किन्नामासन्न कुरुते नैवासद्भिसलोचितम् ॥४३
नैवान्यस्त्वामृते कोऽन्यो विना दानान्नृपोत्तम ।
आदानं चिंतयानो हि ब्राह्मणेष्वभिवाञ्छति ॥४४
ईदृशत्वं महाबाहो कर्म सज्जननिन्दितम् ।
मा कृथास्तद्धि लोकेषु यशोहानिकरं [illegible] ॥४५
यशो महति जातस्त्वं वदान्यानां महीभुजाम् ।
यशांसि कर्मणानेन सांप्रतं मा व्यनीनशः ॥४६
महोऽनुजीविनः किंचिद्भर्तारं व्यसनार्णवे ।
तत्प्रसादसमुन्नद्धा मज्जयंत्सलयोन्मुखाः ॥४७
श्रिया विकुर्वन्त्युत्क्रान्त्यर्थायंत्ये विचेतसः ।

रहे तो फिर सभी पाट को त्याग तप करने को में ही चले जाइए और पूर्ण त्यागी बन जाइए ।५५। इस प्रकार से समाधान होना ब्राह्मणों का ही धर्म होता है। हे राजन् ! क्षत्रिय का धर्म दण्ड देना है। यदि बल पूर्वक भी धेनुरत्न का अपहरण करते तो इसके करने भी आपका कोई अधर्म नहीं होगा ।५६।

प्रसह्य हरणे दोषं यदि संपश्यसे नृप ।
दत्वा मूल्यं गवाश्वाद्यमृषेर्धेनुः प्रगृह्यताम् ।।५७
स्वीकर्तव्या हि सा धेनुस्त्वया त्वं रत्नभाग्यतः ।
तपोधनानां हि कुतो रत्नसंग्रहणादरः ।।५८
तपोधनवरः शांतः प्रीतिमान्स नृप त्वयि ।
तस्मात्ते सर्वथा धेनुं याचितः संप्रदास्यति ।।५९
अथ वा गोहिरण्याद्यं यदन्यदभिवाञ्छितम् ।
संगृह्य वित्तं विपुलं धेनुं तां प्रतिदास्यति ।।६०
अनुपेक्ष्यं महद्रत्नं राज्ञा वै भूतिमिच्छता ।
इति मे वर्तते बुद्धिः कथं मन्यते भवान् ।।६१
राजोवाच—गत्वा त्वमेव तं विप्रं प्रसाद्य च विशेषतः ।
दत्वा चाभीप्सितं तस्मै तां गामानय मंत्रिक ।।६२
वसिष्ठ उवाच—
एवमुक्तस्ततो मंत्री विधिचोदितः ।
निवृत्य प्रययौ शीघ्रं जमदग्नेराश्रमम् ।।६३

हे नृप ! आप यदि बलात् धेनुरत्न के अपहरण करने में कोई दोष और अधर्म ही देखते तो इसके बदले में गौ अश्व आदि मूल्य के रूप में मुनि को देकर ऋषि की उस धेनु का ग्रहण कर लीजिए ।५७। मेरे इस सम्पूर्ण निवेदन करने का निष्कर्ष यही है कि आपको द्वारा उस धेनु को स्वीकार कर ही लेना चाहिए अर्थात् किसी भी रीति से उसको अपने अधिकार ही लेना उचित है। इसका कारण यही कि तो ऐसे रत्नों का सेवन करने वाले हैं। जो को ही अपना धन करते हैं ऐसे तपस्वियों को ऐसे रत्नों संग्रहण करने का समादर

कहीं भी नहीं होता है ।५८। वह तपोधन यश वाला ऋषि तो परम शान्त स्वभाव वाला [illegible] और [illegible] नृप ! वह आप में प्रीति रखने वाला भी है । इस कारण से जब भी आपके द्वारा याचना उससे की जायगी तो वह सब प्रकार से उस धेनु को दे देगा ।५९। अथवा यह भी हो सकता [illegible] कि वह कुछ अधिक इच्छा [illegible] होवे तो अन्य भी और सुवर्ण आदि जो-जो भी उसका अभीप्सित हो वह बहुत-सा धन एकत्रित करके उसको दे दिया जावे तो [illegible] इस सबके बदले में उस धेनु का प्रतिदान [illegible] ही कर देगा ।६०। मेरी बुद्धि तो यही है कि भूति की अभिलाषा रखने वाले राजा के द्वारा ऐसे महान् रत्न की कभी भी उपेक्षा नहीं करनी चाहिए । आप इस विचारणीय विषय [illegible] कैसा अपना मत रखते हैं ? ।६१। राजा ने मन्त्री [illegible] मत का [illegible] करके कहा था — हे मन्त्रिन् ! आप ही वहाँ गमन कीजिए और विशेष रूप से उस विप्र को [illegible] कीजिए तथा जो भी कुछ उसका अभिवाञ्छित हो उस सबको उसे [illegible] करके उस धेनु को यहाँ पर ले आइए ।६२। वसिष्ठजी ने कहा—इस रीति से जब राजा के द्वारा कहा [illegible] था तो वह मन्त्री भाग्य के विधान से प्रेरित होकर शीघ्र ही वापिस होकर जमदग्नि मुनि के आश्रम में चला गया था ।६३।

गते तु नृपतौ तस्मिन्बहुलबलसंयुते ।
समिधानयनार्थाय रामोऽपि प्रययौ वनम् ।।६४

ततः स मंत्री सबलः समासाद्य तदाश्रमम् ।
प्रणम्य मुनिशार्दूलमिदं वचनमब्रवीत् ।।६५

चन्द्रगुप्त उवाच—

ब्रह्मन्नृपतिनाज्ञप्तो राजा तु भुवि रत्नभाक् ।
रत्नभूता च धेनुः सा भुवि दोग्ध्रीष्वनुत्तमा ।।६६

तस्माद्रत्नं सुवर्णं वा मूल्यमुक्त्वा यथोचितम् ।
आदाय गोरत्नभूतां धेनुं मे दातुमर्हसि ।।६७

जमदग्निरुवाच—

होमधेनुरियं मह्यं न दातव्या हि कस्यचित् ।
राजा वदान्यः स कथं ब्रह्मस्वमभिवाञ्छति ।।६८

मन्त्र्युवाच—

रत्नभाक्त्वेन नृपतिर्द्धेनुं ते प्रतिकाङ्क्षति ।

गवायुतेन तस्मात्त्वं तस्मै तां दातुमर्हसि ॥६९

उस राजा के आश्रम से अपने पुर की ओर चले जाने पर राम भी आकृत व्रण के ही साथ में समिधाओं के लाने के लिए वन में चला [illegible] था ।६४। इसके अनन्तर वह चन्द्रगुप्त नामधारी मन्त्री अपनी सेना के सहित जमदग्नि मुनि के आश्रम में पहुँच कर उसने मुनियों में शार्दूल के समान जमदग्नि के चरणों [illegible] प्रणाम करके यह [illegible] कहे थे ।६५। चन्द्रगुप्त ने कहा—हे महान् ! नृपति ने यह आज्ञा प्रदान की [illegible] कि इस भूमण्डल में राजा ही रत्नों का सेवन करने वाला होता है । इस भूमि [illegible] [illegible] दोहन शील धेनुओं में अतीव उत्तम यह धेनु रत्नभूता [illegible] जो कि इस समय में आप [illegible] पास [illegible] ।६६। इस कारण से आप रत्न अथवा सुवर्ण को भी समुचित हो उस धेनु [illegible] मूल्य बताकर ग्रहण कीजिए और गौओं में जो रत्नभूता धेनु है उसको आप मुझको प्रदान करने के योग्य होते हैं ।६७। जमदग्नि मुनि ने कहा—यह तो मेरी होम धेनु है अर्थात् समस्त होम की सामग्री देने वाली है अतएव मेरे द्वारा यह किसी [illegible] लिये भी देने के योग्य नहीं है । यह आपका स्वामी राजा तो बहुत ही बड़ा दानशील [illegible] फिर वह किस प्रकार से [illegible] ब्रह्मस्व अर्थात् ब्राह्मण के [illegible] को लेने की इच्छा कर रहा [illegible] ? ।६८। मन्त्री ने कहा—क्योंकि नृपति रत्नों [illegible] सेवन करने [illegible] होता है इसी भावना के कारण से वह आपकी रत्नभूता धेनु की आकांक्षा करता है । यों ही बिना [illegible] मूल्य के नहीं लेना चाहता है । आप दश सहस्र गौओं को ग्रहण करके [illegible] [illegible] [illegible] धेनु को उस [illegible] लिए देने [illegible] योग्य [illegible] ।६९।

जमदग्निरुवाच—

क्रयविक्रययोर्नाहं कर्त्ता जातु कथंचन ।

हविर्धानीं च वै तस्मान्नोत्सहे दातुमंजसा ॥७०

मंत्र्युवाच—राज्यार्धेनाथ वा ब्रह्मन्सकलेनापि भूभृतः ।

देहि धेनुमिमामेकां तत्ते श्रेयो भविष्यति ॥७१

जमदग्निरुवाच—

॥ जमदग्नि-वध ॥

वसिष्ठ उवाच—

जमदग्निस्ततो भूयस्तमुवाच रुषान्वितः ।
ब्रह्मस्वं नापहर्त्तव्यं पुरुषेण विजानता ॥१
प्रसह्य गां मे हरतो पापमाप्स्यसि दुर्मते ।
आयुर्जाने परिक्षीणं न चेदेतत्करिष्यति ॥२
बलादिच्छसि यन्नेतुं तन्न शक्यं कथंचन ।
स्वयं वा यदि सायुज्येद्विनशिष्यति पार्थिवः ॥३
दानं विनापहरणं ब्राह्मणानां तपस्विनाम् ।
गतायुषोऽर्जुनादन्यः कोऽन्विच्छति जिजीविषु: ॥४
इत्युक्तस्तेन संक्रुद्धः स मंत्री कालचोदितः ।
बद्ध्वा तां गां दृढैः पाशैर्विचकर्ष बलान्वितः ॥५
जमदग्निरथ क्रोधाद्भाविकर्मप्रचोदितः ।
रुरोध तां यथाशक्ति विकर्षंतीं पयस्विनीम् ॥६
जीवन्न प्रतिमोक्ष्यामि गामेनामित्यमर्षितः ।
जग्राह सुदृढं कंठे बाहुभ्यां तां महामुनिः ॥७

श्री वसिष्ठजी ने कहा—पुनः जमदग्नि मुनि ने क्रोध से समन्वित होते हुए उससे कहा था—एक ज्ञानी पुरुष के द्वारा ब्रह्मस्व का कभी भी अपहरण नहीं चाहिए ।१। हे दुष्टमति वाले ! बलात् मुझ से मेरी गौ हरण करके तू महान् पाप को प्राप्त हो । यदि तू ऐसा ही करेगा तो मैं जानता कि आयु को परिक्षीण कर रहा है ।२। बल पूर्वक जो इसको लेने की इच्छा कर रहा है वह किसी भी रीति से नहीं किया सकेगा । यदि यही करेगा तो तू स्वयं ही सायुज्य को प्राप्त हो जायगा तेरा राजा विनष्ट हो जायगा ।३। बिना दान के तपस्वी ब्राह्मणों की वस्तु का से छीन लेना गतायु कार्त्तवीर्यार्जुन के सिवाय अन्य कौन जीवित रहने की इच्छा चाहता है अर्थात् ऐसा कोई भी नहीं चाहा करता है। यह तेरा राजा ही है जो ऐसा करना चाहता है ।४। इस तरह से जब

मुनि के द्वारा उस मन्त्री से कहा गया था तो वह मन्त्री से प्रेरित होकर दुष्कर्म में प्रवृत्त हो गया और बल (सेना) से समन्वित उस मन्त्री ने परम गुरुक पाशों से उस होम धेनु को बाँध करके अपने ले जाने के लिये खींचा था ।५। इसके अनन्तर क्रोध से भविष्य में होने वाले कर्म से प्रेरित होते हुए जमदग्नि ने गौ के खींचते हुए मन्त्री को अपनी शक्ति को भरपूर लगाकर जैसी शक्ति उनमें थी उसी के अनुसार रोका था ।६। उन्होंने कहा कि मैं अपने जीते जी धेनु को नहीं छोड़ूगा । यह कहते उनको बड़ा क्रोध उत्पन्न हो गया और महामुनि ने बड़ी दृढ़ता के साथ अपनी दोनों बाहुओं को उस धेनु के कण्ठ में डालकर उसको बलपूर्वक पकड़ लिया था ।७।

ततः क्रोधपरीतात्मा चन्द्रगुप्तोऽतिनिर्घृणः ।
उत्सारयध्वमित्येनमादिदेश स्वसैनिकान् ।।८
अप्रधृष्यतमं लोके तमृषिं राजकिंकराः ।
भर्तुराज्ञया प्रहृत्यैनं परिवव्रुः समन्ततः ।।९
दंडैः कशाभिर्लगुडैर्विनिघ्नंतश्च मुष्टिभिः ।
ते समुत्सारयन् धेनोः सुदूरतरमंतिकात् ।।१०
स तथा हन्यमानोऽपि व्यथितः श्रमयान्वितः ।
न चुक्रोधाक्रोधनत्वं सतो हि परमं धनम् ।।११
स च शक्तः स्वतपसा संहर्त्तुमपि रक्षितुम् ।
जगत्सर्वं क्षयं चिन्तयन्न प्रचुक्रुधे ।।१२
स पूर्वं क्रोधनोऽत्यर्थं भृगुरर्थे प्रसादितः ।
रामेणाभूत्ततो नित्यं शांत एव महातपाः ।।१३
स हन्यमानः सुभृशं घूर्णितांगास्थिबंधनः ।
निपपात महातेजा धरण्यां गतचेतनः ।।१४

इसके अनन्तर क्रोध से परीत आत्मा वाले अत्यन्त नीच चन्द्रगुप्त ने अपने सैनिकों को दे दी थी कि इस मुनि को बल पूर्वक हटा दो ।८। वह मुनि इस लोक में ऐसे थे कि कोई भी उनको प्रधर्षित नहीं कर था तथापि राजा के किंकरों ने ऋषि को अपने स्वामी की आज्ञा

विशेष शंका से युक्त दुष्ट आत्मा वाले ने उस महामुनि के धरणी पर गिर जाने पर अपने किंकरों को आदेश दिया कि बल पूर्वक बहुत ही शीघ्र उस धेनु का आनयन करें अर्थात् उसको ले जावें ।१५। इसके पश्चात् नृप ! वत्स सहित उस धेनु को परम सुदृढ़ पाशों से बाँधकर चाबुकों के प्रहारों से उसको पीटते हुए ले जाने की इच्छा वे किंकर उसे खींच रहे थे ।१६। बहुत से किंकरगणों के वह खींची जा रही थी चाबुकों से और लाठियों से मारी-पीटी जा रही थी तो वह तपस्विनी उनसे बहुत ही में भर गयी थी ।१७। अत्यधिक चाबुकों के प्रहार पर हुए थे तो वह धेनु व्यथित हो गयी और महान क्रोध भी समन्वित हो गयी थी फिर धेनु ने उस सुदृढ़ पाशों को खींचकर अपने आपको उन से छुड़वा लिया ।१८। जब पाशों के बन्धन से वह विमुक्त हो गयी तो सैनिकों ने सब ओर से घेर लिया । उस समय क्रोध से हुंहा की ध्वनि करते हुई वह सभी ओर करने वाली हो गयी थी ।१९। फिर अत्यन्त अमर्षित होकर उसने अपने सभी ओर में विषाण-खुर और पूँछ के अवघात से सम्पूर्ण गणों की सेना को वहाँ से दूर खदेड़ दिया था ।२०। वह पयस्विनी किंकरों वहाँ से दूर कर सबके देखते हुए बड़े ही वेग से अन्तरिक्ष में चली गयी थी ।२१।

ततस्ते भग्नसंकल्पाः संभग्नक्षतविग्रहाः ।
प्रसह्य बद्ध्वा तद्वत्सं जग्मुरेवातिनिर्घृणाः ॥२२
पयस्विनीं विना वत्सं गृहीत्वा किंकरैः सह ।
पापस्तरसा राज्ञः सन्निधिं समुपागमत् ॥२३
समीपं नृपतेः प्रणम्यास्मै प्रशंसकृत् ।
तद्वृत्तान्तमशेषेण व्याचचक्षे ससाध्वसः ॥२४

इसके अनन्तर वे अपने संकल्पों के ही जाने वाले हो गये और उनके सबके शरीर क्षतों अवभग्न हो गये थे । अत्यन्त जघन्य बलपूर्वक धेनु के वत्स को ही बाँधकर वहाँ से चले गये थे ।२२। फिर वह पापात्मा पयस्विनी के उसके वत्स ग्रहण करके अपने सेवकों के राजा के समीप गया था ।२३। राजा के समीप में करके प्रशंसा करने वाले उसने राजा को प्रणाम किया था और भय भीत उसने वहाँ सम्पूर्ण वृत्तान्त राजा के समक्ष में वर्णित किया ।२४।

—x—

॥ परशुराम [illegible] [illegible] ॥

वसिष्ठ उवाच—

श्रुत्वैतत्सकलं राजा जमदग्निवधादिकम् ।
उद्विग्नचेताः सुभृशं चिन्तयामास नैकधा ॥१
अहो मे सुनृशंसस्य लोकयोरुभयोरपि ।
ब्रह्मस्वहरणे वाञ्छा तद्धत्या चातिगर्हिता ॥२
अहो नाश्रौषमस्याहं ब्राह्मणस्य विधानतः ।
वचनं तर्हि तां जह्यां विमूढात्मा गतत्रपः ॥३
इति संचिन्तयन्नेव हृदयेन विदूयता ।
स्वपुरं प्रतिचक्राम सबलः सानुगस्ततः ॥४
पुरीं प्रतिगते राज्ञि तस्मिन्सपरिचारके ।
आश्रमात्सहसा राजन्विनिश्चक्राम रेणुका ॥५
अथ सक्षतसर्वाङ्गं रुधिरेण परिप्लुतम् ।
निश्चेष्टं पतितं भूमौ ददर्श पतिमात्मनः ॥६
ततः सा निहतं मत्वा भर्तारं गतचेतनम् ।
अन्वाहतेवाशनिना मूर्छिता न्यपतद्भुवि ॥७

श्री वसिष्ठजी ने कहा—राजा कीर्त्तवीर्य यह सम्पूर्ण जमदग्नि मुनि के [illegible] आदि का वृत्तान्त श्रवण करके बहुत ही अधिक उद्विग्न चित्त वाला हो गया [illegible] और वह अनेक [illegible] की बातों [illegible] विषय [illegible] चिन्तन करने लग गया [illegible] ।१। अहो ! मैं दोनों ही लोकों [illegible] बहुत अधिक क्रूर [illegible] गया [illegible] क्योंकि मैंने ब्रह्मस्व के अपहरण करने में अपनी इच्छा की थी और अतीव गर्हित उस मुनि की हत्या [illegible] पाप भी मुझे लग गया [illegible] ।२। अहो ! मैंने उस ज्ञाता पुरोहित विप्र की बात को नहीं सुना था अर्थात् उसके [illegible] [illegible] पालन नहीं किया [illegible] । विमूढ़ आत्मा वाले निर्लज्ज [illegible] उसकी वाणी का त्याग कर दिया था ।३। यही सोचते हुए बहुत ही [illegible] खिन्न हृदय से वह अपनी सेना और अनुगामियों के ही सहित अपने पुर की ओर चल दिया था ।४। उस राजा के पुरी की ओर चले जाने पर जो कि अपने समस्त परिकर के

[illegible] था, हे राजन् ! रेणुका सहसा अपने आश्रम [illegible] निकली थी ।५। इसके [illegible] उस रेणुका महर्षि पत्नी ने सम्पूर्ण अंगों में क्षतों वाले-रुधिर [illegible] लथ-पथ-चेष्टा [illegible] रहित अर्थात् बेहोश और भूमि पर पड़े हुए अपने पति को देखा [illegible] ।६। इसके अनन्तर [illegible] रेणुका अपने भर्ता को चेतना से शून्य निहत (मृत) मानकर वज्रापात के चोट खाई हुई के समान मूच्छित होकर भूमि पर गिर गयी ।७।

चिरादिव पुनर्भूमेरुत्थायातीव दुःखिता ।
पतित्वोत्थाय सा भूयः सुस्वरं प्ररुरोद ह ॥८
विललाप च सात्यर्थं धरणीधूलिधूसरा ।
अश्रुपूर्णमुखी दीना पतिता शोकसागरे ॥९
हा नाथ प्रिय धर्मज्ञ दाक्षिण्यामृतसागर ।
हा धिगत्यंतशांत त्वं नैव कांक्षेत चेदृशम् ॥१०
आश्रमादभिनिष्क्रांतः सहसा व्यसनार्णवे ।
क्षिप्त्वानाथामगाधे मां क्व च यातोऽसि मानद ॥११
सदा साप्तपदे मैत्रे मुषिताह्यं [illegible] सह ।
यासि यत्र त्वमेकाकी तत्र मां नेतुमर्हसि ॥१२
दृष्ट्वा त्वामीदृशावस्थमचिराद् दयं [illegible] ।
न दीर्यते महाभाग कठिनाः खलु योषितः ॥१३
इत्येवं विलपंती सा रुदती च मुहुर्मुहुः ।
चुक्रोश रामरामेति भृशं दुःखपरिप्लुता ॥१४

बहुत देर में फिर भूमि से उठकर वह [illegible] दुःखित हुई [illegible] और बारम्बार भूमि में उठकर और फिर पछाड़ खाकर गिरती हुई ऊँचे स्वर से उसने रुदन किया था ।८। धरणी की धूल से धूसर होती हुई उसने बहुत ही अधिक विलाप किया था । उसका मुख झर-झर गिरते हुए आँसुओं [illegible] संयुत और परम दीन होकर शोक के महान् सागर में निमग्न हो गयी थी ।९। उसने अपने करुण [illegible] में कहा [illegible] [illegible] नाथ ! आप तो मेरे परमप्रिय थे और [illegible] धर्म के पूर्ण ज्ञाता थे । हे स्वामिन् ! आप दाक्षिण्य रूपी अमृत के महान् सागर थे । हा ! मुझे धिक्कार है आप तो अत्यन्त शान्त स्वरूप

जाते थे किन्तु इस प्रकार [illegible] आपने कभी भी कामना नहीं की थी ।१०। हे मान प्रदान करने वाले! अभी-अभी तो [illegible] अपने [illegible] से निकले थे। तुरन्त ही [illegible] मुझको दुःखों [illegible] महान् घोर सागर [illegible] पटककर आप कहाँ पर चले गये हैं ।११। सत्पुरुषों की सप्तपदी की मित्रता में मुझे अपने ग्रहण किया था [illegible] [illegible] आपने उस सप्तपदी [illegible] विपरीत सूचित हो रही [illegible] कि आपका सहवास मेरा छूट रहा है। जहाँ पर भी आप अकेले [illegible] रहे हैं वहीं पर मुझको भी अपने ही [illegible] [illegible] ले जाने [illegible] योग्य आप [illegible] ।१२। आपको ऐसी मूर्च्छित एवं मृत [illegible] में पतित हुओं को देखकर भी तुरन्त [illegible] मेरा हृदय विदीर्ण नहीं हो रहा है—यह क्या [illegible] है। निश्चय ही स्त्रियों का हृदय बहुत ही निष्ठुर होता है ।१३। इस प्रकार से महान् घोर विलाप करती हुई और बार-बार क्रन्दन करती हुई हे राम! हे राम! यह कहकर अत्यन्त दुःख में परिप्लुत होकर रुदन कर रही थी ।१४।

तावद्रामोऽपि स वनात्समित्कुशसमन्वितः ।
अकृतव्रणसंयुक्तः स्वाश्रमाय न्यवर्तत ॥१५
अपश्यद्भयशंसीनि निमित्तानि बहूनि सः ।
पश्यन्नुद्विग्नहृदयस्तूर्णं प्रापाश्रमं विभुः ॥१६
तमायान्तमभिप्रेक्ष्य रुदती सा भृशातुरा ।
नदीभूतेव शोकेन प्रारुदद्रेणुका पुनः ॥१७
रामस्य पुरतो राजन्भर्तृव्यसनपीडिता ।
उभाभ्यामपि हस्ताभ्यामुदरं समताडयत् ॥१८
मार्गे विदितवृत्तान्तः सम्यग्रामोऽपि मातरम् ।
कुररीमिव शोकार्तां दृष्ट्वा दुःखमुपेयिवान् ॥१९
धैर्यमारोप्य मेधावी दुःखशोकपरिप्लुतः ।
नेत्राभ्यामश्रुपूर्णाभ्यां तस्थौ भूमावधोमुखः ॥२०
तं तथागतमालोक्य रामं शोकाकुलाननः ।
किमिदं भृगुशार्दूल नैतत्त्वय्युपपद्यते ॥२१

तब तक वह राम समिधाओं के [illegible] का वहन करते हुए अकृत व्रण [illegible] सहित वन से अपने आश्रम के लिए वापिस आया था ।१५। मार्ग में [illegible]

राम ने [illegible] आने वाले भय की सूचना [illegible] वाले बहुत से अपशकुनों [illegible] देखा [illegible] और उनको देखते हुए [illegible] हृदय अधिक उद्विग्न हो रहा था। फिर वह अपने [illegible] पहुँचा [illegible]।१६। उस अपने पुत्र राम को आते [illegible] देखकर वह रेणुका अत्यन्त आतुर होकर रुदन करने लगी तथा उसका वह शोक नया सा हो गया [illegible] और फिर वह धाड़ मारकर रुदन कर रही [illegible]।१७। हे राजन्! अपने पुत्र [illegible] के सामने अपने भर्ता के वियोग [illegible] दुःख से बहुत ही उत्पीड़ित होकर उसने दोनों करों से अपने वक्ष-स्थल को भली भाँति ताड़ित किया था।१८। राम ने भी आते हुए मार्ग [illegible] ही यह सब वृत्तान्त [illegible] लिया [illegible] और जब उसने अपनी जननी [illegible] शोक [illegible] अधिक आर्त होकर कुररी के समान विलाप-कलाप करती हुई देखा था तो उसको बड़ा ही दुःख प्राप्त हुआ था।१९। राम बहुत ही मेधा सम्पन्न थे उन्होंने धैर्य का सहारा लिया [illegible] जो कि उस समय [illegible] दुःख और शोक में निमग्न था। उसके दोनों नेत्रों [illegible] आँसू भरे हुए थे। वह भूमि पर ही नीचे की ओर मुख करके स्थित हो गया था।२०। उस समय में अकृत व्रण ने राम को उस प्रकार की [illegible] में अवस्थित देखकर राम से कहा था—हे भृगुकुल [illegible] शार्दूल के सदृश पुरुष! यह क्या हो रहा है? ऐसा शोक मग्न हो [illegible] आपके लिए उचित प्रतीत नहीं हो रहा है।२१।

न त्वादृशा महाभाग भृशं शोचंति बुद्धिमत् ।
धृतिमंतो महांतस्तु दुःखं कुर्वंति न व्यये ॥२२
शोकः सर्वनिकायानां हि परिशोषप्रदायकः ।
त्यज शोकं महाबाहो न तत्पात्रं भवादृशाः ॥२३
ऐहिकामुष्मिकार्थानां नूनमेकांतरोधकः ।
शोकस्तस्यावकाशं त्वं कथं हृदि नियच्छसि ॥२४
तत्त्वं धैर्यधनो भूत्वा परिसांत्वय मातरम् ।
रुदतीं बत वैधव्यशंकापहृतचेतनाम् ॥२५
नैवागमनमस्तीह व्यतिक्रांतस्य वस्तुनः ।
तस्मादतीतमखिलं त्यक्त्वा कृत्यं विचिंतय ॥२६
इत्येवं सांत्वमानश्च तेन दुःखसमन्वितः ।
रामः संस्तंभयामास धर्मैरात्मानमात्मना ॥२७

असह्यदुःखं वैधव्यं सहमाना कथं पुनः ।
भर्त्रा विरहिता तेन प्रवर्तिष्ये विनिन्दिता ॥३७
तस्मादनुगमिष्यामि भर्तारं दयितं मम ।
यथा तेन प्रवर्तिष्ये परत्रापि सहानिशम् ॥३८
ज्वलंतमिममेवाग्निं संप्रविश्य चिरादिव ।
भर्तुर्मेव भविष्यामि पितृलोकप्रियातिथिः ॥३९
अनुवादमृते पुत्रा भवद्भिस्तत्र कर्मणि ।
प्रतिभूय न वक्तव्यं यदि मत्प्रियमिच्छथ ॥४०
इत्येवमुक्त्वा वचनं रेणुका दृढनिश्चया ।
अग्निं प्रविश्य भर्तारमनुगंतुं मनो दधे ॥४१
एतस्मिन्नेव काले तु रेणुकां तनयैः सह ।
समाभाष्याऽतिगंभीरा वागुवाचाशरीरिणी ॥४२

रेणुका ने कहा—हे पुत्रो ! मैं अब आप लोगों के परमाधिक पुण्य शील स्वर्ग में गये हुए पिता का ही मैं अनुगमन करना [illegible] चाहती [illegible] सो आप लोग सब मुझे ऐसा करने की आज्ञा देने [illegible] लिए योग्य होते हो ।३६। विधवा हो जाने [illegible] दुःख बहुत ही असह्य होता है उसे सहन करती हुई मैं कैसे-कैसे रहूँगी और अपने स्वामी के विरह वाली विशेष [illegible] से निन्दित होकर इस संसार में [illegible] जीवन प्रवृत्त करूँगी ।३७। इस कारण से मैं अपने परम प्रिय स्वामी का अनुगमन करूँगी अर्थात् उनके ही देह के [illegible] सती हो जाऊँगी जिससे परलोक में भी निरन्तर उनके ही [illegible] रह सकूँगी ।३८। जलती हुई इसी अग्नि [illegible] प्रवेश करके कुछ ही [illegible] [illegible] अपने स्वामी की पितृलोक में प्रिय अतिथि बन जाऊँगी ।३९। हे पुत्रो ! यदि [illegible] लोग मेरे अभीप्सित चाहते हैं अर्थात् मेरे प्यारे [illegible] चाहते [illegible] तो अनुवाद के बिना [illegible] कर्म में [illegible] लोगों को प्रतिकूल होकर [illegible] भी नहीं बोलना चाहिए ।४०। इस रीति से इन वचनों को ही कहकर रेणुका सुदृढ़ निश्चय वाली हो गयी थी तथा अग्नि में प्रवेश करके अपने स्वामी [illegible] अनुगमन करने के लिये उसने [illegible] में ठान ली थी ।४१। इसी काल में पुत्रों [illegible] सहित रेणुका को सम्बोधित करके अत्यन्त गम्भीर बिना शरीर वाणी अर्थात् अन्तरिक्ष में कही हुई वाणी ने कहा [illegible] ।४२।

हे रेणुके स्वतनयैर्चिरं मेंऽवहिता शृणु ।
मा कार्षीः साहसं भद्रे प्रवक्ष्यामि प्रियं तव ॥४३
साहसो नैव कर्तव्यः केनाप्यात्महितैषिणा ।
न मर्त्तव्यं त्वया सर्वो जीवन्भद्राणि पश्यति ॥४४
तस्माद्धैर्यघना भूत्वा भव त्वं कालकांक्षिणी ।
निमित्तमंतरीकृत्य किंचिदेव शुचिस्मिते ॥४५
अचिरेणैव भर्त्ता ते भविष्यति सचेतनः ।
उत्पन्नजीवितेन त्वं कामं प्राप्स्यसि शोभने ।
भविन्नी चिरकालाय बहुकल्याणभाजनम् ॥४६
वसिष्ठ उवाच—
इति तद्वचनं श्रुत्वा धृतिमालंब्य रेणुका ।
तद्वाक्यगौरवाद्धैर्यमवापुस्तनयाश्च ते ॥४७
ततो नीत्वा पितुर्देहमाश्रमाभ्यंतरं मुनेः ।
शाययित्वा निवाते तु परितः समुपाविशन् ॥४८
तेषां तथोपविष्टानामप्रहृष्टात्मचेतसाम् ।
निमित्तानि शुभान्यासन्ननेकानि महांति च ॥४९

हे रेणुके ! परम सावधान होकर अपने पुत्रों [illegible] सहित मेरी वाणी का श्रवण करो । हे भद्रे ! तुम साहस मत करो । [illegible] आपका प्रिय वचन कहूँगा ।४३। अपनी आत्मा [illegible] हित की अभिलाषा रखने वाले किसी को भी साहस कभी नहीं करना चाहिए । आपको नहीं मरना चाहिए क्योंकि जो प्राणी जीवित रहता है वह शुभ कर्मों को देखा [illegible] ।४४। इसलिए [illegible] धैर्य [illegible] घन वाली होकर काल की प्रतीक्षा की आकांक्षा वाली होओ । हे शुचि स्मित वाली ! भले ही कुछ ही निमित्त को अन्तरित [illegible] ऐसा करो ।४५। बहुत ही स्वल्प समय में आपके भर्त्ता सचेतन हो जायेंगे अर्थात् [illegible] हो जायेंगे । हे शोभने ! जब उनमें जीवन समुत्पन्न हो जायगा तो आपकी कामना पूर्णतया प्राप्त हो जायगी और फिर विशेष अधिक काल पर्यन्त अनेकों कल्याणों की भाजन होने वाली होगी ।४६। वसिष्ठ जी ने कहा—[illegible] प्रकार [illegible] उस अन्तरिक्ष वाणी के वचन का अवलम्बन करके रेणुका ने धैर्य

[illegible] आलम्बन ग्रहण किया [illegible] । और उसके जो पुत्र थे उन्होंने भी उसके वचनों के गौरव से परम [illegible] [illegible] की थी ।४७। इसके पश्चात् उन्होंने [illegible] मुनि अपने पिता के मृत शरीर को [illegible] को भीतर से लाकर रख दिया [illegible] और उसको वहाँ लिटाकर निवात में वे उसके चारों ओर बैठ गये थे ।४८। जिस समय में वे वहाँ पर बहुत ही खिन्न आत्मा और मनों वाले बैठे हुए [illegible] तो [illegible] वेला में उनको बहुत से परम [illegible] एवं महान् निमित्त हुए थे । अच्छे शकुन दिखाई दिये [illegible] ।४९।

तेन ते किंचिदाश्वस्तचेतसो मुनिपुंगवाः ।
निषेदुः सहिता मात्रा कांक्षंतो जीवितं पितुः ॥५०
एतस्मिन्नंतरे राजन्भृगुवंशधरो मुनिः ।
विधेर्वशेन मतिमांस्तत्रागच्छद्यदृच्छया ॥५१
अथर्वणां विधिः साक्षाद्वेदवेदांगपारगः ।
सर्वशास्त्रार्थवित्प्राज्ञः सकलासुरवंदितः ॥५२
मृतसंजीविनीं विद्यां यो वेद मुनिदुर्लभाम् ।
यथाहुतान्मृतान्दैत्यैरुत्थापयति दानवान् ॥५३
शास्त्रमौशनसं येन राज्ञां राज्यफलप्रदम् ।
प्रणीतमनुजीवंति सर्वेऽद्यापीह पार्थिवाः ॥५४
[illegible] तदाश्रममासाद्य प्रविष्टोऽत्र महामुनिः ।
ददर्श तदवस्थांस्तान्सबाष्पदुःखपरिप्लुतान् ॥५५
अथ ते तु भृगुं दृष्ट्वा वंशस्य पितरं मुदा ।
उत्थायास्मै ददुश्चापि [illegible] परमासनम् ॥५६

इस रीति से जब शुभ शकुन दिखाई दिये तो उनके देखने से वे श्रेष्ठ मुनिगण [illegible] [illegible] मन वाले हो गये थे अर्थात् उनको कुछ शुभाशा हुई थी । वे सभी अपने पिता [illegible] जीवित की आकाङ्क्षा करते हुए माता के [illegible] वहाँ पर बैठ गये [illegible] ।५०। [illegible] राजन् ! इसी बीच में भृगु के वंश को धारण करने वाले मतिमान् मुनि विधि [illegible] वश से यदृच्छा से ही वहाँ पर समागत हो गये थे ।५१। वे मुनि अथर्व वेद की साक्षात् विधि [illegible] [illegible] वाले थे और अन्य सभी वेदों तथा वेदोंके अङ्ग शास्त्रों के पारगामी मनीषि

थे। वे समस्त शास्त्रों के पारगामी मनीषी थे। वे समस्त शास्त्रों के तात्त्विक अर्थों के ज्ञाता विद्वान् थे और समस्त असुरों के द्वारा वन्दित थे ।५२। जो मुनियों के लिये भी अत्यन्त दुर्लभ होती है ऐसी मृत प्राणियों को भी जीवित कर देने वाली विद्या को जानते थे। जब भी देवों के द्वारा रण में दानव निहत हो जाया करते थे तो इसी मृत संजीवनी विद्या से उनको उठा दिया करते हैं अर्थात् जीवित बना देते हैं ।५३। जिस महामुनि ने औशनस शास्त्र को प्रणीत किया था जो राजाओं को राज्य के [illegible] का प्रदान करने वाला है और आज भी यहाँ पर नृपगण अनुजीवित रहते हैं ।५४। वह महामुनि उस आश्रम में पहुँच कर अन्दर प्रविष्ट हुए थे और उन्होंने उस अवस्था में अवस्थित सबको दुःख से परिप्लुत हुए देखा था ।५५। इसके अनन्तर उन सबने वंश के पिता भृगु मुनि का दर्शन प्राप्त करके बड़े ही आनन्द के साथ वे सब खड़े हो गये थे और गोत्रोत्थान लेकर सबने [illegible] सत्कार किया था तथा [illegible] करके भृगु मुनि को आसन समर्पित किया था ।५६।

स चाशीभिस्तु तान्सर्वानभिनंद्य महामुनिः ।
पप्रच्छ किमिदं वृत्तं तत्सर्वं ते न्यवेदयन् ॥५७

तच्छ्रुत्वा स भृगुः शीघ्रं जलमादाय मंत्रवित् ।
संजीविन्या विद्यया तं सिषेच प्रोच्चरन्निदम् ॥५८

यद्यस्य तपसो वीर्यं ममापि शुभमस्ति चेत् ।
तेनासौ जीवताच्छीघ्रं प्रसुप्त इव चोत्थितः ॥५९

एवमुक्ते शुभे वाक्ये भृगुणा साधुकारिणा ।
समुत्तस्थावधार्मीकः साक्षाद्गुरुरिवापरः ॥६०

दृष्ट्वा तत्र स्थितं वंद्यं भृगुं स्वस्य पितामहम् ।
ननाम भक्त्या नृपते कृतांजलिरुवाच ह ॥६१

जमदग्निरुवाच—

धन्योऽयं कृतकृत्योऽहं सफलं जीवितं च मे ॥६२

यत्पश्ये चरणौ तेऽद्य सुरासुरनमस्कृतौ ।
भगवन्किं करोम्यद्य शुश्रूषां तव मानद ॥६३

उन महामुनि ने आशीर्वादों के द्वारा सबका अभिनन्दन करके उनसे उन्होंने पूछा था कि यह क्या हुआ है । इस पर उन्होंने पूरा वृत्तान्त जो भी वहाँ पर घटनाएँ घटित हुई थीं भृगुमुनि की सेवा में निवेदित कर दी थीं ।५७। यह सारा वृत्तान्त सुनकर मन्त्र वेत्ताओं के महामनीषी भृगु मुनि ने बहुत ही शीघ्र जल लेकर यह उच्चारण करते हुए संजीवनी विद्या से उस जमदग्नि के देह को अभिषिक्त किया था । यदि मेरे तप और यज्ञ का वीर्य शुभ है तो उसके प्रभाव से यह जमदग्नि सोकर उठे हुए के ही समान शीघ्र ही जीवित हो जावें ।५८-५९। इस प्रकार से उस परम शुभ वाक्य को साधुकारी भृगु मुनि के द्वारा उच्चारित होने पर शीघ्र ही जमदग्नि साक्षात् दूसरे देवगुरु के ही सदृश समुत्थित हो गया था ।६०। उठा तो उसने वहाँ पर संस्थित-वन्दना करने के योग्य अपने पितामह भृगु मुनि का दर्शन किया था । हे नृपते ! उस जमदग्नि ने भक्ति की भावना से प्रणाम करके दोनों हाथों को जोड़कर उनसे कहा था ।६१। जमदग्नि ने कहा—मैं परम धन्य तथा कृतार्थ हो गया हूँ और मेरा जीवन आज सफल ही हुआ है ।६२। जो सुरगण और असुरों के द्वारा वन्दित आपके चरण कमल हैं उनका आज मैं अपने नेत्रों से अवलोकन कर रहा हूँ । हे मान के प्रदान करने वाले भगवन् ! मैं आपकी इस समय में क्या शुश्रूषा करूँ ? मुझे आप आज्ञा दीजिए ।६३।

> पुनीह्याश्रमकुलं स्वस्य चरणाब्जरजैर्विभो ।
> इत्युक्त्वा सहसाऽऽनीतं रामेणार्घ्यं मुदान्वितः ।।६४
> प्रददौ पादयोस्तस्य भक्त्यानमितकंधरः ।
> तज्जलं शिरसाऽधत्त सुकुटुम्बो महामनाः ।।६५
> अथ सत्कृत्य स भृगुं प्रपच्छ विनयान्वितः ।
> भगवन् किं कृतं तेन राज्ञा दुष्टेन पातकम् ।।६६
> यस्यातिथ्यं हि कृतवानहं सम्यग्विधानतः ।
> साधुबुद्ध्या स दुष्टात्मा किं चकार महामते ।।६७
> वसिष्ठ उवाच—
> एवं स पृष्टो मतिमान्भृगुः सर्वविदीश्वरः ।
> चिरं ध्यात्वा समालोच्य कारणं प्राह भूपते ।।६८

एकविंशतिवारं हि कृतं दुःखपरीतया ।
त्रिःसप्तकृत्वो निःक्षत्रां करिष्ये पृथिवीमिमाम् ॥७३
अतोऽयं वार्यमाणोऽपि त्वया पित्रा निरंतरम् ।
भाविनोऽर्थस्य [illegible] बलात्करिष्यत्येव [illegible] ॥७४
स तु राजा महाभागो वृद्धानां पर्युपासिता ।
दत्तात्रेयाद्धरेरंशाल्लब्धबोधो महामतिः ॥७५
साक्षाद्भक्तो महात्मा च तद्वधे पातकं भवेत् ।
एवमुक्त्वा महाराज स भृगुर्ब्रह्मणः सुतः ।
यथागतं ययौ विद्वान्भविष्यत्कालपर्ययात् ॥७६

मुनि तो सर्वदा सत्यवक्ता होते हैं अतः उस महामुनि का [illegible] किस प्रकार से [illegible] होगा । [illegible] आपका पुत्र राम महान वीर्य वाले उस श्रेष्ठ नृप को बल पूर्वक [illegible] देगा । हे महाबाहो ! [illegible] पहिले ही ऐसी प्रतिज्ञा कर चुका है । कारण यह [illegible] कि वियोग के शोक से संतप्त होकर मेरे ही समक्ष से अपने वक्षःस्थल को प्रताड़ित किया [illegible] ।७१-७२। आपने अपने उरः स्थल को बहुत ही दुःख से परीत होकर इक्कीस बार प्रताड़ित किया [illegible] सो [illegible] भी इक्कीस बार ही इस सम्पूर्ण भूमण्डल को क्षत्रियों से रहित करूँगा ।७३। हे [illegible] ! इसीलिए पिता आपके द्वारा यह निरन्तर रोके जाने पर भी भविष्य में होने वाले अर्थ के [illegible] से ऐसा [illegible] ही करेगा क्योंकि ऐसा ही होनहार [illegible] ।७४। वह साक्षात् [illegible] और महात्मा [illegible] । उसके वध करने [illegible] पातक भी होगा । [illegible] रीति से कहकर हे महाराज ! [illegible] ब्रह्माजी [illegible] पुत्र भृगुमुनि ने फिर यह भी कहा था कि वह राजा महान भाग वाला है और वृद्धों की उपासना करने वाला है । साक्षात् भगवान् हरि के अंश दत्तात्रेय मुनि से उसने ज्ञान [illegible] किया है और महती मति से सुसम्पन्न है । ऐसे [illegible] वध [illegible] भी महान् पातक है । इतना ही कहकर भविष्य में आने वाले काल के पर्यय से वे विद्वान् भृगु जैसे ही आये थे वैसे ही वहाँ से चले गये थे ।७५-७६।

— x —

॥ परशुराम का [illegible] गमन ॥

सगर उवाच—

ब्रह्मपुत्र महाभाग [illegible] भार्गवचेष्टितम् ।
यच्चकार महावीर्य्यो राम: क्रुद्धो हि कर्मणा ॥१

वसिष्ठ उवाच—

गते तस्मिन्महाभागे भृगौ पितृपरायण: ।
राम: प्रोवाच संक्रुद्धो मुंचन्श्वासान्मुहुर्मुहु: ॥२

परशुराम उवाच—

अहो पश्यत मूढत्वं राज्ञो ह्युत्पथगामिन: ।
कार्त्तवीर्यस्य यो विप्रमक्रं महातपोधनम् ॥३
दैवं हि बलवन्मन्ये यत्प्रभावाच्छरीरिण: ।
शुभं वाप्यशुभं सर्वं प्रकुर्वंति विमोहिता: ॥४
शृण्वंतु ऋषय: सर्वे प्रतिज्ञा क्रियते मया ।
कार्त्तवीर्यं निहत्याजौ पितुर्वैरं प्रसाधये ॥५
यदि राजा सुरै: सर्वैरिंद्राद्यैर्दानवैस्तथा ।
रक्षिष्यते तथाप्येनं संहरिष्यामि नान्यथा ॥६
एवमुक्तं समाकर्ण्य रामेण सुमहात्मना ।
जमदग्निरुवाचेदं पुत्रं साहसभाषिणम् ॥७

राजा सगर ने कहा—हे महाभाग ! हे ब्रह्मपुत्र ! [illegible] आप [illegible] करके भार्गव के चेष्टित का वर्णन कीजिए । महान् वीर्य वाले राम ने राजा के इस कुत्सित कर्म से क्रुद्ध होकर जो [illegible] कुछ किया था ।१। वसिष्ठ जी ने कहा—जब महाभाग भृगुमुनि वहाँ [illegible] चले गये थे तो [illegible] समय में पिता के चरणों की सेवा में तत्पर रहने वाले राम ने बारम्बार अत्युष्ण श्वासों का मोचन करते हुए बहुत ही क्रुद्ध होकर कहा [illegible] ।२। परशुराम ने कहा—अहो ! उत्पथ के गमन करने वाले राजा की मूढ़ता को देखिए जिस कार्त्तवीर्य ने परम विद्वान् होते हुए [illegible] एक तपस्वी ब्राह्मण [illegible] वध करने का उद्यम किया था ।३। मैं यह बात [illegible] हूँ कि दैव बड़ा बलवान् होता है

ललिता परमेश्वरी सेना क्रमयात्रा

अथ राजनायिका स्थिता ज्वलितांकुशा फणिसमानपाशभृत् ।
कलनिक्वणद्वलयमैक्षवं धनुर्दधती प्रदीप्तकुसुमेषुपंचका ॥१
उदयत्सहस्रमहसा सहस्रतोऽप्यतिपाटलां निजवपुः प्रभाभरम्
किरती दिशासु वदनस्य कांतिभिः सृजतीव
चन्द्रमयमभ्रमंडलम् ॥२
दशयोजनायतिमता जगत्त्रयीमभिवृण्वता
विशदमौक्तिकात्मना ।
धवलातपत्रवलयेन भासुरा शशिमंडलस्य सखितामुपेयुषा ॥३
अभिवीजिता च मणिकांतशोभिना
विजयादिमुख्यपरिचारिकागणैः ।
नवचन्द्रिकालहरिकांतिकंदलीचतुरेण चामरचतुष्टयेन च ॥४
शक्तिचक्रराज्यपदवीमभिसूचयंती साम्राज्य-
चिह्नशतमंडितसैन्यवेशा ।
संगीतवाद्यरचनाभिरथामरीणां संस्तूयमानविभवा
विशदप्रकाशा ॥५
वाचामगोचरमगोचरमेव बुद्धेरीदृक्तया ■
कलनीयमनन्यतुल्यम् ॥६
त्रैलोक्यगर्भपरिपूरितशक्तिचक्रसाम्राज्यसं-
पदभिमानमभिस्पृशंती ।
आबद्धभक्तिविपुलांजलिशेखराणामाराद्दहंप्रथमिका
कृतसेवनानाम् ॥७

इसके अनन्तर वह राज नायिका वहाँ पर विराजमान थी जिसका अंकुश ज्वलित था और जो सर्प के ही तुल्य पाश को धारण करने वाली थी। मधुर क्वणन करने वाला वलय और इक्षु ■ धनुष धारण किये हुए थी। उसके बाण पाँच कुसुमों के थे ।२। उदित सूर्य के तेज से भी अत्यधिक

जमदग्नि ने कहा—हे राम ! [illegible] आप मेरी बात सुनिए । [illegible] सत्पुरुषों के सनातन (सर्वदा से चले आने वाले) धर्म को बतलाऊँगा। जिसको सुनकर सभी मानव धर्म के करने वाले हो जाया करते हैं ।८। महान [illegible] वाले साधुजन होते [illegible] और जो इस संसार से निरन्तर जन्म-मरण के महान कष्ट से छुटकारा पाने की आकांक्षा रखने वाले हैं वे कभी भी किसी पर प्रकोप नहीं किया करते [illegible] चाहे कोई उनको प्रताड़ित अथवा निहत [illegible] क्यों न करे तो भी वे कुपित नहीं हुआ करते हैं ।९। जो महाभाग क्षमा ही को धन मानने वाले [illegible] तथा परम दमनशील और तपस्वी होते [illegible] उन साधु कर्म करने वालों के लिए निरन्तर लोक [illegible] होते हैं ।१०। जो महापुरुष हैं वे दुष्टों के द्वारा दण्ड आदि से ताड़ित होते हुए और बुरे वचनों द्वारा निर्भेत्सित होते हुए भी कभी [illegible] में क्षोभ नहीं किया करते [illegible] वे ही पुरुष साधु कहे [illegible] करते हैं ।११। [illegible] करने वाले को भी ताड़ित किया करता है वह कभी भी साधु नहीं हो [illegible] है प्रत्युत पाप का भागी ही होता [illegible] । हम लोग तो ब्राह्मण और साधु [illegible] क्षमा रखने से ही द्वारा परम पूज्य पद को प्राप्त हुए [illegible] ।१२। [illegible] के वध से भी अधिक एक राजा के वध करने में महान् पातक होता है क्योंकि राजा में भगवान् [illegible] अंश होता है । इसी कारण से मैं अब आपको निवारित [illegible] हूँ और यह उपदेश देता [illegible] कि [illegible] को धारण करो [illegible] तपश्चर्या करो ।१३। वसिष्ठजी ने कहा—नृपनन्दन ! इस रीति से भली भाँति दिये हुए आदेश को समाप्त कर राम ने परमाधिक क्षमा के स्वभाव वाले और वादियों के दमन करने वाले अपने पिताजी से कहा ।१४।

परशुराम उवाच—

शृणु तात महाप्राज्ञ विज्ञप्ति मम सांप्रतम् ।
भवता मम उद्दिष्टः साधूनां सुमहात्मनाम् ॥१५

[illegible] क्षमः साधुर्दानेषु गुरुष्वीश्वरभावनैः ।
कर्तव्यो दुष्टचेष्टेषु न क्षमः सुखदो भवेत् ॥१६

तस्मादस्य वधः कार्यः कार्तवीर्यस्य वै मया ।
देवाज्ञां माननीयाश्च साधये वैरमात्मनः ॥१७

जमदग्निरुवाच—

शृणु राम महाभाग वचो मम समाहितः ।

परशुराम का शिवाराधन

वसिष्ठ उवाच—

ब्रह्मणो वचनं श्रुत्वा [illegible] प्रणम्य जगद्गुरुम् ।
प्रसन्नचेताः सुमुखः शिवलोकं जगाम [illegible] ॥१
लक्षयोजनमूर्द्ध्वं च ब्रह्मलोकाद्विलक्षणम् ।
अथानिर्वचनीयं च योगिगम्यं परात्परम् ॥२
वैकुण्ठो दक्षिणे यस्माद्गौरीलोकश्च वामतः ।
यदधो ध्रुवलोकश्च सर्वलोकपरस्तु सः ॥३
तपोवीर्यगती रामः शिवलोकं ददर्श च ।
उपमानेन रहितं नानाकौतुकसंयुतम् ॥४
वसंति यत्र योगीन्द्राः सिद्धाः पाशुपताः शुभाः ।
कोटिकल्पतपःपुण्याः शांता निर्मत्सरा जनाः ॥५
पारिजातद्रुमैर्युक्तैः शोभितं कामधेनुभिः ।
योगेन योगिना सृष्टं स्वेच्छया शंकरेण हि ॥६
शिल्पिना गुरुणा स्वर्णे न सृष्टं विश्वकर्मणा ।
सरोवरशतैर्दिव्यैः पद्मरागविराजितैः ॥७

श्री वसिष्ठ जी ने कहा—वह राम ब्रह्माजी के इस वचन को सुनकर फिर ब्रह्माजी के चरणों में प्रणाम करके अत्यन्त ही प्रसन्न चित्त वाला होता हुआ वहाँ से शिव के लोक को चला ।१। वह शिवका लोक वहाँ से एक लाख योजन ऊपर की ओर था और वह इस ब्रह्माजी [illegible] लोक से भी अधिक विलक्षण [illegible] । उसका वर्णन वचनों के द्वारा तो हो ही नहीं सकता है । ऐसा ही वह अनिर्वचनीय था और पर से भी पर था तथा योगी जनों के ही द्वारा गमन करने के योग्य था ।२। जिस शिवलोक [illegible] वैकुण्ठ तो दक्षिण दिशा में है और गौरी लोक बाँई ओर है तथा जिनके नीचे की ओर ध्रुव लोक [illegible] और वह शिवलोक सभी लोकों से पर है ।३। तपश्चर्या और बल-विक्रम के वीर्य की गति वाले [illegible] [illegible] ने उस शिवलोक का दर्शन कर लिया [illegible] । वह अनेक प्रकार के कौतुकों से युक्त था तथा उसकी समानता रखने वाला अन्य कोई भी उपमान [illegible] नहीं [illegible] ।४। वह ऐसा लोक था जहाँ

पर केवल महान् योगीन्द्र-सिद्ध और [illegible] शुभ पाशुपत ही निवास किया करते हैं। जो करोड़ों कल्पों [illegible] करने के महान् पुनीत पुण्य वाले—परम शान्त शील-स्वभाव वाले और मत्सरता से रहित बन गये थे ही उस लोक के निवास करने वाले थे।५। वह लोक पारिजात पुष्प वाले वृक्षों से [illegible] कामधेनुओं से परम सुशोभित [illegible] जिन [illegible] योगिराजाधिराज भगवान् शङ्कर ने अपने ही योगबल से स्वेच्छा पूर्वक सृजन किया था। समस्त कामनाओं को पूर्ण करने वाली धेनु कामधेनु कही जाती है तथा मन की इच्छाओं को पूरा करने वाला वृक्ष कल्पवृक्ष होता है उन्हीं का एक भेद परिजात देव वृक्ष है।६। इस लोक की रचना ऐसी ही परम अद्भुत थी कि विश्व के शिल्पियों के परम गुरु विश्वकर्मा ने कभी स्वप्न में भी नहीं देखी थी फिर उसके भी द्वारा स्वयं ऐसी रचना का करना तो बहुत ही दूर की बात है। उस लोक में परम दिव्य सैकड़ों ही सरोवर थे जिनके घाट और सीढ़ियाँ तथा सम्पूर्ण प्राकार मण्डल पद्मराग नाम वाली मणियों के द्वारा विनिर्मित था। इन सब सरोवरों [illegible] वह लोक परमाधिक शोभा से समन्वित था।७।

शोभितं चातिरम्यं [illegible] संयुक्तं मणिवेदिभिः।
सुवर्णरत्नरचितप्राकारेण समावृतम् ॥८

आवृद्धं शंकरस्यापि स्वच्छं क्षीरनिभं परम्।
चतुर्द्वारसमायुक्तं शोभितं मणिवेदिभिः ॥९

रत्नसोपानयुक्तैश्च रत्नस्तम्भकपाटकैः।
नानाचित्रविचित्रैश्च शोभितैः सुमनोहरैः ॥१०

तन्मध्ये भवनं रम्यं सिंहद्वारोपशोभितम्।
ददर्श रामो धर्मात्मा विचित्रमिव संयतः ॥११

तत्र स्थितौ द्वारपालौ ददर्शातिभयंकरौ।
महाकरालदंतास्यौ विकृतारक्तलोचनौ ॥१२

दग्धशैलप्रतीकाशौ महाबलपराक्रमौ।
विभूतिभूषितांगौ च व्याघ्रचर्मांबरौ च तौ ॥१३

त्रिशूलपट्टिशधरौ ज्वलंतौ ब्रह्मतेजसा।
तौ दृष्ट्वा मनसा भीतः किंचिदाह विनीतवत् ॥१४

वामभागे कार्तिकेयं दक्षिणे च गणेश्वरम् ।
नंदीश्वरं महाकालं वीरभद्रं च तत्पुरः ॥२३
क्रोडे दुर्गां शतभुजां दृष्ट्वा नत्वाथ तामपि ।
स्तोतुं प्रचक्रमे विद्वान्गिरा गद्गदया विभुम् ॥२४
नमस्ते शिवमीशानं विभुं व्यापकमव्ययम् ।
भुजंगभूषणं चोग्रं नृकपालस्रगुज्ज्वलम् ॥२५
यो विभुः सर्वलोकानां सृष्टिस्थितिविनाशकृत् ।
ब्रह्मादिरूपधृग्ज्येष्ठस्तं त्वां वेद कृपार्णवम् ॥२६
वेदा न शक्ता यं स्तोतुमवाङ्मनसगोचरम् ।
ज्ञानबुद्ध्योरसाध्यं च निराकारं नमाम्यहम् ॥२७
शक्रादयः सुरगणा ऋषयो मनवोऽसुराः ।
न यं विदुर्यथातत्त्वं तं नमामि परात्परम् ॥२८

भगवान् शिव को भैरव—योगिनियाँ और रुद्र के गणों ने चारों ओर [illegible] घेर [illegible] था । ऐसी दशा में विराजमान हुए भगवान शिव का दर्शन करके [illegible] ने बड़े ही हर्ष से अपने सिर को उनके चरणों में झुका [illegible] [illegible] किया था ।२२। उनके वाम भाग में स्वामी कार्तिकेय थे और दाहिनी ओर गणनायक गणेश विराजमान [illegible] [illegible] उनके सामने नन्दीश्वर-महाकाल और वीरभद्र स्थित हो रहे [illegible] ।२३। शिव [illegible] गोद में सौ भुजाओं वाली जगज्जननी दुर्गा विद्यमान थी । इनका दर्शन करके राम ने उनको भी प्रणाम किया था । इसके [illegible] विद्वान् राम ने अपनी गद्गद वाणी [illegible] उन विभु [illegible] स्तुति करने का उपक्रम किया [illegible] ।२४। राम ने कहा था—मैं ईशान—विभु—व्यापक—अव्यय—भुजङ्गों के भूषणों वाले—उग्र और नरों के कपालों की माला [illegible] धारण करने से परमोज्ज्वल शिव की सेवा में प्रणाम करता हूँ ।२४-२५। जो विभु समस्त लोकों की सृष्टि स्थिति और विनाश के करने वाले [illegible] ऐसे ब्रह्मा आदि के [illegible] को [illegible] करने वाले—सबसे बड़े पूज्य आप कृपा के सागर को मैं जानता [illegible] ।२६। जिन मन और वाणी के अगोचर प्रभु की स्तुति करने [illegible] वेद [illegible] समर्थ नहीं हैं [illegible] ज्ञान और बुद्धि के द्वारा साधन के अयोग्य तथा बिना आकार वाले प्रभु शिव [illegible] चरणों में [illegible] नमस्कार करता हूँ ।२७। महेन्द्र आदि देवगण—महर्षिगण—मनु और असुर

ये ■■ जिनके स्वरूप का यथार्थ रूप से नहीं जाना करते ■ उन पर से भी पर प्रभु शिव के लिए मैं प्रणिपात करता हूँ ।२८।

यस्यांशांशेन सृज्यंते लोकाः सर्वे चराचराः ।
लीयंते ■ पुनर्यस्मिंस्तं नमामि जगन्मयम् ॥२९

यस्येषत्कोपसंभूतो हुताशो दहतेऽखिलम् ।
सोर्ध्वलोकं सपातालं तं नमामि हरं परम् ॥३०

पृथ्वीपवन सलिलाम्भोनभोयज्वेंदुभास्कराः ।
मूर्त्तयोऽष्टौ जगत्पूज्यास्तं यज्ञं प्रणमाम्यहम् ॥३१

यः कालरूपो जगदादिकर्त्ता पाता पृथग्रूपधरो जगन्मयः ।
हर्त्ता पुनः कल्पयुगस्यकाले तं कालरूपं शरणं प्रपद्ये ॥३२

इत्येवमुक्त्वा स तु भार्गवो मुदा पपात तस्याङ्घ्रिसमीप आतुरः ।
उत्थाप्य तं वामकरेण लीलया दधौ तदा मूर्ध्नि करं कृपार्णवः ॥३३

आशीर्भिरेनं ह्यभिनंद्य सादरं निवेशयामास गणेशपूर्वतः ।
उवाच रामामभिवीक्ष्य चाम्बुमा कृपार्द्रदृष्ट्याऽखिलकामपूरकः ॥३४

शिव उवाच—

कस्त्वं बटो कस्य कुले प्रसूतः किं कार्यमुद्दिश्य भवानिहागतः ।
विनिर्दिशाहं तव भक्तिभावतः प्रीतः प्रदद्यां भवतो मनोगतम् ॥३५

जिन पूज्य देव के अंशों के भी अंशों ■ द्वारा चर और अचर ■■■ लोक सृजित हुआ करते हैं और फिर जिसमें ही ये सब लीन हो जाया करते ■ उन जगन्मय प्रभु को मैं ■■■■■ करता ■ ।२९। जिन प्रभु के बहुत ही ■■■ कोप से समुत्पन्न हुआ अग्नि ऊर्ध्वलोक और पाताल के सहित सम्पूर्ण

इस विश्व को दग्ध कर देता है हर की सेवा में जो पर मैं प्रणाम हूँ ।३०। जिसकी पृथ्वी-पवन-अग्नि-जल-नभ-यज्वा-चन्द्र और भास्कर में आठ मूर्त्तियाँ जगत् की पूज्य हैं उन यज्ञ देव को मैं नमस्कार करता हूँ ।३१। जो काल के वाले सम्पूर्ण जगत् के आदि करने वाले अर्थात् स्रष्टा इसका पालन करने वाले और अपना यह जगन्मय धारण किया करते हैं। फिर रुद्र का धारण करके अन्त में इस सबका संहार करने वाले हैं उन काल के रूप वाले भगवान् शंकर की शरणागति में प्राप्त होता ।३२। वह भार्गव राम इस रीति से इतना ही स्तवन करके बड़े ही आनन्द से उन शिव चरणों के समीप परमाधिक आतुर होकर गिर पड़ा था। तब के सागर भगवान् शंकर ने अपने बाँये करकमल से लीला से ही उसको उठाकर उसके मस्तक पर अपनाकर रख दिया था ।३३। अनेक आशीर्वचनों के द्वारा उसका अभिनन्दन करके बड़े ही आदर के साथ अपने प्रिय आत्मज गणेश के आगे उसको बिठा दिया था। फिर अपनी भामा उमा का अभिवीक्षण करके समस्त कामनाओं पूर्ण करने वाले शिव ने कृपार्द्र दृष्टि से उससे कहा था ।३४। शिव ने कहा—हे बटो! आप यह बताइए कि आप कौन और किसके वंश में आपने जन्म ग्रहण किया और किस कार्य के करने उद्देश्य लेकर यहाँ पर समागत हुए हैं—यह सभी कुछ सूचित कीजिए। आपकी इस प्रकार की स्तुति को भावना आपके ऊपर परम प्रसन्न हो गया हूँ तथा जो भी कुछ आपके मन का अभीप्सित है उसको मैं आपके लिए दे दूँगा ।३५।

इत्येवमुक्तः भृगुर्महात्मना हरेण विश्वार्त्तिहरेण सादरम् ।
पुनश्च नत्वा त्रिपुरां पतिं गुरुं कृपासमुद्रं समुवाच
सस्वरम् ॥३६

परशुराम उवाच :
भृगोश्चाहं कुले जातो जमदग्निसुतो विभो।
रामो नाम जगद्वंद्य त्वामहं शरणं गतः ॥३७

यत्कार्यमहं नाथ तव सांनिध्यमागतः।
तं प्रसाधय विश्वेश वांछितं काममेव मे ॥३८

मया सह मुहुःखार्त्तान्भ्रातॄन्मात्रा सहैव मे ।
सांत्वयित्वा स मंत्रज्ञोऽजीवयत्पितरं मम ॥४३

अनागते भृगौ मातुर्दुःखेनाहं प्रकोपितः ।
प्रतिज्ञां कृतवान्देव सांत्वयन्मातरं स्वकाम् ॥४४

त्रिःसप्तकृत्वो यदुरस्ताडितं मातुरात्मनः ।
तावत्संख्यमहं पृथ्वीं करिष्ये अक्षत्रियाम् ॥४५

इत्येवं परिपूर्णा मे कर्ता देवो जगत्पतिः ।
महादेवो ह्यतो नाथ त्वत्सकाशमिहागतः ॥४६

वसिष्ठ उवाच—

इत्येवं तद्वचः श्रुत्वा दृष्ट्वा दुर्गामुखं हरः ।
बभूवानम्रवदनश्चिंतयानः क्षणं तदा ॥४७

एतस्मिन्नंतरे दुर्गा विस्मिता प्राहसद्भृशम् ।
उवाच च महाराज भार्गवं वैरसाधकम् ॥४८

तपस्विन्द्विजपुत्र क्ष्मां निर्भूपां कर्तुमिच्छसि ।
त्रिः सप्तकृत्वः कोपेन साहसस्ते महान्वटो ॥४९

उस समय में मैं रुदन कर रहा [illegible] और अपनी माता के [illegible] मेरे सब भाई भी क्रन्दन कर रहे थे । [illegible] मन्त्र शास्त्र के [illegible] मुनि ने सबको सान्त्वना देकर मेरे मृत पिता यमदग्नि को संजीवनी विद्या से जीवित कर दिया था ।४३। जब तक भृगु मुनि वहाँ पर नहीं आये थे उस बीच में मैं [illegible] के वैधव्य के दुःख से बहुत ही कुपित हो [illegible] [illegible] । हे देव ! मैंने अपनी माता को सान्त्वना देते हुए एक प्रतिज्ञा कर डाली थी ।४४। मेरी माता ने करुण क्रन्दन करते हुई ने जो इक्कीस बार अपना उरःस्थल ताड़ित किया था उसी गणना को लेकर ही [illegible] यह प्रतिज्ञा की थी कि इक्कीस बार ही [illegible] इस पृथ्वी को क्षत्रियों से रहित कर दूँगा ।४५। यह इस रीति से की हुई मेरी प्रतिज्ञा परिपूर्ण हो जावे—इसके पूर्ण करने वाले जगत् [illegible] पति देवेश्वर आप ही हैं । आप तो सब [illegible] बड़े देव हैं । हे नाथ ! इसीलिए मैं अब आपके चरणों की सन्निधि [illegible] यहाँ [illegible] [illegible] हूँ ।४६। वसिष्ठजी ने कहा—भगवान् शंकर ने इस प्रकार से उस [illegible] के वचनों [illegible] [illegible] करके जगज्जननी दुर्गा के मुख की ओर [illegible] [illegible] और [illegible] समय में एक क्षण के लिए

नीचे की ओर अपना मुख करके चिन्तन करने वाले प्रभु शंकर हो गये थे ।४७। इसी [illegible] में जगदम्बा देवी दुर्गा विस्मित होती हुई अत्यधिक हँस गयी थीं । और हे महाराज ! वैर के [illegible] उस भार्गव राम [illegible] बोली ।४८। जगदम्बा ने कहा था कि हे तपस्विन् ! द्विज के पुत्र ! क्या तुम इस भूमण्डल को भूपों से विहीन करने की इच्छा कर रहे हो ? और वह भी एक-दो बार नहीं प्रत्युत कोप से इक्कीस बार ऐसा करना चाहते हो । हे बटो ! यह तो आपका एक बहुत ही महान साहस है ।४९।

हंतुमिच्छसि निःशस्त्रः सहस्रार्जुनमीश्वरम् ।
भ्रूभंगलीलया येन रावणोऽपि निराकृतः ॥५०
तस्मै प्रदत्तं दत्तेन श्रीहरेः कवचं पुरा ।
शक्तिरप्यमोघवीर्या [illegible] तं कथं हंतुमिच्छसि ॥५१
शंकरः करुणासिंधुः कर्तुं चाप्यन्यथा विभुः ।
न चान्यः शंकरात्पुत्र तत्कार्यं कर्तुमीश्वरः ॥५२
अथ देव्या अनुमतिं प्राप्य शंभुर्दयार्णवः ।
अव्ययाद्भवया वाचा जमदग्निसुतं विभु ॥५३
शिव उवाच—
अद्यप्रभृति विप्र त्वं मम स्कन्दसमो [illegible] ।
दास्यामि मंत्रं दिव्यं ते कवचं च महामते ॥५४
लीलया मत्प्रसादेन कार्तवीर्यं हनिष्यसि ।
त्रिःसप्तकृत्वो निर्भूपां महीं चापि करिष्यसि ॥५५
इत्युक्त्वा शंकरस्तस्मै ददौ मंत्रं सुदुर्लभम् ।
त्रैलोक्यविजयं नाम कवचं परमाद्भुतम् ॥५६

उस राजा सहस्रार्जुन [illegible] बिना ही शस्त्रों वाले होते हुए [illegible] हनन करने [illegible] इच्छा कर रहे हो जिसने अपनी भ्रूभङ्ग की लीला [illegible] अर्थात् [illegible] सी भृकुटी तिरछी करके रावण जैसे महापराक्रमी को भी निराहत कर दिया था अर्थात् अपने सामने निराहत करके भगा दिया [illegible] ।५०। [illegible] राजा को तो पहिले दत्तात्रेय मुनि ने श्री हरि [illegible] कवच [illegible] किया था और अत्यन्त वीर्य से समन्वित एक शक्ति भी उसके लिए दी थी । उसको

तुम किस प्रकार से मार देना चाहते हो ? ।५१। भगवान् शंकर तो [illegible] के अथाह सागर [illegible] और करुणा [illegible] ही सिद्ध हो जाते [illegible] । यह विभु तो परम समर्थ [illegible] सभी कुछ अन्यथा भी कर सकते हैं। हे पुत्र ! भगवान् शंकर [illegible] [illegible] अतिरिक्त अन्य कोई भी इस कार्य के करने में समर्थ नहीं [illegible] ।५२। इसके अनन्तर [illegible] [illegible] इन वचनों से [illegible] के सादर भगवान् शम्भु ने दुर्गा देवी की भी अनुमति [illegible] कर ली थी और फिर विभु शम्भु ने जमदग्नि [illegible] पुत्र से परम [illegible] वाणी के द्वारा कहा [illegible] ।५३। भगवान शिव ने कहा—हे विप्र ! आज से लेकर तुम मेरे पुत्र कार्तिकेय के समान हो जाओगे। हे महान् मति वाले ! [illegible] आपको परम दिव्य मन्त्र और कवच दे दूँगा ।५४। योंही बिनाही किसी आयास के लीला [illegible] से जिसके [illegible] के प्रभाव से आप कार्त्तवीर्य का हनन कर दोगे और जैसी तुम्हारी प्रतिज्ञा है [illegible] [illegible] पूर्ण होगी और इक्कीस बार इस पृथ्वी को भी भूपों से रहित तुम कर दोगे ।५५। [illegible] यह इस रीति से कहकर भगवान् शम्भु ने उस परशुराम के लिए सुदुर्लभ मन्त्र प्रदान कर दिया था और तीनों लोकों का विजय करने [illegible] परम अद्भुत [illegible] भी उसे दे दिया था ।५६।

नागपाशं पाशुपतं ब्रह्मास्त्रं [illegible] सुदुर्ल्लभम् ।
नारायणास्त्रमाग्नेयं वायव्यं वारुणं तथा ।।५७
गान्धर्वं गारुडं चैव जृम्भणास्त्रं महाद्भुतम् ।
गदां शक्तिं च परशुं शूलं दण्डमनुत्तमम् ।।५८
शस्त्रास्त्रग्राममखिलं प्रहृष्टः संबभूव ह ।
नमस्कृत्य शिवं शांतं दुर्गां स्कन्दं गणेश्वरम् ।।५९
परिक्रम्य ययौ रामः पुष्करं तीर्थमुत्तमम् ।
सिद्धं कृत्वा शिवोक्तं तु मन्त्रं कवचमुत्तमम् ।।६०
साधयामास निखिलं स्वकार्यं भृगुनन्दनः ।
निहत्य कार्त्तवीर्यं तं ससैन्यं सकुलं मुदा ।
विनिवृत्तो गृहं प्रागात्पितुः स्वस्य भृगूद्वहः ।।६१

नागपाश—पाशुपत और सुदुर्लभ ब्रह्मास्त्र—नारायणास्त्र—आग्नेय—वायव्य—वारुण अस्त्र भी दिये थे ।५७। गान्धर्व-गारुड़ और [illegible] अद्भुत जृम्भणा भी प्रदत्त कर दिया था । ऐसा गदा-शक्ति-शूल-उत्तम दण्ड उसको

दे दिया था ।५८। इस तरह सम्पूर्ण शस्त्रों और अस्त्रों के समूह को पाकर राम बहुत ही प्रसन्न हुआ था । फिर [illegible] परशुराम ने परम शान्त शिव को—दुर्गा देवी को—स्वामी कार्त्तिकेय को और गणेश्वर की सेवा में प्रणि-[illegible] करके [illegible] इन सबकी परिक्रमा करके फिर वह राम परमोत्तम तीर्थ पुष्कर को वहाँ से चला गया [illegible] और वहाँ पर संस्थिति करते हुए भगवान् शिव के द्वारा बताये हुए [illegible] [illegible] को और कवच को सिद्ध किया था ।५९-६०। फिर भृगु नन्दन ने बड़े ही [illegible] से सम्पूर्ण कुल और सेना के सहित राजा कार्त्तवीर्य का निहनन करके अपना पूर्ण कार्य साधित किया [illegible] । फिर वह राम अपने पिता के घर को विनिवृत्त होकर चला गया था ।६१।

—×—

॥ [illegible] कथा ॥

सगर उवाच—

ब्रह्मपुत्र महाभाग महान्मेऽनुग्रहः कृतः ।
यदिदं कवचं मह्यं प्रकाशितमनामयम् ॥१
और्वेणानुगृहीतोऽहं कृतास्त्रो यदनुग्रहात् ।
भवतस्तु कृपापात्रं जातोऽहमधुना विभो ॥२
रामेण भार्गवेन्द्रेण कार्त्तवीर्यो नृपो गुरो ।
यथा समापितो वीरस्तन्मे विस्तरतो वद ॥३
कृपापात्रं स दत्तस्य राजा रामः शिवस्य च ।
उभौ तौ समरे वीरौ अघटाते कथं गुरो ॥४

वसिष्ठ उवाच—

शृणु राजन्प्रवक्ष्यामि चरितं पापनाशनम् ।
कार्त्तवीर्यस्य भूपस्य रामस्य च महात्मनः ॥५
[illegible] रामः कवचं लब्ध्वा मंत्रं चैव गुरोर्मुखात् ।
चकार साधनं तस्य [illegible] परमया युतः ॥६
भूमिशायी त्रिषवणं स्नानसंध्यापरायणः ।
उवास पुष्करे राम शतवर्षमतंद्रितः ॥७

राजा सगर ने कहा—हे ब्रह्माजी के पुत्र ! आप तो महान् ज्ञान वाले हैं। मेरे ऊपर आपने बड़ा भारी [illegible] किया है कि यह कवच जो कि अनामय है, मेरे सामने आपने प्रकाशित कर दिया है।१। कृतात्मा मैं और्व के द्वारा अनुगृहीत हुआ हूँ। हे विभो ! इस [illegible] मैं तो मैं आपकी कृपा का पात्र बन गया हूँ।२। हे गुरुदेव ! भार्गवेन्द्र परशुराम ने राजा कार्त्तवीर्य को जो बड़ा ही वीर था किस प्रकार से [illegible] किया था यह सब विस्तार के [illegible] मेरे सामने वर्णन करके सुनाइए।३। वह राजा तो दत्तात्रेय मुनि की कृपा का पात्र था और राम [illegible] शिव की अनुकम्पा का भाजन था। हे गुरुवर ! ये दोनों ही महान् वीर थे। [illegible] क्षेत्र में किस प्रकार से इन्होंने युद्ध किया था।४। वसिष्ठ जी ने कहा—हे राजन् ! [illegible] आप श्रवण कीजिए [illegible] इस चरित को बतलाऊँगा क्योंकि यह चरित तो पापों का विनाश कर देने वाला है। यह चरित महान् बलशाली राजा कार्त्तवीर्य का तथा महान् आत्मा वाले परशुराम के महायुद्ध का है।५। उन परशुराम [illegible] गुरुदेव के मुख से इस कवच और मन्त्र की दीक्षा ग्रहण की थी फिर उन परशुराम ने बड़ी भारी भक्ति से युक्त होकर इनको सिद्ध किया था।६। भूमि पर इन्होंने [illegible] किया था—तीनों कालों में सन्ध्योपासना की थी और यह स्नान तथा सन्ध्या में परायण हो गये थे। इस प्रकार से यह सब साधना करते हुए राम [illegible] ही समाहित होकर एक सौ वर्ष [illegible] पुष्कर में रहे थे अर्थात् पुष्कर क्षेत्र [illegible] ही निवास किया था।७।

समित्पुष्पकुशादीनि द्रव्याण्यहरहर्मुनिः ।
आनीय काननाद्भूप प्रायश्छत्रकृतव्रणः ॥८
ससत्त्वं ध्यानसंयुक्तो रामो मतिमतां वरः ।
आराधयामास विभुं कृष्णं कल्मषनाशनम् ॥९
तस्यैवं यजमानस्य रामस्य जगतीपते ।
गतं वर्षशतं तत्र ध्यानयुक्तस्य नित्यदा ॥१०
एकदा तु महाराज रामः स्नातुं गतो महान् ।
मध्यमं पुष्करं तत्र दर्भार्थमनुत्तमम् ॥११
मृग एकः समायातो मृग्या युक्तः पलायितः ।
व्याधस्य मृगया प्राप्तो घर्मतप्तोऽतिपीडितः ॥१२

पिपासितो महाभाग जलपानसमुत्सुकः ।
रामस्य पश्यतस्तत्र सरसस्तटमागतः ॥१३

पश्चान्मृगी समायाता भीता [illegible] चकितेक्षणा ।
उभौ तौ पिबतस्तत्र जलं शंकितमानसौ ॥१४

हे भूप ! अकृतव्रण प्रतिदिन [illegible] भृगुवंशज परशुराम के लिए वन से समिधा पुष्प और कुशा आदि द्रव्यों को लाकर दिया करता था ।८। मतिमानों में परम श्रेष्ठ परशुराम निरन्तर ध्यान में संलग्न होकर समस्त कल्मषों के विनाश करने वाले विभु श्रीकृष्ण की आराधना किया करता था ।९। हे जगतीपते ! इस रीति से यजन करते हुए और वहाँ पर नित्य ही ध्यान में [illegible] सक्त रहने वाले परशुराम को एक सौ वर्ष व्यतीत हो गये थे ।१०। हे महाराज ! एक बार वह महान राम स्नान करने के लिए मध्यम पुष्कर में गया था और वहाँ पर उसने उत्तम आश्चर्य का अवलोकन किया था ।११। एक मृग मृगी के साथ दौड़ा हुआ वहाँ पर आया था जो एक [illegible] की मृगया को प्राप्त हो रहा [illegible] [illegible] श्रम से सन्तप्त होकर [illegible] पीड़ित [illegible] ।१२। हे महाभाग ! बहुत [illegible] प्यासा [illegible] और जलपान करने [illegible] लिए बड़ा ही उत्सुक हो रहा था परशुराम उसको [illegible] रहे थे [illegible] वहाँ पर [illegible] सरोवर [illegible] तट पर समागत हो [illegible] [illegible] ।१३। इसके पीछे-पीछे मृगी भी वहाँ पर आ गयी थी जो बहुत ही डरी हुई थी और उसके नेत्र चकित हो रहे [illegible] । वे दोनों ही बहुत शंकित मन वाले होते हुए वहाँ पर जलपान कर रहे हैं ।१४।

तावत्समागतो व्याधो बाणपाणिर्धनुर्द्धरः ।
स दृष्ट्वा तत्र संविष्टं रामं भार्गवनन्दनम् ॥१५

अकृतव्रणसंयुक्तं तस्थौ दूरकृतेक्षणः ।
स चिन्तयामास तदा शंकितो भृगुनन्दनात् ॥१६

अयं रामो महावीरो दुष्टनाशनकारकः ।
कथमेतस्य हन्म्येतौ पश्यतो मृगयामृगौ ॥१७

इति चिन्तासमाविष्टो व्याधो राजन्यसत्तम ।
तस्थौ तत्रैव रामस्य भयात्संत्रस्तमानसः ॥१८

पीत्वा जलं ततस्तौ तु वृक्षच्छायासमाश्रितौ ।
रामं दृष्ट्वा महात्मानं कथां तौ चक्रतुर्मुदा ॥२४

मृग्युवाच—कान्त यावैव तिष्ठावो यावद्रामोऽत्र संस्थितः ।
अस्य वीरस्य सान्निध्ये भयं नैवावयोर्भवेत् ॥२५

अत्राप्यागत्य चेद्व्याधो ह्यावयोः प्रहरिष्यति ।
दृष्टमात्रो हि मुनिना भस्मीभूतो भविष्यति ॥२६

इत्युक्तं वचनं मृग्या रामदर्शनतुष्टया ।
मृगश्चोवाच हर्षेण समाविष्टः प्रियां स्वकाम् ॥२७

एवमेव महाभागे यद्वै वदसि भामिनि ।
जानेऽहमपि रामस्य प्रभावं सुमहात्मनः ॥२८

यहाँ पर इतना ही कारण नहीं है किन्तु ये दोनों तो बड़े वेग और भय से आतुर हो रहे हैं—ऐसे ही दिखलाई दे रहे हैं। क्योंकि इनके सभी अङ्ग खिन्नता से संयुत हैं और ये दोनों ही कम्प से प्रकम्पित हो रहे हैं।२२। इस तरह चिन्तन करके मतिमान् वह परशुराम सत्र पुष्कर में संस्थित हो गया था और उसके साथ में शिष्य भी था। वह राम जब तक वहाँ बैठा रहा था तब तक वे दोनों मृग भी वहाँ पर संस्थित रहे थे।२३। जल-पान करके वे दोनों मृग एक वृक्ष की छाया का आश्रय ग्रहण करके बैठ गये थे। उस महान् वाले परशुराम दर्शन करके उन दोनों ने बड़े ही आनन्द के साथ आपस में बातचीत की थी।२४। मृगी ने मृग से कहा—हे कान्त ! हम दोनों यहीं पर स्थित रहेंगे जब तक यह परशुराम यहाँ पर संस्थित रहते हैं। इस वीर के समीप हम दोनों को कोई भय नहीं होगा।२५। यदि यहाँ पर भी व्याध आकर दोनों पर प्रहार करेगा तो इस मुनि के द्वारा केवल देखने ही से भस्मीभूत हो जायगा।२६। परशुराम के दर्शन करने से परम सन्तुष्ट मृगी के द्वारा इस प्रकार से यह वचन कहने पर वह मृग भी बड़े ही हर्ष से समाविष्ट होकर अपनी प्रिया से बोला था।२७। हे महाभागे ! यह बात तो इसी प्रकार की है। हे भामिनि ! आप यह निश्चित ही कह रही है। मैं भी परम महान् आत्मा वाले राम के प्रभाव को अच्छी तरह से जानता ।२८।

ततः संसिद्धकवचो राजानं हैहयाधिपम् ॥५३

हत्वा सपुत्रामात्यं च ससुहृद्बलवाहनम् ।

त्रिःसप्तकृत्वो निर्भूपां करिष्यत्यवनीं प्रिये ॥५४

वसिष्ठ उवाच—

एवमुक्त्वा मृगो राजन्विरराम मृगीं ततः ।

आत्मनो मृगभावस्य कारणं ज्ञातवान्स ह ॥५५

यदि यह भार्गव परशुराम [illegible] भद्रे ! अगस्त्य मुनि की कृपा को प्राप्त कर लेवे तो इसको सिद्धि हो सकती [illegible] । अगस्त्य मुनि उत्तम भक्ति के देने वाले कृष्ण प्रेमामृत नाम का स्तोत्र जानते हैं ।५०। उन महामुनि की कृपा से यदि उस स्तोत्र का ज्ञान प्राप्त कर लेवे तो उसको जानकर यह मन्त्र [illegible] और कवच की सिद्धि को प्राप्त कर लेगा। वह अगस्त्य मुनि तो तत्त्वों [illegible] अर्थ को जाने हुए हैं और वे बहुत ही दयालु तथा [illegible] [illegible] प्रदान करने वाले [illegible] ।५१। वे मुनि उस आनन्द-प्रद [illegible] ज्ञान का [illegible] राम के लिये उपदेश कर देंगे क्योंकि भगवान् श्रीकृष्ण का सम्पूर्ण चरित उनके मुनाओं से ही प्रथित [illegible] ।५२। श्रीकृष्ण मृत स्तोत्र [illegible] इस राम की महामति ज्ञान [illegible] कर लेगी। फिर इसको [illegible] कवच की संसिद्धि हो जायगी और कवच की सिद्धि वाला यह राम हैहयों [illegible] क्षत्रिय राजा का हनन पुत्र-पौत्र, मन्त्रीगण, मित्र-वर्ग-सेना और समस्त वाहनों के सहित करके [illegible] प्रिये ! फिर यह परशुराम इस मेदिनी को निश्चित रूप से इक्कीस बार क्षत्रिय राजाओं से रहित कर देगा—इसमें कुछ भी संशय नहीं है। श्री वसिष्ठजी ने कहा—इतना यह [illegible] अपनी प्रिया मृगी से कहकर हे राघव ! फिर [illegible] मृग शान्त [illegible] गया [illegible] और उसने मृग होने के शाप के कारण को [illegible] लिया था ।५३-५४-५५।

—×—

॥ परशुराम [illegible] अगस्त्याश्रम [illegible] आगमन ॥

सगर उवाच—

मुने परमतत्त्वज्ञ ध्यानज्ञानार्थकोविद ।

भगवद्भक्तिसंलीनमानसानुग्रहः कृतः ॥१

त्वयापि हि महाभाग यतः शंससि सत्कथाः ।

कृतार्थ है--इसमें लेशमात्र भी संशय नहीं है कि इन परशुराम वर्णन करने से आपको ऐसा ज्ञान हो गया है जो इन्द्रियों की पहुँच से भी दूर है।६। इसीलिए इसके पश्चात् अपनी आत्मा सम्पूर्ण मुझे भी कृपा करके बतलाइए। हे प्रभो! ऐसा वह कर्म हमने किया था जिसके कारण से हम दोनों ने यह पशु की तिर्यग् योनि की ।७।

इति वाक्यं समाकर्ण्य प्रियायाः स मृगः स्वयम् ।
वर्णयामास चरितं मृग्याश्चैवात्मनस्तथा ॥८

मृग उवाच—

शृणु प्रिये महाभागे यथाऽऽवां मृगतां गतौ ।
संसारेऽस्मिन्महाभागे भावोऽत्र भवकारणम् ॥९
जीवस्य सदसद्भ्यां हि कर्मभ्यामागतः स्मृतिम् ।
पुरा द्रविडदेशे तु नानाब्रह्मर्षिसमाकुले ॥१०
ब्राह्मणानां कुले चाऽहं कौशिकगोत्रिणाम् ।
पिता मे शिवदत्तोऽभून्नाम्ना शास्त्रविशारदः ॥११
तस्य पुत्रा वयं जाताश्चत्वारो द्विजसत्तमाः ।
ज्येष्ठो रामोऽनुजस्तस्य धर्मस्तस्यानुजः पृथुः ॥१२
चतुर्थोऽहं प्रिये जातो सूरिरित्यभिविश्रुतः ।
उपनीय क्रमात्सर्वाञ्छिवदत्तो महायशाः ॥१३
वेदान् ध्यापयामास सांगांश्च सरहस्यकान् ।
चत्वारोऽपि वयं वेदाध्ययनतत्पराः ॥१४

उस मृग ने इस अपनी प्रिया श्रवण करके स्वयं उस में अपना और अपनी प्रिया मृगी चरित्र वर्णन किया था।८। मृग ने कहा—हे महाभाग वाली प्रिये! आप सुनिए कि जिस प्रकार हम तुम दोनों इस मृग की जाति में देह धारण करने वाले हुए। महाभागे! इस संसार में इस भव अर्थात् ग्रहण करने का कारण एक भाव ही हुआ करता है। तात्पर्य यह कि जैसी जिसकी होगी वह वैसा ही उसके अनुरूप धारण किया करता है।९। जो भी सत् और असत् कर्म होते उनसे वह स्मृति को प्राप्त होता है।

बहुत पहिले अनेक प्रकार की ऋद्धियों से पूर्ण द्रविड़ देश में कौशिक गोत्र वाले ब्राह्मणों के कुल में मैंने जन्म ग्रहण किया [illegible]। मेरे पिता नाम [illegible] शिवदत्त हुए थे जो [illegible] शास्त्रों के अच्छे विद्वान् थे ।१०-११। उन शिवदत्त नामधारी विप्र के परम श्रेष्ठ द्विज हम चार पुत्र समुत्पन्न हुए थे । सबमें बड़ा राम था, उससे छोटा भाई धर्म था और उससे भी छोटा भाई पृथु नाम वाला हुआ था ।१२। हे प्रिये ! चौथा भाई [illegible] उत्पन्न हुआ [illegible] जो सुरि— इस नाम से प्रसिद्ध था । महा यशस्वी उस शिवदत्त ने [illegible] से सबका उपनयन संस्कार करा दिया [illegible] ।१३। और फिर उसने हम सबको रहस्य के सहित तथा समस्त वेद के अङ्ग शास्त्रों के साथ वेदों का अध्यापन किया था अर्थात् साङ्ग सम्पूर्ण वेदों को पढ़ाया था ।१४।

गुरुशुश्रूषणे युक्ता बाला ज्ञानपरायणाः ।
गत्वाऽरण्यं फलान्यंबुसमित्कुशमृदोऽप्यहम् ॥१५
आनीय पित्रे दत्त्वाथ कुर्मोऽध्ययनमेव हि ।
एकदा तु वयं सर्वे संप्राप्ता पर्वते वने ॥१६
श्रीगिरिं नाम लोकाक्षि कृतमाकाशे स्थितम् ।
सर्वे स्नात्वा महानद्यामुषसि प्रीतमानसाः ॥१७
लताद्यैः कृतछायाश्च समारूढा नगोत्तमम् ।
शालैस्तमालैः प्रियकैः पनसैः कोविदारकैः ॥१८
सरलार्जुनपूगैश्च खर्जूरैर्नारिकेलकैः ।
जंबूभिः सहकारैश्च कटुफलैर्हरीतद्रुमैः ॥१९
अन्यैर्नानाविधैर्वृक्षैः परार्थप्रतिपादकैः ।
स्निग्धच्छायैः समाकृष्टनानापक्षिनिनादितैः ॥२०
शार्दूलहरिभिर्भल्लैर्गण्डकैर्मृगनाभिभिः ।
गजेन्द्रैः शरभाद्यैश्च सेवितं कन्दरागतैः ॥२१

हम सभी भाई गुरु की शुश्रूषा में निरत रहा करते थे और बहुत ही ज्ञान में परायण हो गये थे । प्रतिदिन [illegible] [illegible] जाकर फल—जल—समिधा—कुशा और मृत्तिका लाया करते थे ।१५। ये सब वस्तुएँ [illegible] से लाकर अपने पिता को दिया करते थे और फिर इसके अनन्तर अपना अध्ययन ही किया

करते थे । एक बार ऐसा हुआ था कि हम [illegible] वन में पर्वत पर पहुँच गये ।१६। हे चञ्चल नेत्रों वाली ! कृतमाला नदी के तट पर ओंकुभि नाम वाला वहाँ स्थित [illegible] । हम सबने प्रातःकाल की वेला में उसी नदी में स्नान किया था और बहुत ही [illegible] मन वाले हो [illegible] थे ।१७। हम सबने सूर्य देव को अर्घ्य दिया था और जाप करके हम [illegible] [illegible] उत्तम पर्वत पर समा- [illegible] हो गये थे । अब वहाँ की वृणावनों की प्राकृतिक [illegible] [illegible] वर्णन किया जाता है—वह स्थल ऐसा अत्यधिक रमणीय था [illegible] वहाँ पर साल-तमाल-प्रियक-पनस-कोविदार-सरल-अर्जुन-पूग-खर्जूर-नारिकेल-जम्बू-सहकार-कदम्ब और बृहती के वृक्ष लगे थे ।१८-१९। इनके अतिरिक्त अन्य भी वहाँ पर अनेक प्रकार के तरुवर थे जो दूसरों के अर्थ का प्रतिपादन करने वाले थे । अर्थात् पुष्प-फलादि से द्वारा दूसरे जीवों का उपकार करने वाले [illegible] । [illegible] वृक्षों की छाया बहुत ही घनी थी और उन पर दूर-दूर से पक्षी गण उन पर समारूढ़ होकर अपना कलरव कर रहे थे ।२०। उस पर्वतीय महारण्य में विविध [illegible] के वन्य हिंस्र जीव [illegible] भ्रमण कर रहे थे । शार्दूल-भल्ल-हरि-गण्डक-मृगनाभि-गजेन्द्र और शरभ आदि बहुत हिंसक अपनी-अपनी कन्दरा [illegible] निवास करते हुए उसका सेवन [illegible] रहे थे ।२१।

मल्लिकापाटलाकुन्दकर्णिकारकदम्बकैः ।
सुगंधिभिर्वृतं तं चाम्यैर्वालोद्धूतपरागिभिः ॥२२

नानाणिगणाकीर्णैर्नीलपीतसितारुणैः ।
शृंगैः समुल्लिखंतं च व्योम कौतुकसंश्रुतम् ॥२३

अत्युच्चपातध्वनिभिर्निर्झरैः कंदरोद्गतैः ।
गर्जंतमिव संसक्तं व्यालाद्यैर्मृगपक्षिभिः ॥२४

तत्रालिकौतुकाद्धृष्टहृदयो भ्रातरो वयम् ।
नास्माकं चात्मनाऽस्मानं वियुक्ताश्च परस्परम् ॥२५

एतस्मिन्नंतरे चैका मृगी ह्यागात्पिपासिता ।
निर्झरापात शिरसि पातुकामा जलं प्रिये ॥२६

तस्याः पिबंत्यास्तु जलं शार्दूलोऽतिभयंकरः ।
तत्र प्राप्तो महच्छ्रातो जगृहे तां भयार्दिताम् ॥२७

अहं तद्ग्रहणं पश्यन्भयेन प्रपलायितः ।
अत्युच्चपदस्थात्पतितो मृतस्तामनुस्मरन् ॥२८

वहाँ वन में अनेक सुन्दर एवं सुरभित सुमनों वाले द्रुम और लताएँ भी समुत्पन्न हुए थे जिनमें कदम्ब-मल्लिका-पाटल-कुन्द-कर्णिकार आदि थे। इनके अतिरिक्त [illegible] भी ऐसे वृक्ष थे जिनके पराग वायु से उड़ रहा था और वह [illegible] सुगन्धित उन गुल्मलता और द्रुमों [illegible] समाकीर्ण था ।२२। [illegible] पर्वत [illegible] अनेक नील-सित-पीत [illegible] वर्ण वाली मणियाँ थीं। उसकी शिखरें इतनी अधिक उच्च [illegible] कि वे मानों व्योम में पहुँच कुछ उल्लेख कर रही हों। [illegible] तरह से वह पर्वत बहुत से कौतुकों से समन्वित था ।२३। वहाँ बहुत ही ऊँचाई से गिरने के कारण घोर गम्भीर ध्वनि वाले अनेक झरने [illegible]। ऐसा प्रतीत हो रहा था मानो कन्दराओं में स्थित व्यालादि मृगों और पक्षियों की गर्जना से वह संकुल है ।२४। वहाँ पर अत्यधिक कौतुकों से युक्त वह स्थल था। मैंने अपनी आत्मा [illegible] अपने आपको स्मरण नहीं किया था अर्थात् [illegible] अपने आपको भूल गया था तथा हम सब परस्पर में एक दूसरे से विमुक्त हो गये थे क्योंकि [illegible] सब भाई वहाँ अत्यधिक कौतुकों से [illegible] दृष्टि वाले हो गये थे ।२५। इसी बीच में वहाँ पर एक मृगी बहुत ही प्यासी [illegible] गयी थी। हे प्रिये ! वह मृगी जहाँ पर एक झरना गिर रहा था उसके ही शिर [illegible] वह जलपान करने की इच्छा वाली थी ।२६। [illegible] बिचारी जब [illegible] पी रही थी तो वहाँ पर एक महान भयङ्कर शार्दूल आ पहुँचा [illegible] जो अपनी ही इच्छा से घूमता हुआ आ निकला था और उसने भय से पीड़ित उस हिरनी को [illegible] लिया था ।२७। मैंने [illegible] यह देखा कि शार्दूल ने [illegible] ग्रहण कर लिया है तो मुझे भी बड़ा [illegible] उत्पन्न हो गया था और [illegible] वहाँ से भाग दिया था। उस तरह से भयभीत होकर जब [illegible] बेतहाशा भागा था तो एक बहुत ही उच्च स्थल से नीचे गिर गया था और [illegible] शार्दूल के द्वारा पकड़ी हुई हिरनी का अनुस्मरण करते हुए गिरते-गिरते मृत हो गया [illegible] ।२८।

सा मृता त्वं मृगी जाता मृगस्त्वाहमनुस्मरन् ।
जातो मद्रे [illegible] याने वै सर्वे भ्रातरोऽग्रजाः ॥२९
एतन्मे स्मृतिमापन्नं चरितं तव चात्मनः ।
भूतं भविष्यं च तथा शृणु भद्रे वदाम्यहम् ॥३०

।३४। इस तरह से यह इतना अपनी प्रिया से कहकर वह प्रिय दर्शन मृग चुप हो गया था और वनातुर होकर राम का दर्शन करते हुए वह बहुत ही प्रसन्न आत्मा वाला हो गया ■ ।३५।

भार्गवः श्रुतवांश्चैव मृगोक्तं शिष्यसंयुतः ।
विस्मितोऽभूच्च राजेन्द्र गन्तुं कृतमतिस्तथा ॥३६
अकृतव्रणसंयुक्तो ह्यगस्त्यस्याश्रमं प्रति ।
स्नात्वा नित्यक्रियां कृत्वा प्रतस्थे हर्षितो भृशम् ॥३७
रामेण गच्छता मार्गे दृष्टो व्याघ्रो मृतस्तथा ।
सिंहस्य संप्रहारेण विस्मितेन महात्मना ॥३८
अध्यर्द्धं योजनं गत्वा कनिष्ठं पुष्करं प्रति ।
स्नात्वा माध्याह्निकीं सन्ध्यां चकारातिमुदान्वितः ॥३९
हितं तदात्मनः प्रोक्तं मृगेण स विचारयन् ।
तावत्तत्पृष्ठसंलग्नं मृगयुग्ममुपागतम् ॥४०
पुष्करे तु जलं पीत्वाभिषिच्यात्मतनुं जलैः ।
पश्यतो भार्गवस्यागादगस्त्याश्रमसंमुखम् ॥४१
रामोऽपि सन्ध्यां निर्वर्त्य कुम्भजस्याश्रमं ययौ ।
विपद्गतं पुष्करं तु पश्यमानो महामनाः ॥४२

भार्गव परशुराम ने अपने शिष्य के सहित ■ तरह से उस मृग ■ द्वारा कही हुई बातों को सुना ■ और इसको सुनकर उसको बड़ा भारी विस्मय हो गया था। हे राजेन्द्र ! फिर उस परशुराम ने उसी भाँति से गमन करने के लिये अपनी बुद्धि बना की ■ ।३६। उस भार्गव ने सर्वप्रथम स्नान किया था और फिर अपनी जो नित्य क्रिया थी उसको समाप्त किया था। इसके पश्चात् मन में अत्यधिक हर्षित होकर अकृत व्रण नामधारी ■ ■ संयुत होकर ■ मुनि ■ आश्रम की ओर उसने प्रस्थान कर दिया था।३७। जिस समय में राम गमन ■ रहे ■ ■ मार्ग में मरे हुए व्याघ्र को देखा था जो कि सिंह के द्वारा किये हुए सम्प्रहार से ही मर गया था। उसको देखकर उस महान् आत्मा वाले को बड़ा विस्मय हो गया था।३८। फिर आगे आधे योजन तक चलकर कनिष्ठ पुष्कर ■ । वहाँ पहुँचकर राम

ने स्नान किया ██ और परम हर्ष से संकुल होकर वहाँ पर सन्ध्याकाल में होने वाली ████ की उपासना की थी ।३६। उस समय में वह यही विचार कर रहा ██ उस मृग ने मेरा अपना हित कहा था । ██ तक वह यह देखता है कि पीछे लगा ██ मृग और मृगी का जोड़ा वहाँ पर समागत हो गया था ।४०। उस मृग और मृगी █ जोड़े ने पुष्कर में जल का पान किया ██ और उसके जल से अपने शरीरों ██ अभिषिञ्चन किया था । भार्गव परशुराम यह देख ही रहे थे कि उनके देखते-देखते वह मृग-मृगी का जोड़ा अगस्त्य मुनि आश्रम █ सम्मुख चला गया था ।४१। राम ने भी अपनी सन्ध्योपासना को पूर्ण करके नैत्यिक कर्म █ निवृत्ति की थी और वह भी अगस्त्य मुनि के आश्रम को ███ गया था । यह परमोदार मन वाला विपद्गत पुष्कर का दर्शन करते ही चला जा रहा था ।४२।

विष्णोः पदानि नागानां कुण्डं सप्तर्षिसंस्थितम् ।
गत्वोपस्पृश्य शुच्यंभो जगामागस्त्यसंश्रयम् ।।४३
यत्र च ब्रह्मसुता राजन्समःमाता सरस्वती ।
बीर्म्संपूरयितु कुण्डामाग्निहोत्रस्य वै विधिः ।।४४
तत्र तीरे शुभं पुण्यं नानामुनिनिषेवितम् ।
ददर्श महदाश्चर्यं भार्गवः कुम्भजाश्रमम् ।।४५
मृगैः सिंहैः सहगतैः सेवितं शांतमानसैः ।
कुटरैरर्जुनैः पारिभद्रप्रवेगुदैः ।।४६
खदिरासनखर्जूरैः संकुलं बदरीद्रुमैः ।
तत्र प्रविश्य वै रामो ह्यकृतव्रणसंयुतः ।।४७
ददर्श मुनिमासीनं कुम्भजं शांतमानसम् ।
स्तिमितोदसरः प्रख्यं ध्यायन्तं ब्रह्म शाश्वतम् ।।४८
कौश्यां वृष्यां मार्गकृति वसानं पल्लवोटजे ।
ननाम च महाराज स्वाभिधानं समुच्चरन् ।।४९

भगवान् विष्णु के पदों को-नागों के कुण्ड को वहाँ पर सप्तर्षिगण संस्थित थे जाकर, उस परम शुचि जल ██ उपस्पर्शन करके फिर वह अगस्त्य मुनि के संश्रय स्थल को चला ███ था ।४३। हे राजन् ! वहाँ पर

महापुण्य [illegible] पुरी सरस्वती [illegible] के अग्निहोत्र के तीनों कुण्डों को पूरित करने के लिए [illegible] हुई थी ।४४। वहाँ पर उसी सरस्वती के तटपर परम पुनीत और शुभ तथा महाश्चर्य से युक्त कुम्भज महर्षि [illegible] को भार्गव ने देखा था जो अनेक मुनिगणों के द्वारा निषेवित [illegible] ।४५। वह आश्रम परम शान्त था और उसमें मृग और सिंह अपना स्वाभाविक वैर त्याग कर परम शान्त मन वाले एक ही साथ रहा करते थे । ऐसे सभी पशुओं [illegible] वहाँ पर निवास था । उस आश्रम [illegible] अनेक प्रकार के परम सुन्दर तरुवर लगे हुए थे जिनमें कुटर-अर्जुन-बिल्व-पारिभद्र-धव-रुद्राक्ष-खदिरासन-कर्णिकार और बदरी आदि के बहुत [illegible] से संकुल होकर प्रवेश किया [illegible] ।४५-४६-४७। प्रवेश करके राम ने विराजमान और परमशान्त मन वाले मुनिवर अगस्त्यजी का दर्शन प्राप्त किया था जो सर्वथा एकाग्र रुके हुए शान्त जल से भरे हुए सरोवर के ही समान थे तथा [illegible] [illegible] का ध्यान कर रहे थे ।४८। वहाँ पर लताओं और द्रुमों के पत्तों से एक उटज (झोंपड़ी) बनी हुई थी उस उटज [illegible] अगस्त्य मुनि कौश्य—कृष्ण तथा मृग चर्म को परिधान किये हुए विराजमान [illegible] । हे महाराज ! वहाँ पर भार्गव राम ने अपने नाम का उच्चारण करते हुए अगस्त्य मुनि के चरणों में प्रणिपात किया था ।४९।

रामोऽस्मि जामदग्न्योऽहं भवतं द्रष्टुमागतः ।
तद्विद्धि प्रणिपातेन नमस्ते लोकभावन ॥५०

इत्युक्तवन्तं रामं [illegible] उन्मील्य नयने शनैः ।
दृष्ट्वा स्वागतमुच्चार्य तस्मायासनमादिशत् ॥५१

मधुपर्कं समानीय शिष्येण मुनिपुंगवः ।
वनौ पप्रच्छ कुशलं तपसश्च कुलस्य [illegible] ॥५२

स पृष्टस्तेन वै रामो घटोद्भवमुवाच ह ।
भवत्संदर्शनादीश कुशलं मम सर्वतः ॥५३

किं त्वेकं संशयं जातं छिन्धि स्ववचनामृतैः ।
मृगस्त्रीको मया दृष्टो मध्यमे पुष्करे विभो ॥५४

तेनोक्तमखिलं वृत्तं मम भूतमनागतम् ।
तच्छ्रुत्वा विस्मयाविष्टो भवच्छरणमागतः ॥५५

पाहि मां कृपया नाथ साधयंतं महामनुम् ।
शिवेन दत्तं कवचं मम साधयतो गुरो ॥५६

राम ने अगस्त्य मुनि के चरणों की सन्निधि में समुपस्थित होकर उनसे निवेदन किया था कि मैं जमदग्नि का आत्मज राम हूँ और यहाँ पर आपके दर्शन करने के लिए समागत हुआ [illegible] । हे लोकों पर कृपा करने वाले मुनिवर ! मैं आपकी सेवा में प्रणिपात कर रहा [illegible] उसे [illegible] स्वीकार कीजिए ।५०। जब राम ने इस रीति से प्रार्थना की थी तो ऐसे कहने वाले राम को उन्होंने धीरे से स्वाभाविक [illegible] मुँदे हुए नेत्रों को खोलकर देखा था और फिर आपका स्वागत है— ऐसा उच्चारण करके उनको [illegible] पर उपविष्ट हो जाने की आज्ञा प्रदान की थी ।५१। उन मुनियों में परम श्रेष्ठ [illegible] जी ने शिष्य के [illegible] मधुपर्क मँगाकर राम को प्रदान किया था । फिर तपस्या और कुल की क्षेम-कुशल उनसे पूछी थी ।५२। उन मुनिवर [illegible] द्वारा [illegible] राम से इस रीति से पूछा गया [illegible] तो उस समय में राम [illegible] अगस्त्य मुनि से कहा था । [illegible] ईश ! अब आपके चरणों के दर्शन [illegible] मेरा सभी प्रकार का क्षेम-कुशल है ।५३। [illegible] विभो ! मुझे एक संशय हो गया है । उसका छेदन [illegible] कृपा कर अपने अमृत रूपी वचनों के द्वारा [illegible] दीजिए । मैंने एक मृग को मध्यम पुष्कर में देखा था ।५४। उस मृग ने मेरा अतीत और अनागत सम्पूर्ण वृत्त बतला दिया था । इसका श्रवण करके मैं अधिक विस्मय से आविष्ट हो गया [illegible] और अब आपके चरण कमलों की शरण में [illegible] हुआ हूँ ।५५। अपनी स्वाभाविक अनुकम्पा से मेरा परित्राण कीजिए । और हे [illegible] ! महामन्त्र की सिद्धि कराइये । [illegible] गुरो ! भगवान् शिव ने जो [illegible] मुझे [illegible] किया है उसको सिद्ध कराइये । इसमें आपकी परमानुकम्पा मेरे [illegible] [illegible] ऊपर होगी ।५६।

कृष्णस्य समतीतं [illegible] साधिकं हि शरच्छतम् ।
न [illegible] सिद्धिमवाप्तोऽहं तस्मै त्वं कृपया वद ॥५७

वसिष्ठ उवाच—

एवं प्रश्नं समाकर्ण्य रामस्य सुमहात्मनः ।
क्षणं ध्यात्वा महाराज मृगोक्तं ज्ञातवान् हृदा ॥५८
मृगं चापि समायातं मृग्या सह निजाश्रमे ।

श्रोतुं कृष्णामृतं स्तोत्रं सर्वं तत्कारणं मुनिः ।
विचार्याश्वासयामास भार्गवः स्वकथामृतैः ॥५६

इस श्रीकृष्ण के मन्त्र की [illegible] करते हुए मुझे एक सौ वर्ष से भी अधिक [illegible] व्यतीत हो गया है तो भी मुझे इसकी सिद्धि प्राप्त नहीं हुई है। इसका क्या कारण है। यह आप मुझे अपनी परमाधिक कृपा करके बतलाइए ।५७। श्री वसिष्ठ मुनि ने कहा—इस प्रकार का जो प्रश्न महात्मा राम ने किया था उसका श्रवण करके हे महाराज ! उस महामुनि ने एक [illegible] भर कुछ ध्यान किया था और फिर जो कुछ भी उस नृप ने कहा [illegible] उसको उस समय में उन्होंने अपने [illegible] से [illegible] लिया था ।५८। अपनी मृगी के [illegible] अपने आश्रम में आये हुए उस मृग को भी उन्होंने जान लिया था जो कि श्रीकृष्णामृत स्तोत्र का श्रवण करने के लिए ही वहाँ पर समागत हुआ था। मुनि ने [illegible] सबका कारण भी समझ लिया था। इस सबका विचार करके उस महामुनि अगस्त्य [illegible] उस भार्गव राम को अपने अमृत रूपी वचनों के द्वारा आश्वासन दिया था ।५९।

[illegible] श्रीकृष्ण प्रेमामृत स्तोत्र [illegible]

वसिष्ठ उवाच—
अवगम्य स वै सर्वं कारणं प्रीतमानसः ।
उवाच भार्गवं राममगस्त्यः कुम्भसंभवः ॥१

अगस्त्य उवाच—
शृणु राम महाभाग कथयामि हितं तव ।
मन्त्रस्य सिद्धि येन त्वं शीघ्रमेव समाप्नुयाः ॥२
भक्तस्तु लक्षणं ज्ञात्वा त्रिविधाथा महामते ।
यो यतेत नरस्तस्य सिद्धिर्भवति सत्वरम् ॥३
एकदाऽहमनुप्राप्तोऽनन्तदर्शनकाङ्क्षया ।
पातालं नागराजेन्द्रैः शोभितं परया मुदा ॥४
तत्र दृष्टा महाभाग मया सिद्धाः समन्ततः ।
सनकाद्या नारदश्च गौतमो जाजलिः क्रतुः ॥५

ऋभुर्हंसोऽरुणिश्चैव वाल्मीकिः शक्तिरासुरिः ।
एतेऽन्ये च महासिद्धा वात्स्यायनमुखा द्विज ॥६
उपासत ह्युपासीना आचार्यं फणिनायकम् ।
तं नमस्कृत्य नागेन्द्रैः सह सिद्धैर्महात्मभिः ॥७

महामुनि वसिष्ठ जी [illegible] कहा—उस सम्पूर्ण कारण को भली भाँति समझ कर कुम्भ से समुत्पन्न अगस्त्य मुनि ने अपने मन परम प्रीति करके भार्गव राम से कहा [illegible] ।१। अगस्त्य मुनि ने कहा—हे परशुराम ! आप तो महान् भाग वाले [illegible] । मैं अब आपके हित की बात कहता [illegible] उसका आप श्रवण कीजिए । जिसके द्वारा [illegible] बहुत ही शीघ्र [illegible] महामन्त्र की सिद्धि की प्राप्ति कर लेंगे ।२। हे बहुती मति वाले ! यह भक्ति तीन प्रकार की होती है । उस भक्ति के तीनों प्रकारों [illegible] लक्षणों का [illegible] प्राप्त करके जो मनुष्य फिर यत्न किया करता है वह बहुत ही शीघ्र पूर्ण सिद्धि [illegible] [illegible] लिया करता [illegible] ।३। एक बार मैं स्वयं भगवान् अनन्त देव [illegible] दर्शन प्राप्त करने की आकांक्षा से पाताल लोक में गया था जो कि परमानन्द से [illegible] बड़े-बड़े नाग राजों से सुशोभित [illegible] ।४। हे महाभाग ! वहाँ पर मैंने देखा था कि चारों ओर बड़े-बड़े सिद्ध महापुरुष विराजमान [illegible] । वहाँ सनकादिक चारों महासिद्ध-देवर्षि नारद-गौतम-जाजलि-क्रतु-ऋभु-हंस-अरुणि-वाल्मीकि-शक्ति-आसुरि प्रभृति सभी मुनीन्द्रगण और ऋषियों के समुदाय विद्यमान [illegible] । हे द्विज ! ये सब और अन्य भी वात्स्यायन जिनमें प्रमुख थे महान् सिद्धगण वहाँ पर बैठे हुए थे ।५-६। [illegible] सभी वहाँ पर बैठे हुए ज्ञान की पूर्ण प्राप्ति के लिये फणि नायक शेषराज की उपासना कर रहे थे । वहाँ पर बड़े-बड़े नागेन्द्र और महान् आत्मा वाले सिद्ध सभी विराजमान [illegible] उन सबके साथ फणीन्द्र नायक शेष महाराज की सेवा [illegible] मैंने बड़े आदर [illegible] साथ प्रणिपात किया [illegible] ।७।

उपविष्टः कथास्तत्र शृण्वानो वैष्णवीर्मुदा ।
येयं भूमिर्महाभाग भूतधात्रीस्वरूपिणी ॥८
निविष्टा पुरतस्तस्य शृण्वंती ताः कथाः सदा ।
यद्यत्पृच्छसि सा भूमिः शेषं साक्षान्महीधरम् ॥९
शृण्वंति ऋषयः सर्वे तपस्याः तदनुग्रहात् ।
मया तत्र श्रुतं वत्स कृष्णप्रेमामृतं शुभम् ॥१०

स्तोत्रं तत्ते प्रवक्ष्यामि यस्यार्थं त्वमिहागतः ।
वाराहाद्यवताराणां चरितं पापनाशनम् ॥११

सुखदं मोक्षदं चैव ज्ञानविज्ञानकारणम् ।
श्रुत्वा सर्वं धरा प्रहृष्टा तं धराधरम् ॥१२

प्रणता भूयो ज्ञातुं कृष्णविचेष्टितम् ।

धरण्युवाच—

अलंकृतं जन्म पुंसामपि नंदव्रजौकसाम् ॥१३

तस्य देवस्य कृष्णस्य लीलाविग्रहधारिणः ।
जयोपाधिनियुक्तानि संति नामान्यनेकशः ॥१४

वहाँ पर बड़े ही आनन्द से भगवान् विष्णु देव की कथाओं का श्रवण करता हुआ बैठ गया । हे महाभाग ! यह भूमि भी जो समस्त भूतों को धात्री स्वरूप वाली है वहीं पर उन भगवान् आगे बैठी हुई थी और बहुत ही प्रीति के साथ कथाओं का किया करती थी । यह भूमि साक्षात् इस मही के धारण करने वाले शेष भगवान् से जो-जो भी पूछा करती उसको ऋषिगण वहीं पर संस्थित होकर उनके ही अनुग्रह के होने से श्रवण किया करते हैं । ! मैंने भी वहाँ परम शुभ कृष्ण प्रेमामृत श्रवण किया था ।८-१०। उस स्तोत्र को मैं अब आपको बतलाऊँगा जिसको प्राप्त करने लिये तुम यहाँ पर आये हो । इस स्तोत्र में वाराह आदि भगवान् अवतारों चरित है जो प्रकार के पापों का विनाश कर देने होता है ।११। यह चरित परमार्थिक सुख-सौभाग्य के प्रदान करने वाला है—परलोक जाकर भौतिक शरीर के त्याग करने के पश्चात् मोक्ष का भी देने जिससे संसार में बारम्बार जन्म-मरण महान् कष्टों से छुटकारा मिल करता है । और यह चरित ऐसा अद्भुत है कि जो पूर्ण और विशेष का भी कारण होता । इस वसुन्धरा देवी ने सब का श्रवण किया था और यह बहुत ही अधिक प्रसन्न हुई थी, हे ! फिर धरा के धारण करने वाले अनन्त भगवान् से बोली थी ।१२। परम प्रणत होकर भूमि ने फिर भगवान् की लीला को जानने के लिए प्रार्थना की थी । धरणी ने कहा—भगवान् श्री कृष्ण चन्द्र जी ने नन्द गोपराज के व्रज में निवास करने वाले व्रजवासी मनुष्यों की जन्म अपना अवतार धारण कर अनेक अद्भुत लीला-

के द्वारा प्रेषित असुर का मर्दन करने वाले हैं।२७। तृणावर्त्त असुर को तृण के समान हनन करके डाल दिया है और जो दो अर्जुन वृक्षों का जोड़ा शाप से वृक्ष हो गये थे उनका भंजन कर वृक्षों की योनि छुड़ा देने वाले हैं। बहुत ही ऊँचे तालों के भेदन करने वाले हैं तथा तमाल वृक्षों के सदृश श्यामल आकृति वाले हैं।२८।

गोपगोपीश्वरो योगी सूर्यकोटिसमप्रभः।
इलापतिः परंज्योतिर्यादवेंद्रो यदूद्वहः ॥२९
वनमाली पीतवासाः पारिजातापहारकः।
गोवर्द्धनाचलोद्धर्त्ता गोपालः सर्वपालकः ॥३०
अजो निरंजनः कामजनकः कंजलोचनः।
मधुहा मथुरानाथो द्वारकानायको बली ॥३१
वृंदावनांतसंचारी तुलसीदामभूषणः।
स्यमंतकमणेर्हर्त्ता नरनारायणात्मकः ॥३२
कुब्जाकृष्टांबरधरो मायी परमपूरुषः।
मुष्टिकासुरचाणूरमल्लयुद्धविशारदः ॥३३
संसारवैरी कंसारिर्मुरारिर्नरकांतकः।
अनादि ब्रह्मचारी च कृष्णाव्यसनकर्षकः ॥३४
शिशुपालशिरश्छेत्ता दुर्योधनकुलांतकृत्।
विदुराक्रूरवरदो विश्वरूपप्रदर्शकः ॥३५

व्रज में समस्त गोप और जो गोपियां थीं उन सबके ईश हैं—महा योगी और करोड़ों सूर्यों की प्रभा के समान प्रदीप्त प्रभा से समन्वित हैं। इला के पति—परम ज्योति स्वरूप यादवों में प्रमुख और यदु कुल के उद्वहन करने वाले हैं।२९। वनमाला के धारण करने वाले-पीत वर्ण के वस्त्रों के पहिनने वाले तथा पारिजात का महेन्द्रपुरी से आहरण करने वाले हैं—गोवर्द्धन गिरि के उद्धर्त्ता अर्थात् अपनी अंगुलि पर उठाने वाले—गौओं के पालन-पोषण करने वाले और समस्त चराचरों के पालक हैं।३०। अजन्मा-निरंजन-कामदेव के जनक तथा कंज कमलों के सदृश लोचनों वाले हैं। मधु नामक दैत्य के हनन कर्त्ता—मथुरापुरी के नाथ-द्वारका के स्वामी और

बलशाली हैं।३१। वृन्दावन में सञ्चरण करने वाले—तुलसी की माला से सुशोभित अर्थात् तुलसी की माला के भूषण वाले हैं। नाम वाली मणि को जाम्बवान् से हरण करने वाले नर और नारायण के स्वरूपधारी हैं।३२। कुब्जा जो कंस नृप की सेविका थी वह थी तो सुन्दरी किन्तु टेढ़े-मेढ़े शरीर वाली थी। उसके समाकृष्ट चरणों के धारण करने वाले हैं। कुब्जा श्रीकृष्ण पर मोहित हो गयी थी—यह तात्पर्य है। मायी और परम पुरुष हैं। के मल्ल चाणूर और मुष्टिक असुर थे उनके साथ मल्ल युद्ध में परम कोविद हैं।३३। इस संसार के वैरी हैं अर्थात् संसार में होने वाले दुःखों के विनाशक हैं—कंस के निपात करने वाले—मुर वंश के नाशक और नरक नामक असुर को नष्ट कर देने वाले हैं। अनादि ब्रह्मचारी हैं अर्थात् ऐसे ब्रह्मचारी हैं जिनका कभी कोई आदि नहीं है कृष्णा-द्रौपदी के व्यसन के अपकर्षण करने वाले हैं अर्थात् दुःशासन के द्वारा चीर खींचकर दुर्योधन की सभा में उसको लज्जित किया जा रहा था उस समय चीर का वर्द्धन करके उसकी लज्जा की रक्षा करने वाले हैं।३४। राजा शिशुपाल के सिर के छेदन करने वाले हैं और राजा कौरवेश्वर दुर्योधन के कुल का अन्त कर देने वाले हैं। विदुर और अक्रूर को वरदानों के प्रदाता हैं और विश्वरूप अर्थात् विराट् स्वरूप के प्रदर्शक हैं।३५।

सत्यवाक्सत्यसंकल्पः सत्यभामारतो जयी ।
सुभद्रापूर्वजो विष्णुर्भीष्ममुक्तिप्रदायकः ॥३६

जगद्गुरुर्जगन्नाथो वेणुवाद्यविशारदः ।
वृषभासुरविध्वंसी बकारिर्बाणबाहुकृत् ॥३७

युधिष्ठिरप्रतिष्ठाता बर्हिबर्हावतंसकः ।
पार्थसारथिरव्यक्तो गीतामृतमहोदधिः ॥३८

कालीयफणिमाणिक्यरंजितः श्रीपदांबुजः ।
दामोदरो यज्ञभोक्ता दानवेन्द्रविनाशनः ॥३९

नारायणः परं ब्रह्म पन्नगाशनवाहनः ।
जलक्रीडासमासक्तगोपीवस्त्रापहारकः ॥४०

पुण्यश्लोकस्तीर्थपादो वेदवेद्यो दयानिधिः ।
सर्वतीर्थात्मकः सर्वग्रहरूपी परात्परः ॥४१

पठतां शृण्वतां चैव कोटिकोटिगुणं भवेत् ।
पुत्रप्रदमपुत्राणामगतीनां गतिप्रदम् ॥४५
धनवाहं दरिद्राणां जयेच्छूनां जयावहम् ।
शिशूनां गोकुलानां च पुष्टिदं पुण्यवर्द्धनम् ॥४६
बालरोगग्रहादीनां शमनं शांतिकारकम् ।
अंते कृष्णस्मरणदं भवतापत्रयापहम् ॥४७
असिद्धसाधकं भद्रे जपादिकरमात्मनाम् ।
कृष्णाय यादवेंद्राय ज्ञानमुद्राय योगिने ॥४८
नाथाय रुक्मिणीशाय नमो वेदान्तवेदिने ।
इमं मंत्रं महादेवि जपन्नेव दिवानिशम् ॥४९

[illegible] द्वैपायन महामुनि ने यह श्रीकृष्ण [illegible] प्रिय को करने वाला स्तोत्र रचित किया था। उन्हीं से इसका श्रवण [illegible] किया था। यह श्रीकृष्ण प्रेमामृत नामक स्तोत्र परमाधिक आनन्द के [illegible] करने वाला है।४३। यह अत्यधिक उपद्रव और दुःखों का हनन करने वाला है तथा इसके श्रवण और पठन से अधिकाधिक आयु का वर्द्धन होता है। इस लोक में जन्म ग्रहण करके जो भी कुछ दान-व्रत-तप-तीर्थ आदि किया है वह सभी इस परम पुनीत स्तोत्र [illegible] पढ़ने वालों तथा श्रवण किया है वह सभी [illegible] परम पुनीत स्तोत्र [illegible] पढ़ने वालों तथा [illegible] करने वालों को करोड़ों गुना फल देने वाला होती [illegible]। जो पुत्रों से रहित हैं उनको यह पुत्रों के प्रदान करने वाला है तथा जिनकी सद्गति का कोई भी साधन नहीं है उनको सुगति अर्थात् उद्धार के प्रदान करने वाला है।४४-४५। जो धन से महीन महान् दरिद्र हैं उनको धन का वहन कराने वाला है और जो सर्वत्र युद्ध स्थल में अपनी विजय के इच्छुक हैं उनको जय देने वाला है। यह स्तोत्र शिशुओं की और गोकुलों की पुष्टि [illegible] बढ़ाने वाला [illegible]।४६। बालरोग और ग्रहों आदि का शमन करने वाला तथा परम शान्ति के करने वाला है। यह समय में श्रीकृष्ण की स्मृति [illegible] देने [illegible] तथा संसार के तीनों (आध्यात्मिक-आधिभौतिक-आधिदैविक) तापों का अपहरण करने वाला [illegible]।४७। हे भद्रे ! यह स्तोत्र अपने असिद्ध जप आदि के साधन करने वाला अर्थात् सिद्धि कारक है। यादवेन्द्र-ज्ञान की मुद्रा वाले—योगी—रुक्मिणी के स्वामी—

वेदान्त के वेदी गाय श्री कृष्ण के लिए नमस्कार है—हे महादेवि ! यह मन्त्र है इसका अहर्निश [illegible] करते रहना चाहिए ।४८-४९।

सर्वग्रहानुग्रहभावसर्वप्रियतमो भवेत् ।
पुत्रपौत्रैः परिवृतः सर्वसिद्धिसमृद्धिमान् ॥५०
निषेव्य भोगानंतेऽपि कृष्णसायुज्यमाप्नुयात् ।
अगस्त्य उवाच—
एतावदुक्त्वो भगवाननंतो मूर्तिस्तु संकर्षणसंज्ञिता विभो ॥५१
धराधरोऽलं जगतां धरायै निर्दिश्य भूयो विरराम मानदः ।
ततस्तु सर्वे सनकादयो ये समास्थितास्तत्परितः कथादृताः ।
आनंदपूर्णा बुनिधौ निमग्नाः
सभाजयामासुरहीश्वरं तम् ॥५२
ऋषय ऊचुः—
नमो नमस्तेऽखिलविश्वभावन प्रपन्नभक्ता-
र्तिहराव्ययात्मन् ।
धराधरायापि कृपार्णवाय शेषाय विश्वप्रभवे नमस्ते ॥५३
कृष्णामृतं नः परिपायितं विभो विधूतपापा
भवता कृता वयम् ।
भवादृशा दीनदयालवो विभो समुद्धरंत्येव
निजाश्रितं संगतान् ॥५४
एवं नमस्कृत्य फणीश पादयोर्मनो विधायाखिलकामपूरयोः ।
प्रदक्षिणीकृत्य धराधराधरं [illegible] वयं स्वावसथानुपागताः ॥५५

इस परमोत्तम एवं दिव्य स्तोत्र का सेवन करने वाला पुरुष [illegible] ग्रहों के अनुग्रह को प्राप्त करने वाला हो जाता [illegible] और वह सभी का परम प्रिय [illegible] जाया करता है । इस अष्टोत्तर [illegible] कृष्ण स्तोत्र के [illegible] तथा पठन करने से भजन पुत्र-पौत्रादि से परिवृत होता [illegible] और उसके सभी प्रकार की सिद्धियों की समृद्धि हो जाया करती है ।५०। वह मनुष्य इस लोक में सब [illegible] के सुखों का उपभोग करके भी अन्त [illegible] में भगवान् की

चतुर्भिरद्भुतैः सिद्धैः कामरूपैर्मनोजवैः ।
अनुयातमथोत्प्लुत्य स्त्रीपुंसौ हरिणौ तदा ।
अगस्त्यचरणौ नत्वा समारुरुहतुर्मुदा ॥६०
दिव्यदेहधरौ भूत्वा शंखचक्रादिचिह्नितौ ।
गतौ [illegible] वैष्णवं लोकं सर्वदेवनमस्कृतम् ।
पश्यतां सर्वभूतानां भार्गवागस्त्ययोस्तथा ॥६१

अगस्त्य महामुनि [illegible] कहा कि हे राम ! श्री राधा [illegible] काम्य-परिपूर्ण भगवान् श्रीकृष्ण का यह समस्त सिद्धियों का [illegible] कर देने वाला प्रेमामृत नाम वाला स्तोत्र मैंने आपको [illegible] दिया है ।५६। हे महाभाग राम ! यह स्तोत्र अत्यन्त दुर्लभ है । मैंने कथाओं का वर्णन करते हुए साक्षात् भगवान् शेष के ही मुख से इसका [illegible] किया है ।५७। इस लोक में जितने भी मन्त्रों के समूह हैं तथा स्तोत्र और [illegible] आदि [illegible] इस त्रिभुवन में वे सभी इस स्तोत्र के ही परिशीलन करने से सिद्ध हो [illegible] करते हैं । वसिष्ठजी ने कहा—हे महाराज ! इस रीति से श्रीकृष्ण प्रेमामृत [illegible] को बतलाकर जब तक अगस्त्य मुनि विरत [illegible] थे तभी तक वहाँ स्वर्ग से एक यान [illegible] गया था ।५८-५९। उस यान में चार स्वेच्छया स्वरूप धारण करने वाले—मन के ही समान वेग से समन्वित और अतीव अद्भुत सिद्धों से युक्त था । इसके अनन्तर वे दोनों हरिण और हरिणी स्त्री एवं पुरुष [illegible] [illegible] होकर अगस्त्य मुनि को प्रणाम करके [illegible] समय [illegible] परम हर्ष से [illegible] [illegible] उस यान में समारूढ़ हो गये ।६०। वे दोनों परम दिव्य देह के धारण करने वाले हो गये थे जो शङ्ख-चक्र आदि भगवान् के चिह्नों [illegible] संयुत थे । इसके पश्चात् वे समस्त देवगणों के द्वारा वन्दित भगवान् विष्णु [illegible] लोक में चले गये थे । [illegible] समय [illegible] विलक्षण घटना को वहाँ पर संस्थित सभी प्राणी तथा भार्गव राम और अगस्त्य मुनि भी देख रहे थे [illegible] सबकी आँखों के ही सामने ऐसा हुआ [illegible] ।६१।

भार्गव चरित्र (१)

वसिष्ठ उवाच—

दृष्ट्वा परशुरामस्तु तदाश्चर्यं महाद्भुतम् ।
जगाद सर्वभूतानां मृगयोस्तु यथाश्रुतम् ॥१

तच्छ्रुत्वा भगवान्साक्षादगस्त्यः कुम्भसंभवः ।
मोदमान उवाचेदं भार्गवं पुरतः स्थितम् ॥२

अगस्त्य उवाच–

शृणु राम महाभाग कार्याकार्यविशारद ।
हितं वदामि यत्तेऽद्य तत्कुरुष्व समाहितः ॥३

इतो विदूरे सुमहत्स्थानं विष्णोः सुदुर्लभम् ।
पदानि यत्र दृश्यंते न्यस्तानि सुमहात्मना ॥४

यत्र गंगा समुद्भूता वामनस्य महात्मनः ।
पदाग्रात्क्रमतो लोकान्स्वबलेस्तु विनिग्रहे ॥५

तत्र गत्वा स्तवं चेदं मासमेकमनन्यधीः ।
पठस्व नियमेनैव नियतो नियतासनः ॥६

यत्त्वया कवचं पूर्वमभ्यस्तं सिद्धिमिच्छता ।
शत्रूणां निग्रहार्थाय [illegible] ते सिद्धिदं भवेत् ॥७

श्री वसिष्ठजी ने कहा—उस [illegible] में परशुराम ने इस महान् आश्चर्य को देखकर [illegible] दोनों हरिण-हरिणियों का सम्पूर्ण वृत्तान्त जैसा भी सुना गया था अगस्त्य मुनि से [illegible] दिया था ।१। साक्षात् कुम्भ से समुत्पत्ति ग्रहण करने वाले अगस्त्य भगवान् ने इस वृत्तान्त का श्रवण करके बहुत ही अधिक प्रसन्न होते हुए अपने समक्ष में संस्थित भार्गव राम से यह कहा था ।२। अगस्त्य जी ने कहा—हे राम ! आप तो महान् भाग वाले हो और क्या करना चाहिए और क्या नहीं करना चाहिए—इस विषय में आप बहुत विद्वान् हैं [illegible] आज [illegible] जो आपके हित की बात है उसको आपको बतलाता हूँ । उसे आप बहुत ही सावधान होते हुए कर डालिए ।३। इस स्थल [illegible] विशेष दूरी पर भगवान विष्णु [illegible] परम दुर्लभ एक बड़ा भारी स्थान [illegible] जहाँ पर भगवान् के कमनीय कोमल चरणों के चिह्न दिखलाई दिया करते [illegible] जहाँ पर महान् [illegible] वाले प्रभु ने उन अपने चरणों को रक्खा [illegible] ।४। यह वह स्थल है जहाँ पर प्रभु ने वामन का अवतार लेकर राजा बलि को विनिगृहीत करने के कार्य में अपने चरण के अग्रभाग से सभी लोकों को समाक्रान्त कर लिया था । [illegible] ब्रह्माजी ने भगवान के चरणों को प्रक्षालित किया था और जहाँ पर महात्मा वामन के चरणों के जल से गङ्गा

का समुद्भव हुआ था ।५। अब आप उसी ... अनन्य बुद्धि वाले होते ... एक मास तक ... स्तोत्र का पाठ करो और पूर्ण नियम से ही नियत ... नियत अशन (भोजन) वाले होकर रहो ।६। आपने सिद्धि ... इच्छा रखते हुए जिस ... पूर्व में अभ्यास किया था और अपने समस्त शत्रुओं के निग्रह करने की ... से ही किया था वही अब आपको सिद्धि के देने वाला हो जायगा ।७।

वसिष्ठ उवाच–

एवमुक्तो ह्यगस्त्येन रामः शत्रुनिबर्हणः ।
नमस्कृत्य मुनिं शान्तं निर्जगाश्रमाद्बहिः ॥८

पुनस्तेनैव मार्गेण संप्राप्तस्तत्र सत्वरम् ।
यतोत्तरात्पदन्यासान्निर्गता स्वर्णदी नृप ॥९

तत्र वासं प्रकल्प्यासावकृतव्रणसंयुतः ।
समभ्यस्यंस्तवं दिव्यं कृष्णप्रेमामृताभिधम् ॥१०

नित्यं व्रतपतेस्तस्य स्तोत्रे तुष्टोऽथ श्रीहरिः ।
जगाम दर्शनं तस्य जामदग्न्यस्य भूपते ॥११

चतुर्व्यूहाधिपः साक्षात्कृष्णः कमललोचनः ।
किरीटेनार्कवर्णेन कुण्डलाभ्यां च राजितः ॥१२

कौस्तुभोद्भासितोरस्कः पीतवासा घनप्रभः ।
मुरलीवादनपरः साक्षान्मोहनरूपधृक् ॥१३

तं दृष्ट्वा सहसोत्थाय जामदग्न्यो मुदान्वितः ।
प्रणम्य दंडवद्भूमौ तुष्टाव प्रयतो विभुम् ॥१४

वसिष्ठजी ने कहा—इस ... से शत्रुओं के निबर्हण करने वाले राम से ... अगस्त्य मुनि के द्वारा कहा ... था तो फिर राम ने मुनि को नमस्कार करके जो महा मुनि परम शान्त स्वभाव वाले ... उस ... राम बाहिर निकलकर चला गया ... ।८। हे नृप ! फिर उसी मार्ग से वह बहुत शीघ्र वहाँ पर पहुँच गया था जहाँ पर उत्तर पद के ... से स्वर्ग गङ्गा निकली थी ।९। उस ... पर उस परशुराम ने अकृतव्रण ... ही रहकर निवास करने का अपने ... में संकल्प किया ... और श्रीकृष्ण प्रेमा-

मृत नामक दिव्य स्तव का भली-भाँति [illegible] किया था।१०। हे भूपते ! [illegible] स्वामी उन भगवान श्रीकृष्ण उस पर [illegible] हो गये और उन्होंने जमदग्नि के पुत्र के लिए अपना दर्शन दिया था।११। [illegible] भगवान के स्वरूप [illegible] वर्णन किया जाता है जिस [illegible] से राम को उन्होंने दर्शन दिया था—उनके नेत्र कमलों [illegible] परम सुन्दर थे—भगवान कृष्ण साक्षात् चतुर्व्यूहों के अधिप थे—सूर्य के वर्ण के [illegible] जाज्वल्यमान किरीट और दोनों कानों में कुण्डलों की शोभा [illegible] समन्वित [illegible]।१२। वक्षःस्थल में कौस्तुभ महामणि धारण किये हुए [illegible] जिसकी [illegible] से उनका उरःस्थल समुद्भासित हो रहा था—पीताम्बर का परिधान करने वाले नील जलद के समान प्रभा वाले थे। उनके करकमलों [illegible] वंशी थी जिसका [illegible] कर रहे थे तथा वे साक्षात् मोहन करने वाले [illegible] को धारण करने वाले थे।।१३। ऐसे उन भगवान् श्री कृष्ण के दर्शन करके जमदग्नि के पुत्र परशुराम ने तुरन्त ही अपने आसन से उठकर मानोत्थान किया था और वह बहुत ही हर्ष से समन्वित हो गये थे। उस राम ने उनके सामने चरणों [illegible] दण्ड की भाँति गिरकर उन विभु को प्रणाम किया था और फिर बहुत ही प्रसन्न होकर उनकी स्तुति की थी।१४।

परशुराम उवाच—

नमो नमः कारणविग्रहाय प्रपन्नपालाय सुरार्त्तिहारिणे।
ब्रह्मेशशक्रादिसमुदस्तुताय ततोऽस्मि नित्यं
परमेश्वराय ॥१५

यं वेदवादैर्विविधप्रकारैर्निर्मन्तुमीशानमुखा [illegible] शक्नुयुः।
तं त्वामनिर्देश्यमजं पुराणमनंतमीडे [illegible] मे दयापरः ॥१६

यस्त्वेक ईशो निजवाञ्छितप्रदो धत्ते तनूर्लोकविहाररक्षणे।
नानाविधा देवमनुष्यतिर्यग्यादःसु भूमेर्भरवारणाय ॥१७

तं त्वामहं भक्तजनानुरक्तं विरक्तमत्यंतमपीन्दिरादिषु।
स्वयं समक्षं व्यभिचारदुष्टचित्तास्वपि प्रेमनिबद्धमानसम् ॥१८

यं वै प्रसन्ना असुराः सुरा नराः
सकिन्नरास्तिर्यग्योनयोऽपि हि।

गताः स्वरूपं निखिलं विहाय ते देहस्व्यपत्यार्थम-
मत्यमीश्वर ॥१९
तं देवदेवं भजतामभीप्सितप्रदं निरीहं गुणवर्जितं च ।
अचिन्त्यमव्यक्तमघौघनाशनं प्राप्तोऽस्म्यहं
प्रेमनिधानमादरात् ॥२०
तपंति तापैर्विविधैः स्वदेहमन्ये तु यज्ञैर्विविधैर्यजंति ।
स्वप्नेऽपि ते रूपमलौकिकं विभो पश्यन्ति
नैवार्थनिबद्धवासनाः ॥२१

परशुराम ने कहा—भक्तों की सुरक्षा करने के कारणों से शरीर धारण करने वाले—अपनी शरणागति में सम्प्राप्त जनों का प्रतिपालन करने वाले और सुरगणों की पीड़ा का हरण करने वाले आपके लिए मेरा बार-म्बार नमस्कार [illegible] । ब्रह्मा-शिव-विष्णु और इन्द्र जिनमें प्रमुख [illegible] ऐसे समस्त देवगणों के द्वारा जिनका स्तवन किया गया है ऐसे परमेश्वर प्रभु के लिए मैं नित्य ही प्रणाम निवेदन करने [illegible] हूँ ।१५। शिव आदि प्रमुख देव भी अनेक प्रकार के वेदों के वादों के द्वारा जिनके स्वरूप [illegible] निर्णय करने [illegible] समर्थ नहीं हुआ करते हैं उन निर्देशन करने के योग्य-अजन्मा-पुराण पुरुष तथा अनन्त प्रभु का मैं स्तवन करता हूँ । आप मेरे ऊपर दया [illegible] परायण हो जाइए ।१६। जो एक ही ईश [illegible] और नित्य हो अपने भक्तों [illegible] मनोवाञ्छितों को प्रदान करने वाले हैं वे [illegible] [illegible] भूमि के भार को उतारने [illegible] लिए लोकों में विहार और उनकी [illegible] करने [illegible] वास्ते अनेक [illegible] के देव-मनुष्य-तिर्यक् तथा जल जीवों में शरीर धारण करके अवतार ग्रहण किया करते हैं ।१७। ऐसे उन प्रभु आपको मैं [illegible] साक्षात् देख रहा [illegible] जो अपने ही भक्तों [illegible] अनुराग रखने वाले [illegible] और इन्दिरा आदि [illegible] भी अत्यन्त विरक्त रहते [illegible] तथा व्यभिचार [illegible] [illegible] चित्त वालियों में भी प्रेम [illegible] निबद्ध मन वाले [illegible] ।१८। हे ईश्वर ! जिन आपके [illegible] की प्राप्ति परम प्रसन्न होते हुए सम्पूर्ण अपने देह-स्त्री-सन्तति और वैभव की ममता का त्यागकर असुर-सुर-नर-किन्नर-और तिर्यग् योनि वाले भी कर चुके [illegible] ।१९। उन्हीं देवों के भी देव-भजन करने वालों के लिये अभीप्सित प्रदान करने वाले-निरीह गुणों [illegible] रहित अर्थात् रजोगुणादि से रहित-न चिन्तन करने के योग्य-अव्यक्त और अघों के समुदायों के विनाश करने वाले-अरण तथा प्रेम के निधान

आपको मैंने आदर से इस समय ▬ प्राप्त कर लिया है ।२०। अन्य जन तो नाना भाँति के तपश्चर्या जनित तापों ▬ अपने देह को संतप्त किया करते हैं और विविध यज्ञों के द्वारा ▬ ▬ किया करते हैं। हे विभो ! इस प्रकार के परम क्लिष्ट विधानों के करते हुए भी वे ▬ किसी प्रयोजनों की सिद्धि ▬ लिए निबद्ध वासना वाले आपके इस अलौकिक स्वरूप का दर्शन ▬ में भी नेत्रों से नहीं किया करते हैं ।२१।

ये वै त्वदीयं चरणं भवभ्रमान्निर्विण्णचित्ता
विविधरसमरंसि ।
नमन्ति भक्त्याऽथ समर्चयन्ति वै परस्परं संसदि
वर्णयंति ।।२२
तेनैकजन्मोद्भवपंकभेदनप्रसक्तचित्ता भवतोंऽघ्रिपद्मे ।
तरंति चान्यानपि तारयंति हि भवौघकं नाम
सुधा लवेण ।।२३
अहं प्रभो कामनिबद्धचित्तो मर्त्यस्वभावं विविधप्रयत्नैः ।
आराधये नाथ भवाननिशः किं ते ह
विशाप्यभिशास्ति लोके ।।२४

वसिष्ठ उवाच—

इत्थेवं जामदग्न्यं तु स्तुवंतं प्रणतं पुरः ।
उवाचागाधया वाचा मोहयन्निव मायया ।।२५

कृष्ण उवाच—

हंत राम महाभाग सिद्धं मे कार्यमुत्तमम् ।
कवचस्य स्तवस्यापि प्रभावादवधारय ।।२६
हत्वा तं कार्तवीर्यं हि राजानं दृप्तमानसम् ।
साधयित्वा पितुर्वैरं कुरु निःक्षत्रियां महीम् ।।२७
मम चक्रावतारो हि कार्तवीर्यो धरातले ।
कृतकार्यो द्विजश्रेष्ठ तं समापय मानद ।।२८

जो-जो भी भक्तगण आपके चरणाम्बुजों का इस संसार [illegible] बारम्बार जन्म-मरण [illegible] घोर भय से वैराग्य वाले होकर विधि के साथ स्मरण किया करते हैं—भक्ति की [illegible] पूत भावना से भजन करते हैं और आपके चरणों का भली भाँति वर्णन किया करते हैं [illegible] परस्पर में एक-दूसरे सभा [illegible] इनका वर्णन किया करते हैं।२२। उस रीति से आपके चरण [illegible] में एक जन्म में समुत्पन्न पङ्क के भेदन करने में प्रसक्त चित्त वाले [illegible] स्वयं तर जाते हैं और दूसरों को तार दिया करते हैं। हे ईश ! आपका परम पुनीत नाम निश्चित रूप से इस सांसारिक रोग के दूर करने के लिए अमृत स्वरूप महौषध है।२३। हे प्रभो ! [illegible] तो कुछ [illegible] से निवद्ध चित्त वाला जाता हूँ। मैंने प्रथम जो इतना आपकी विधिपूर्वक प्रबल प्रयत्नों के साथ आराधना की थी। हे नाथ ! आप तो स्वयं ही इसके साक्षी [illegible] अर्थात् आपको सभी कुछ ज्ञात है। आपके लिए इस लोक में क्या बात विज्ञापित करने के योग्य है ? अर्थात् कुछ भी नहीं है।२४। वसिष्ठ जी ने कहा—इस प्रकार से स्तवन करते हुए अपने चरणों में आये प्रसन्न होने वाले परशुराम से माया से मोहित करते हुए के समान ही अगाध वाणी से प्रभु ने कहा था।२५। श्रीकृष्ण [illegible] भगवान् ने कहा—बड़ी ही [illegible] की बात है हे राम ! आप महान् भाग्य वाले हो। आपका [illegible] कार्य सिद्ध हो गया है। इसकी सिद्धि कवच और स्तव के ही प्रभाव से हुई है—इसको मन [illegible] लीजिए।२६। बहुत हो गये हैं युक्त मन वाले राजा कार्त्तवीर्य का हनन करके अपने पिता के साथ किये हुए कुत्सित व्यवहार के वैर का बदला लेकर इस भूमि को क्षत्रियों से रहित कर डालिए।२७। इस धरातल में यह कार्त्तवीर्य मेरे ही चक्र का अवतार है हे मानद द्विजश्रेष्ठ ! उसको समाप्त करके आप [illegible] हो जाइए।२८।

अद्य प्रभृति लोकेऽस्मिन्नंशावे तेन मे भवान् ।
चरिष्यति यथाकालं कर्त्ता हर्त्ता स्वयं प्रभुः ॥२९

चतुर्विंशे युगे [illegible] त्रेतायां रघुवंशजः ।
रामो नाम भविष्यामि चतुर्व्यूहः सनातनः ॥३०

कौसल्यानन्दजनको राज्ञो दशरथादहम् ।
तदा कौशिकयज्ञं तु साधयित्वा सलक्ष्मणः ॥३१

गमिष्यामि महाभाग जनकस्य पुरं महत् ।
तत्रेशचापं निर्भज्य परिणीय विदेहजाम् ॥३२

दान देने वाली हो जाइए। इस प्रकार से अभ्यर्थना करते हुए [illegible] परशुराम ने पापों के विनाश कर देने वाली नर्मदा के लिए [illegible] की थी।७।

दूतं प्रस्थापयामास कार्त्तवीर्यार्जुनं प्रति।
दूत राजा त्वया वाच्यो यदहं वच्मि तेऽनघ ॥८
न संदेहस्त्वया कार्यो दूतः क्वापि न वध्यते।
यद्बलं तु समाश्रित्य जमदग्निमुनिं नृपः ॥९
तिरस्त्वं कृतवान्मूढ तत्पुत्रो योद्धुमागतः।
शीघ्रं निर्गच्छ मंदात्मन्युद्धं रामाय देहि तत् ॥१०
भार्गवं त्वां समासाद्य गच्छ लोकांतरं त्वरा।
इत्येवमुक्त्वा राजानं श्रुत्वा [illegible] वचस्तथा ॥११
शीघ्रमागच्छ भद्रं ते विलम्बो नेह शस्यते।
तेनैवमुक्तो दूतस्तु गतो हैहयभूपतिम् ॥१२
रामोदितं तत्सकलं श्रावयामास संसदि।
[illegible] राजाभेयभक्तस्तु महाबलपराक्रमः ॥१३
चुक्रोध श्रुत्वा वाक्यं तद्दूतमुत्तरमाब्रवीत्।
कार्त्तवीर्य उवाच—
मया भुजबलेनैव यत्नतस्तेन मेदिनी ॥१४

उसके अनन्तर वहीं से एक दूत को कार्त्तवीर्यार्जुन के राजा [illegible] पास भेजा था। उन्होंने उस दूत से [illegible] था कि [illegible] दूत! तुमको वहाँ पहुँच कर [illegible] राजा कार्त्तवीर्य से यह कहना चाहिए हे अनघ! अर्थात् निष्पाप! जो कुछ भी [illegible] इस समय [illegible] तुमको बोल रहा हूँ।८। ऐसे कहने में तुमको डरना नहीं चाहिए और अपने लिये पाये जाने वाले किसी तरह [illegible] कुछ भी सन्देह नहीं करना चाहिए क्योंकि राजाओं के यहाँ पर ऐसा नियम [illegible] कि जो दूत बनकर आता है वह चाहे कैसी ही सूचना लेकर क्यों न आया हो उसका वध किसी भी दशा में कहीं पर भी नहीं किया जाता है। [illegible] राजा से तुम कह देना कि हे नृप! जिस [illegible] समाश्रय लेकर तू ने जमदग्नि महामुनि का महान् तिरस्कार किया [illegible] हे मूढ! उसी मुनि का पुत्र तुमसे युद्ध करके बदला लेने के लिए समागत हुआ है। हे मन्द

आत्मा वाले ! तनिक भी विलम्ब न करके बहुत ही शीघ्र अपनी नगरी से बाहर निकलकर आ जाओ और राम के साथ युद्ध करो।६-१०। उस भार्गव राम के समीप पहुँच कर शीघ्र ही दूसरे लोक को अर्थात् मृत्यु के मुख में । तरह राजा से कह देना और वह इसका उत्तर क्या देता है उसके वचनों का श्रवण करना ।।११। दूत ! तुम बहुत ही शीघ्र वापिस जाना। तुम्हारा इसमें ही ही कल्याण होगा। कार्य में विलम्ब बिल्कुल भी न होवे—इसी में तुम्हारी प्रशंसा है। इस रीति से उस दूत से कहा गया था तो वह दूत तुरन्त ही हैहय भूपति के समीप वहीं चला गया ।१२। उस राजा की सभा में दूत ने जैसा भी परशुराम के द्वारा गया था वह सब उसी प्रकार से उसने राजा को सुना दिया था। वह राजा कार्त्तवीर्य तो दत्तात्रेय महामुनि का परम भक्त था—इसका भी उसको बड़ा अभिमान था और वह महान् बल-पराक्रम से भी संयुत था ।१३। जब उसने दूत के द्वारा परशुराम का कहा हुआ सन्देश सुना तो उसको बहुत ही अधिक क्रोध आ गया और उसने दूत को इसका उत्तर दिया था। कार्त्तवीर्य राजा ने कहा—मैंने सम्पूर्ण मेदिनी को दत्तात्रेय के द्वारा प्रदान किये हुए अपनी भुजाओं के ही बल-पराक्रम से अपने अधिकार किया ।१४।

जिता प्रसह्य भूपालान्वश्यामीय निजं पुरम् ।
तद्बलं मयि वर्त्तेत युद्धं दास्ये तवाधुना ।।१५

इत्युक्त्वा विससर्ज्जाशु दूतं हैहयभूपतिः ।
सेनाध्यक्षं समाहूय प्रोवाच वदतांवरः ।।१६

सज्जं कुरु महाभाग सैन्यं मे वीरसंमत ।
योत्स्ये रामेण भृगुणा विलंबो मा भविष्यति ।।१७

एवमुक्तो महावीरः सेनाध्यक्षः प्रतापवान् ।
सैन्यं सज्जं विधायाशु चतुरंगं न्यवेदयत् ।।१८

सैन्यं सज्जं समाकर्ण्य कार्त्तवीर्यो नृपो मुदा ।
सूतोपनीतं स्वरथमारुरोह विशांपते ।।१६

तस्य राज्ञः समंतात्तु सामंता मंडलेश्वराः ।
अनेकाक्षौहिणीयुक्ताः परिवार्योपतस्थिरे ।।२०

नागास्तु कोटिशस्तत्र हयस्यंदनपत्तयः ।
असंख्याता महाराज सैन्ये सागरसन्निभे ॥२१

मैंने इस समस्त भूमि को जीत लिया है और समस्त भूपालों को बाँधकर अपने पुर में ले आया हूँ। वह सभी बल मुझमें विद्यमान है। एतएव अब मैं तुम्हारे साथ युद्ध अवश्य करूँगा।१५। इतना कहकर हैहय पति ने उस दूत को अपने यहाँ से शीघ्र ही विदाकर दिया था। और फिर बोलने वालों में परम श्रेष्ठ ने अपनी सेना के अध्यक्ष को बुला कर उसको आदेश दिया था।१६। हे महाभाग ! आप तो महान् वीरों के द्वारा माने हुए वीर हैं। इसी मेरी अपनी सेना को सज्जित करिए। मैं अभी भृगु राम के साथ युद्ध करूँगा इस कार्य में विलम्ब न होवे।१७। जब इस रीति से शीघ्र ही सेना के सुसज्जित करने के लिये सेनाध्यक्ष से कहा गया था तो उस प्रतापन नामक सेनाध्यक्ष ने चतुरङ्गिणी सेना को बहुत ही शीघ्र सज्जित करके राजा से निवेदन कर दिया था कि अब सेना प्रस्तुत है।१८। हे विप्रर्षे ! जिस समय में कार्त्तवीर्य नृप ने आनन्द से युक्त होते हुए अपनी सेना को पूर्णतया सुसज्जित सुना तो वे सारथि के द्वारा लाये हुए अपने रथ पर समारूढ़ हो गये थे।१९। उस राजा कार्त्तवीर्य के चारों ओर अनेक अक्षौहिणीयों से समन्वित होकर बड़े-बड़े सामन्त मंडलेश्वर उस राजा को परिवारित करके स्थित हो गये थे।२०। हे महाराज ! वहाँ पर सेना में करोड़ों की संख्या में हाथी-अश्व-रथ और पैदल सैनिक थे जिनकी कोई भी संख्या नहीं थी और वह सेना एक महान् सागर के ही सदृश थी।२१।

दृश्यन्ते तत्र भूपाला नानावंशसमुद्भवाः ।
महावीरा महाकाया नानायुद्धविशारदाः ॥२२
नानाशस्त्रास्त्रकुशला नानावाहगता नृपाः ।
नानालंकारसंयुक्ता मत्ता दानविभूषिताः ॥२३
महामात्रकृतोद्वेगा भांति नागा ह्यनेकशः ।
नानाजातिसमुत्पन्ना हयाः पवनरंहसः ॥२४
प्लवंतो भांति भूपाल सादिभिः कृतशिक्षणाः ।
स्यन्दनानि सुदीर्घाणि जवनाश्वयुतानि च ॥२५

चक्रनिर्घोषयुक्तानि प्रावृण्मेघोपमानि च ।
पदातयस्तु राजंते खड्गचर्मधरा नृप ॥२६

अहंपूर्वमहंपूर्वमित्यहंपूर्विकान्विताः ।
यदा प्रचलितं सैन्यं कार्त्तवीर्यार्जुनस्य वै ॥२७

तदा प्राच्छादितं व्योम रजसा च दिशो दश ।
नानावादित्रनिर्घोषैर्हयानां हेषितैस्तथा ॥२८

वहाँ पर [illegible] सेना में अनेक वंशों [illegible] समुत्पन्न हुए भूपाल दिखलाई दे रहे थे जो परम महान् वीर-बड़े विशाल शरीर को धारण करने वाले तथा अनेक प्रकार [illegible] युद्ध करने के कौशल [illegible] विशारद [illegible] ।२२। [illegible] [illegible] नृप विविध प्रकार के शस्त्रों और अस्त्रों के चलाने में प्रवीण थे और बहुत के वाहनों से युक्त थे । वे सब नृप नाना भाँति के अलङ्कारों से भूषित थे । [illegible] सेना में बड़े मदमत्त हाथी थे जो मद से विभूषित थे ।२३। उस सेना में अनेक प्रकार [illegible] [illegible] शोभा दे रहे थे । जिनका उद्देश बड़े-बड़े कार्य करना ही था । विविध प्रकार की जातियों में समुत्पन्न होने वाले अश्व थे जिनकी गति का वेग वायु के ही सदृश [illegible] ।२४। हे भूपाल ! उन अश्वों को उनके सादियों [illegible] द्वारा ऐसी शिक्षा दी गयी थी कि [illegible] वल्गन करते हुए शोभा [illegible] रहे थे । [illegible] सेना में बड़े-बड़े सुविशाल और लम्बे-चौड़े रथ थे जिनमें ऐसे घोड़े जुड़े हुए थे जो बड़ी ही शीघ्रता [illegible] गमन किया करते थे ।२५। रथों [illegible] पहियों के चलने के समय में बड़ी जोरदार ध्वनि होती थी जो ऐसे ही प्रतीत हो रहे थे मानों वर्षा काल के मेघ गर्जते चले आ रहे होवें । हे नृप ! जो पैदल सैनिक थे वे [illegible] [illegible] और तलवार धारण करने वाले [illegible] ।२६। वे पैदल सैनिक परस्पर [illegible] चलने के लिये—मैं आगे चलूँगा—मैं सबसे पहिले चलूँगा—इस प्रकार से सभी आगे-आगे बढ़कर सेना में [illegible] के लिये वीर भावना [illegible] समन्वित थे । [illegible] रीति से जिस [illegible] में राजा कार्त्तवीर्य की वह सुमहान् विशाल सेना युद्ध के लिए वहाँ से चल दी थी उस [illegible] से सम्पूर्ण दशों दिशाएँ और आकाश सेना के सैनिकों और उनके वाहनों के चलने से उठकर उड़ी हुई धूलि से आच्छादित हो गये थे अर्थात् चारों ओर रज [illegible] गयी थी । सेना के प्रस्थान के [illegible] में अनेक तरह के बाजे [illegible] रहे थे इनके घोष से तथा अश्वों के हिन-हिनाने से आकाश मण्डल व्याप्त हो गया [illegible] अर्थात् नभ में गूँज [illegible] रही थी ।२७-२८।

गजानां बृंहितै राजन्व्याप्तं गगनमंडलम् ।
मार्गे ददर्श राजेन्द्रो विपरीतानि भूपते ॥२९
शकुनानि रणे तस्य मृत्युदौत्यकराणि [illegible] ।
मुक्तकेशां छिन्ननासां रुदतीं च दिगंबराम् ॥३०
कृष्णवस्त्रपरीधानां वनितां स ददर्श ह ।
कुचैलं पतितं भग्नं नग्नं काषायवाससम् ॥३१
अंगहीनं ददर्शासौ नरं दुःखितमानसम् ।
गोधां च शशकं शल्यं रिक्तकुम्भं सरीसृपम् ॥३२
कार्पासं कच्छपं तैलं लवणं चास्थिखंडकम् ।
स्वदक्षिणे शृगालं [illegible] कुर्वतीं भैरवं रवम् ॥३३
रोगिणं पुल्कसं चैव वृषं च श्वेतभल्लुकौ ।
दृष्ट्वापि प्रययौ योद्धुं कालपाशावृतो हठात् ॥३४
नर्मदोत्तरतीरस्थो ह्यकृतव्रणसंयुतः ।
वटच्छायासमासीनो रामोऽपश्यदुपागतम् ॥३५

हे राजन् ! हाथियों की चिंघाड़ों से सम्पूर्ण गगन [illegible] भर कर गूँज गया था । हे भूपते ! जिस समय वह राजेन्द्र अपनी महती सेना को लेकर परशुराम से युद्ध करने के लिए गमन कर रहा था उस समय [illegible] मार्ग में विपरीत बहुत से शकुन देखे थे जो कि रण [illegible] [illegible] मृत्यु के होने की सूचना देने वाले दूतों के ही समान थे । यहाँ से आगे उन बुरे असगुनों [illegible] विषय में बतलाया [illegible] है जो-जो उस राजा ने मार्ग में देखे थे-उस [illegible] ने एक ऐसी नारी को देखा था जो अपने सिर के केशों को खोले हुई थी—वह रुदन [illegible] रही थी और बिल्कुल नग्न थी ।२९-३०। वह काले वर्ण का परिधान की हुई थी । इसका तात्पर्य यह है कि ऐसी स्त्री मार्ग में मिले तो बड़ा ही बुरा सगुन है । ऐसा पुरुष भी यदि मिल जावे तो वह भी बुरा सगुन है जैसा उस कार्त्तवीर्य ने देखा था । उसे एक ऐसा पुरुष दिखाई दिया [illegible] जो बहुत ही मैले-कुचैले वस्त्र पहिने हुए था—भूमि पर पड़ा था—उसका शरीर जीर्ण-शीर्ण था और [illegible] (गेहुआ) रङ्ग के वस्त्र धारण किये हुए था ।३१। वह पुरुष अङ्गों से हीन [illegible] और उसके मन में बड़ा ही

अधिक दु:ख था। काना-लकड़ा-लूला-लंगड़ा मनुष्य जो किसी भी अपने अङ्ग से हीन हो वह शुभ कार्य के करने के समय में मार्ग में मिल जावे तो असगुन होता है। मार्ग से तात्पर्य अपने स्थान से निकलते ही मिल जाने से है। उस राजा ने इसके अतिरिक्त अन्य भी बुरे-बुरे असगुन थे। उनके नाम बताये जाते हैं—उसने गोधा (गोह)—शशक (खरगोश)—मत्स्य से रिक्त ____ और सरीसृप को देखा था।३२। उसने फिर कपास-कण्ठ-तैल-लवण-हड्डी का टुकड़ा और अपनी दाहिनी ओर भैरव ____ करते हुए शृंगाल को देखा था।३३। इनमें से कोई भी एक यदि मार्ग में ____ निकलते ही देखने को मिल जाता है तो असगुन होता है जिसमें उस राजा ने इन सभी बुरे सगुनों को देखा था। फिर राजा ने पुल्कस–रोगी मनुष्य-नृप-श्येन और मल्लूक को देखा था। इन सब बुरे-बुरे असगुनों को बार-बार देखकर भी हठ के वश वह राजा युद्ध करने के लिये ____ ही दिया था क्योंकि वह तो काल के पाश में समाकुल था।३४। राम अकृतव्रण के सहित नर्मदा नदी के उत्तर की ओर तट पर स्थित था और एक वट वृक्ष की ____ का समाश्रय ग्रहण कर रक्खा था। उस परशुराम ने उस राजा कार्त्तवीर्य को सेना सहित आता हुआ ____ लिया था।३५।

कार्त्तवीर्यं नृपवरं शतकोटिनृपान्वितम् ।
सहस्राक्षौहिणीयुक्तं दृष्ट्वा हृष्टो बभूव ह ॥३६

____ मे सिद्धिमायातं कार्यं चिरसमीहितम् ।
यद्दृष्टिगोचरो जातः कार्त्तवीर्यो नृपाधमः ॥३७

इत्येवमुक्त्वा चोत्थाय धृत्वा परशुमायुधम् ।
व्यंजृम्भतारिनाशाय सिंहः क्रुद्धो यथा तथा ॥३८

दृष्ट्वा समुद्यतं रामं सैनिकानां वधाय च ।
चकंपिरे भृशं सर्वे मृत्योरिव शरीरिणः ॥३९

स यत्र यत्रानिलरंहसा भृगुश्चिक्षेप रोषेण युतः परश्वधम् ।
ततस्ततश्छिन्नभुजोरुकंधरा नागा नृपाः शूरनरा निपेतुः ॥४०

यथा गजेंद्रो मदयुक्तसमंततो नालं वने मर्द्दयति प्रधावन् ।

तथैव रामोऽपि मनोनिलौजा विमर्दयामास

नृपस्य सेनाम् ॥४१

दृष्ट्वा समित्स्थं प्रहरंतमोजसा रामं रणे शस्त्रभृतां वरिष्ठम् ।

उद्यम्य चापं महदास्थितो रथं सज्यं च कृत्वा

किल मत्स्यराजः ॥४२

परशुराम ने श्रेष्ठ नृप कार्त्तवीर्यार्जुन को देखा [illegible] जो सौ करोड़ राजाओं [illegible] [illegible] संयुत [illegible] और सहस्र अक्षौहिणी सेनाएँ भी उसके साथ थीं—ऐसे विशाल समुदायों को देखकर परशुराम मन में बहुत ही प्रसन्न [illegible] थे । हर्षातिरेक [illegible] कारण यही था कि जब मेदिनी को क्षत्रियों [illegible] हीन ही करना है तो इस समय में एक ही साथ बहुत से क्षत्रिय समागत हो गये हैं ।३६। परशुराम ने अपने मन में विचार किया कि बहुत समय से चाहा हुआ मेरा कार्य आज सिद्धि को प्राप्त हुआ है कि यह महान् अधम नृप कार्त्तवीर्य मेरी दृष्टि के सामने आ गया [illegible] ।३७। अपने मन में यह कहकर वह वहाँ से उठकर खड़े हो गये थे और अपने आयुध परशु को धारण कर लिया था । फिर अपने शत्रु [illegible] विनाश करने [illegible] लिए परशुराम ने गर्जना की थी जिस तरह से क्रुद्ध हुआ सिंह गर्जा करता है ।३८। फिर समस्त है ।३८। फिर समस्त सैनिकों के वध करने के लिए समुद्यत हुए परशुराम को देखकर सभी मृत्यु [illegible] शरीर धारियों के ही समान बहुत ही अधिक काँप गये थे ।३९। [illegible] महावीर परशुराम ने रोष से युक्त होकर जहाँ-जहाँ पर अपने परशु को फेंककर प्रहार किया था जो कि वायु [illegible] वेग के ही समान किया गया था वहाँ-वहाँ पर ही कटे हुए बाहु-वक्षःस्थल और गरदन वाले हाथी—अश्व और शूर वीर मनुष्य मरकर भूमि पर गिर गये थे ।४०। जिस तरह से [illegible] से [illegible] कोई गजेन्द्र दौड़ लगाता हुआ नाल वनका मर्दन कर दिया करता है ठीक उसी भाँति से परशुराम ने भी मन और वायु के [illegible] ओज से युक्त होकर उस नृप की सेना का मर्दन कर कर दिया था ।४१। उस रणस्थल में इस रीति से अपने ओज के द्वारा प्रहार करते हुए शस्त्रधारियों में परमश्रेष्ठ परशुराम को देखकर मत्स्यराज नामक राजा ने अपने धनुष को उठाया [illegible] तथा फिर वह अपने विशाल रथ पर समास्थित हो गया था ।४२।

आकृष्य बाणाननलोग्रतेजसः समाकिरन्भार्गवमाससाद ।
दृष्ट्वा तमायांतमथो महात्मा रामो
गृहीत्वा धनुषं महोग्रम् ॥४३
वायव्यमस्त्रं विदधे रुषाप्लुतो निवारयन्मंगलबाणवर्षम् ।
स चापि राजाऽतिबलो मनस्वी ससर्ज रामाय तु
पर्वतास्त्रम् ॥४४
स्तस्तंभ तेनातिबलं तदस्त्रं वायव्यमिष्वस्त्रविधानदक्षः ।
रामोऽपि तत्रातिबलं विदित्वा तं मत्स्यराजं
विविधास्त्रपूगैः ॥४५
किरंतमाजौ प्रसभं मुमोच नारायणास्त्रं विधिमन्त्रयुक्तम् ।
नारायणास्त्रे भृगुणा प्रयुक्ते रामेण राजन्नृपतेर्वधाय ॥४६
दिशस्तु सर्वाः सुभृशं हि तेजसा प्रजज्वलुर्मत्स्यपतिश्चकंपे ।
रामस्तु तस्याथ विलक्ष्य ■■ बाणैश्चतुर्भि-
र्निजघान वाहान् ॥४७
शरेण चैकेन ध्वजं महात्मा चिच्छेद चापं ■ शरद्वयेन ।
बाणेन चैकेन प्रसह्य सारथिं निपात्य
भूमौ रथमार्द्दयश्शिखिः ॥४८
त्यक्त्वा रथं भूमिगतं च मंगलं परश्वधेनाशु जघान मूर्द्धनि ।
स भिन्नशीर्षो रुधिरं वमन्मुहुर्मूर्च्छामवाप्याथ
ममार च क्षणात् ॥४९
तत्सैन्यनस्त्रेण च संप्रदग्धं विनाशमायादथ भस्मसात्क्षणात् ।
तस्मिन्निपतिते राज्ञि चन्द्रवंशसमुद्भवे ॥५०
मंगले नृपतिश्रेष्ठे रामो हर्षमुपागतः ॥५१

उस राजा मत्स्यराज ने अपने धनुष की प्रत्यञ्चा को खींचकर उसने अग्नि के समान उग्र तेज वाले बाणों की चारों ओर भली-भाँति वर्षा करते हुए भार्गव ■ समीप में वह प्राप्त हो गया ■ । इसके अनन्तर

महात्मा परशुराम ने भी अपने करके आये हुए उसको देख कर अपने महान उस धनुष को ग्रहण कर लिया था।४३। राम ने भी क्रोध से आप्लुत होकर उस मंगल बाणों की वृष्टि का निवारण करते हुए अपने का प्रयोग किया था। वह राजा मत्स्यराज भी बहुत अधिक बली था और बड़ा मनस्वी उसने परशुराम के ऊपर पर्वतास्त्र का प्रयोग किया था अर्थात् राम ऊपर छोड़ दिया था।४४। बाणों और अस्त्रों के विधान परम दक्ष उसने उस राम के अति बलशाली वायव्य अस्त्र को स्तम्भित कर दिया था अर्थात् जहाँ की तहाँ रोककर क्रियाहीन बना दिया था। परशुराम ने भी वहाँ पर मत्स्यराज को अत्यधिक बल-विक्रम विविध भाँति के अस्त्रों शत्रुओं की मत्स्यराज पर वर्षा करते हुए फिर रणभूमि विधि के मन्त्र से युक्त बलपूर्वक नारायणास्त्र को छोड़ दिया था। हे राजन्! उस राजा के के लिए भृगुराम के द्वारा नारायणास्त्र का प्रयोग करने पर सर्वत्र दाह उत्पन्न हो गया।४५-४६। अस्त्र के तेज से समस्त दिशाएँ बहुत ही अधिक प्रज्वलित हो गयी और वह मत्स्य देश का राजा भी उस भीषण दशा को देखकर काँप गया था। परशुराम ने जब उस राजा के कम्प को देखा तो फिर उसमें चार बाणों उसके वाहनों हनन किया था।४७। महात्मा ने एक उसकी ध्वजा को काट दिया था और दोसरों से धनु का छेदन किया था तथा एक से बल पूर्वक सारथि का निपातन करके तीन बाणों से भूमि पर रथ को चूर्ण कर दिया था।४८। अपने रथ का त्याग करके भूमि पर स्थित मंगल मस्तक शीघ्र ही परशु से प्रहार करके उसका हनन कर दिया था। उसका शिर भग्न हो गया था तो वह रुधिर वमन करता हुआ बार-बार मूर्च्छा प्राप्त करके एक ही क्षण मृत्यु के मुख में चला ।४९। उसकी समस्त सेना भी से हो गयी थी और क्षण भर में ही इसके उपरान्त भस्मसात् होकर विनाश को प्राप्त हो गयी थी। चन्द्रवंश में समुत्पन्न नृपों श्रेष्ठ राजा मञ्जुल के निपतित हो जाने पर राम को परम हर्ष प्राप्त हुआ।५०-५१।

— x —

भार्गव-चरित (३)

वसिष्ठ उवाच—

मत्स्यराजे निपतिते राजा युद्धविशारदः ।
राजेंद्रान्प्रेरयामास कार्त्तवीर्यो महाबलः ॥१
बृहद्बलः सोमदत्तो विदर्भो मिथिलेश्वरः ।
निषधाधिपतिश्चैव मगधाधिपतिस्तथा ॥२
आययुः समरे योद्धुं भार्गवेंद्रेण भूपते ।
ववृषुः शरजालानि नानायुद्धविशारदाः ॥३
वीराभिमानिनः सर्वे हैहयस्याज्ञया तदा ।
पिनाकहस्तः स भृगुर्ज्वलदग्निशिखोपमः ॥४
चिक्षेप नागपाशं च अभिमंत्र्य शरोत्तमम् ।
तदस्त्रं भार्गवेन्द्रेण क्षिप्तं संग्राममूर्द्धनि ॥५
चकर्त गारुडास्त्रेण सोमदत्तो महाबलः ।
ततः क्रुद्धो महाभागो रामः शत्रुविदारणः ॥६
रुद्रशीर्ष गलेन सोमदत्तं जघान ह ।
बृहद्बलं च गदया विदर्भं मुष्टिना तथा ॥७

वसिष्ठजी ने कहा—मत्स्यराज के मर जाने पर युद्ध करने की कला के महामनीषी—महान बलशाली कार्त्तवीर्य ने फिर वहाँ रणभूमि में अन्य राजेन्द्रों को भेजा था ।१। मिथिला [illegible] स्वामी विदर्भ सोमदत्त बहुत अधिक बल वाला था । निषध देश [illegible] अधिपति और [illegible] देश [illegible] स्वामी—ये [illegible] हे भूपते ! भार्गवेन्द्र परशुराम [illegible] साथ युद्ध करने के लिए समागत हो गये थे । ये सभी अनेक प्रकार [illegible] युद्ध करने में परम पण्डित थे और ये वहाँ अपने बाणों के जालों की वर्षा कर रहे थे ।२-३। ये सभी वीरता के अभिमान रखने वाले थे और उस समय में राजा [illegible]हय की आज्ञा पाकर ही युद्ध करने के लिए आये थे । वह भृगु परशुराम अपने हाथ [illegible] धनुष ग्रहण किये थे तथा जलती हुई अग्नि के समान परम तेजस्वी थे ।४। भार्गवेन्द्र परशुराम ने नागपाश नामक एक अस्त्र [illegible] उसके उत्तम शर को अभिमन्त्रित करके

संग्राम में फेंका [illegible] ।५। किन्तु भार्गवेन्द्र के द्वारा प्रक्षिप्त किये [illegible] अस्त्र को महा बलवान् सोमदत्त ने काट दिया [illegible] और उसको अपने गदास्त्र से ही खण्डित कर दिया था। इसके [illegible] महाभाग राम [illegible] क्रुद्ध हुए थे जो कि अपने शत्रुओं का विदारण करने वाले थे।६। इसके पश्चात् परशु- [illegible] ने भगवान रुद्र के द्वारा दिये [illegible] शूल [illegible] सोमदत्त [illegible] हनन कर दिया था—गदा से बृहद्बल [illegible] और मुष्टि के प्रहार से विकर्ण का निपातन कर दिया [illegible] ।७।

मैथिलं मुद्गरेणैव शक्त्या च निषधाधिपम् ।
मागधं चरणाघातैरस्त्रजालेन सैनिकान् ॥८
निहत्य निखिलां सेनां संहाराग्निसमीरणे ।
दुद्राव कार्त्तवीर्यं च जामदग्न्यो महाबलः ॥९
दृष्ट्वा तं योद्धुमायातं राजानोऽन्ये महारथाः ।
कार्याकार्यविधानज्ञाः पृष्ठे कृत्वा च हैहयम् ॥१०
रामेण युयुधुश्चैव वर्णयंतश्च सौहृदम् ।
कान्यकुब्जाश्च शतशः सौराष्ट्राऽवंतयस्तथा ॥११
चक्रुश्च शरजालानि रामस्य च समंततः ।
शरजालावृतस्तैस्तु रामः संग्राममूर्द्धनि ॥१२
न चादृश्यत राजेंद्र तदा स स्वकृतव्रणः ।
सस्मार रामचरितं यदुक्तं हरिणेन वै ॥१३
कुशलं भार्गवेंद्रस्य याचमानो हरिं मुनिः ।
एतस्मिन्नेव काले तु रामः शस्त्रास्त्रकोविदः ॥१४

राम ने मिथिला के नृप का हनन मुद्गर के द्वारा और शक्ति से निषध देश के नृप का वध [illegible] मगधदेशाधिपति का निपातन चरणों [illegible] आघातों से एवं उनके सब सैनिकों [illegible] वध अपने अनेक अस्त्रों के प्रहारों से [illegible] दिया।८। [illegible] रीति से परशुरामजी ने वहाँ पर स्थित सम्पूर्ण सेना को मारकर महान् बलवान् जामदग्नि के पुत्र ने उस संहार की अग्नि के समीरण [illegible] राजा कार्त्तवीर्य पर दौड़कर आक्रमण किया था।९। [illegible] समय में महा-रथी अन्य राजाओं ने जो कि कार्य और अकार्य के विधान के ज्ञाता थे पृष्ठ

यह देखकर कि परशुराम कार्त्तवीर्य [illegible] [illegible] करने के लिए [illegible] रहे हैं तो उन सबने उस कार्त्तवीर्य को अपने पीठ [illegible] [illegible] दिया था ।१०। और हैहय राजा के प्रति [illegible] सौहार्द दिखलाते हुए वे सब परशुराम के साथ युद्ध [illegible] रहे थे । इन राजाओं में काम्य कुरू-सौराष्ट्र और सैकड़ों ही अवन्ति के नृप थे ।११। इन सभी ने परशुराम [illegible] सभी ओर अपने शरों के जालों की ऐसी घोर वर्षा की थी कि [illegible] [illegible] में परशुराम उनके बाणों [illegible] उस संग्राम भूमि में चारों ओर से [illegible] गये [illegible] ।१२। हे राजेन्द्र ! [illegible] बाणों की वृष्टि से राम दिखाई नहीं दे रहे थे । तब [illegible] अकृतव्रण ने उस श्रीराम के चरित का स्मरण किया था जो हरिण के द्वारा कहा गया था ।१३। उस मुनि ने भगवान् श्रीहरि से भार्गवेन्द्र परशुराम [illegible] कुशल रहने [illegible] याचना की थी । इतने ही बीच [illegible] ऐसा हुआ कि [illegible] शस्त्रों और अस्त्रों के महा-पण्डित परशुराम ने अपने महान् आयुधों [illegible] प्रयोग किया था ।१४।

विधूय शरजालानि वायव्यास्त्रेण मंत्रवित् ।
उदतिष्ठन्नथाकाशे नीहारादिव भास्करः ॥१५
निरायं समरे रामस्तैः सार्द्धं युयुधे बली ।
द्वादशाक्षौहिणीस्तत्र विष्णेव लघुविक्रमः ॥१६
स्कन्धावारमभयं महत् परश्वधवरायुधः ।
सर्वांस्तान्भूपवर्यांश्च तदीयाश्च महाचमूः ॥१७
दृष्ट्वा विनिहतां तेन रामेण सुमहात्मना ।
आजगाम महावीर्यः सुचन्द्रः सूर्यवंशजः ॥१८
लक्षराजन्यसंयुक्तः सप्ताक्षौहिणिसंयुतः ।
तत्रानेकमहावीरा गर्जंतस्तोयदा इव ॥१९
कंपयंतो भुवं राजन् युयुधुर्भार्गवेण च ।
तैः प्रयुक्तानि शस्त्राणि महास्त्राणि च भूपते ॥२०
क्षणेन नाशयामास भार्गवेन्द्रः प्रतापवान् ।
गृहीत्वा परशुं दिव्यं कालांतकयमोपमम् ॥२१

मन्त्रों के परमज्ञाता राम ने अपने अस्त्र के द्वारा समस्त शरों [illegible] समुदाय को दूर करके कुहरे से निकले हुए भगवान् सूर्य देवकी भाँति वहाँ

पर रण करने की ____ वाले उठकर खड़े हो गये थे ।१४। महान् बलवान् उन परशुराम ने ___ सबके साथ तीन दिन और रात्रि पर्यन्त समराङ्गण में घोर युद्ध किया था । और परम लघु विक्रम वाले परशुराम ने वहाँ पर बारह अक्षौहिणी सेनाओं ___ छेदन कर दिया था अर्थात् सबको ____ मार गिराया था ।१६। जिस तरह से केसरों के ___ को काटकर गिरा दिया जाया करता है उसी भाँति _ परम श्रेष्ठ परशुराम ने अपने परशु से उन सब नृपों को और उनकी बड़ी भारी सेनाओं को काटकर मार दिया था । जब सूर्यवंश में समुत्पन्न महान् वीर्य वाले सुचन्द्र नामक नृप ने यह देखा ___ कि उस महात्मा राम ने सब सेना को मार गिराया है तो वह वहाँ पर युद्ध करने _ लिए स्वयं सामने आगया था ।१८-१९। उसके ___ लाखों अन्य राजा थे और सात अक्षौहिणी सेना भी थी। उनमें बहुत से ऐसे महान् वीर थे जो घनघोर मेघों के ही समान गर्जन कर रहे थे ।१९। _ राजन् ! वे अपनी गर्जना-तर्जना से सम्पूर्ण भूमि के प्राणियों को कंपा रहे थे और उन्होंने वहाँ आकर परशुराम के साथ घोर युद्ध किया ___ । हे भूपते ! उन्होंने अनेक शस्त्रों और अस्त्रों का वहाँ पर प्रयोग किया ___ ।२०। ___ एक ही क्षण में महान् प्रताप वाले परशुराम ने कालान्तक ______ _ सदृश अपने परम दिव्य परशु (फर्सा) का ___ करके उन सबका विनाश कर दिया था ।२१।

कालयन्सकलां सेनां चिच्छेद भृगुनन्दनः ।
कर्षकस्तु यथा क्षेत्रे पक्वं धान्यं तथा तृणम् ॥२२

निःशेषयति दात्रेण तथा रामेण तत्क्षणम् ।
क्षत्रराजन्यसैन्यं तद्दृष्ट्वा रामेण दारितम् ॥२३

सुचन्द्रः पृथिवीपालो युयुधे संगरे नृप ।
तावुभौ तत्र संक्रुद्धौ नानास्त्रास्त्रकोविदौ ॥२४

युयुधाते महावीरौ मुनीमनुपतीश्वरौ ।
रामोऽस्मै यानि शस्त्राणि चिक्षेपास्त्राणि चापि हि ॥२५

तानि सर्वाणि चिच्छेद सुचंद्रो युद्धपंडितः ।
ततः क्रुद्धो रणे रामः सुचंद्रं पृथिवीश्वरम् ॥२६

रामः शक्तिं च मुसलं तोमरं पट्टिशं ▬ ।
गदां च परशुं कोपात्चिक्षेप नृपमूर्द्धनि ॥३१
जग्राह तानि सर्वाणि सुचंद्रो लीलयैव हि ।
चिक्षेप शिवशूलं च रामो नृपतये यदा ॥३२
बभूव पुष्पमाला च तच्छूलं नृपतेर्गले ।
ददर्श च पुरस्तस्य भद्रकालीं जगत्प्रसूम् ॥३३
वहंतीं मुंडमालां ▬ विकटास्यां भयंकरीम् ।
सिंहस्थां च त्रिनेत्रां च त्रिशूलवरधारिणीम् ॥३४
दृष्ट्वा विहाय मस्त्रास्त्रं नमस्कृत्य समीक्ष्य ।
राम उवाच–
नमोऽस्तु ते शंकरवल्लभायै जगत्सवित्र्यै समलंकृतायै ॥३५

और वह अस्त्र भी समस्त अस्त्रों में परम पूज्य था क्योंकि साक्षात् भगवान् नारायण ने ही उसका निर्माण किया ▬ । जब ▬ सुचन्द्र को ▬ भाँति से प्रणाम करते हुए देखा तो वह ▬ उसको छोड़कर भगवान् नारायण के ही समीप में चला गया ▬ ।२९। अपने शत्रुओं के विनाश करने वाले परशुराम को ▬ समय में समर स्थल में ▬ ही अधिक विस्मय हो गया ▬ जबकि उन्होंने यह देखा ▬ कि उनके द्वारा प्रयोग किया हुआ ▬ महान् अस्त्र भी व्यर्थ हो गया ▬ और ▬ भी शत्रु का न करके उसी रूप में ▬ वह ▬ रहा था ।३०। फिर राम ने अनेक शक्ति–मुसल–तोमर–पट्टिश–गदा और परशु आदि ▬ ▬ सुचन्द्र ▬ प्रक्षेप बड़े ही क्रोध पूर्वक किया था ।३१। किन्तु इन सबका कुछ भी ▬ उस पर नहीं हुआ था और उसने उन सबको यों ही लीला ▬ ही ग्रहण ▬ लिया था । जिस ▬ में परशुराम ने उस सुचन्द्र पर शिवशूल ▬ प्रक्षेप किया ▬ ।३२। तो वह शिव शूल भी जाकर उस राजा ▬ गले ▬ पुष्पों की माला होकर गिर गया था । ▬ समय ▬ परशुराम ने यह देखा था कि उसके आगे समस्त जगत् ▬ जननी भद्रकाली संस्थित हो रही ▬ ।३३। वह भद्रकाली देवी नरमुण्डों की माला ▬ में पहिने हुई थीं तथा ▬ मुख बहुत ही भीषण था और सबको भय देने वाली थी । वह एक सिंह के ऊपर सवार रही थी—तीन उसके नेत्र थे और हाथों में त्रिशूल धारण कर रही थी

।२४। ऐसी भगवती भद्रकाली का दर्शन करके परशुराम जी ने अपने सभी शस्त्र-अस्त्रों का परित्याग कर दिया था और देवी के चरणों में प्रणाम करके फिर उसकी भली भाँति स्तुति की थी। परशुराम ने कहा—आप ■ भगवान् शङ्कर की प्रियवल्लभा हैं और इस सम्पूर्ण जगत् को जन्म देने वाली हैं। आपके लिए मेरा नमस्कार है।३५।

नानाविभूषाभिरिभारिगायै प्रपन्नरक्षाविहितोद्यमायै ।
दक्षप्रसूत्यै हिमवद्भवायै महेश्वराङ्गसमास्थितायै ॥३६

कान्त्यै कलानाथकलाधरायै भक्तप्रियायै भुवनाधिपायै ।
ताराभिधायै शिवतत्परायै गणेश्वराराधितपादुकायै ॥३७

परात्परायै परमेष्ठिदायै तापत्रयोन्मूलनचिन्तनायै ।
जगद्धितायास्तपुरत्रयायै बालादिकायै त्रिपुराभिधायै ॥३८

समस्तविद्यासुविलासदायै जगज्जनन्यै निहिताहितायै ।
वक्रानानायै बहुसौख्यदायै विध्वस्तनानासुरदानवायै ॥३९

वराभयालंकृतदोर्लतायै समस्तगीर्वाणनमस्कृतायै ।
पीताम्बरायै पवमानगायै वृषप्रदायै शिवसंस्तुतायै ॥४०

नागारिगायै नवखण्डपायै नीलाचलाभागलसत्प्रभायै ।
लघुक्रमायै ललिताभिधायै लेखाधिपायै लवणाकरायै ॥४१

लोलेक्षणायै लयवर्जितायै लाक्षारसालंकृतपंकजायै ।
रमाभिधायै रतिसुप्रियायै रोगापहायै रचिताखिलायै ॥४२

आप विविध प्रकार ■ आभूषणों से समलंकृता हैं और इभारि के द्वारा गान की गयी हैं। आपकी शरणागति में प्रपन्न हो जाते हैं उनकी सुरक्षा के लिये आप उद्यम करने वाली ■। आपने प्रजापति दक्ष के घर में जन्म धारण किया है और हिमवान् के यहाँ भी आप समुत्पन्न हुई हैं। आप साक्षात् महेश्वर की पाणिपरिणीता प्रिय पत्नी बनकर उनके अर्द्धाङ्ग में समास्थित हुई है।३६। आप कला नाथ की कला के धारण करने वाली हैं—अपने भक्तों की प्रिय वाली हैं और समस्त भुवनों की स्वामिनी हैं। तारा नाम वाली हैं—भगवान् शिव की सेवा में सर्वदा तत्पर रहा करती हैं

और विश्वेश्वर गणेश आपकी पादुकाओं का समाराधन किया करते हैं ।३७। पर से भी परा हैं—परमेष्ठी के पद को प्रदान करने वाली हैं और आध्यात्मिक-आधिदैविक-आधिभौतिक—इन तीनों प्रकार के तापों का उन्मूलन करने वाला आपका चिन्तन हुआ करता है—इस जगत् के हित के लिए ही आपने त्रिपुरासुर को निहत किया था । बाला से आदि लेकर अनेक आपके शुभ नाम हैं आपका परम शुभ त्रिपुरा—यह भी नाम है । ऐसी आपके लिये मेरा प्रणाम है ।३८। आप समस्त विद्याओं के सुविलास के प्रदान करने वाली हैं—इस सम्पूर्ण जगत् के जनन देने वाली जननी हैं—अहित करने वाले शत्रुओं को निहत कर देने वाली हैं—आप बकामला है अर्थात् बगुलामुखी हैं—आपके अनेक असुरों और दानवों का निहनन किया है और अत्यधिक सौख्य प्रदान किया है ।३६। आपके कर कमलों में वरदान और अभयदान रहते हैं और इनसे आपकी भुजलताएँ भूषित रहा करती हैं—समस्त देवगणों के द्वारा आपके चरण कमल वन्दित हैं—आप पीताम्बरा अर्थात् पीतवर्ण के वस्त्र धारण करने वाली हैं—आप वायु के ही समान अपने भक्तों की पीड़ा दूर करने के लिये शीघ्र गमन करने वाली हैं—आपका संस्तवन भगवान् शङ्कर भी किया करते हैं तथा आप आप सबको शुभ प्रदान करने वाली हैं—ऐसी आपकी चरण सेवा में मेरा अनेक बार प्रणिपात है ।४०। आप नागारि के द्वारा गान की गयी हैं—नव कान्ति वाले विश्व का पालन एवं रक्षण करने वाली हैं तथा नीलाचल की आभा वाले अंगों की प्रभा से शोभित हैं । आप मधुकमा—ललिता नाम धारिणी—लेखाधिपा और कमलाकारा हैं—।४१। आपके नेत्र परमाद्भुत हैं—आप लय से वर्जित हैं और आपके चरणों में लाक्षारस लगा हुआ है जिससे आपके चरण कमल समलंकृत हैं । आपका शुभ नाम रमा है—आप सुरति से प्यार करने वाली हैं—आप सभी रोगों का अपहरण करने वाली हैं और आपने ही सबकी रचना की है—ऐसी आपके लिए मेरा प्रणाम निवेदित है ।४२।

राज्यप्रदायै रमणोत्सुकायै रत्नप्रभायै रुचिराम्बरायै ।
नमो नमस्ते परतः पुरस्तात् पार्श्वाधरोर्ध्वं च
नमो नमस्ते ।।४३

सदा च सर्वत्र नमो नमस्ते नमो नमस्तेऽखिलविघ्नहायै ।
प्रसीद देवेशि मम प्रतिज्ञां पुरां कृतां पालय भद्रकालि ।।४४

त्वमेव माता च पिता त्वमेव जगत्त्रयस्यापि नमो नमस्ते ।

वसिष्ठ उवाच–

एवं स्तुता तदा देवी भद्रकाली तपस्विनी ॥४५

उवाच भार्गवं प्रीता वरदानकृतोत्सवा ।

भद्रकाल्युवाच–

वत्स राम महाभाग प्रीतास्मि [illegible] सांप्रतम् ॥४६

वरं वरय मत्तो यस्त्वया काम्यर्थितो हृदि ।

राम उवाच–

मातर्यदि वरो देयस्त्वया मे भक्तवत्सले ॥४७

तत्सुचंद्रं जये युद्धे तवानुग्रहभाजनम् ।

इति मेऽभिहितं देवि कुरु प्रीतेन चेतसा ॥४८

आप राज्य के प्रदान करने वाली हैं—आप रमण करने [illegible] लिए परम समुत्सुक रहा करती हैं—आपकी रश्मों के सहज प्रभा है और आप रुचिर वस्त्रों [illegible] परिधान करने वाली हैं—ऐसी आपके लिए बारम्बार मेरा नमस्कार है ।४३। आपकी सेवा [illegible] मेरा सदा और सर्वत्र अनेक बार [illegible] है । आप समस्त प्रकार [illegible] शरीर को धारण करने वाली हैं । आपकी सेवा में बारम्बार प्रणिपात है । [illegible] देवेशि ! आप मेरे ऊपर अनुकम्पा करके प्रसन्न हो जाइए और हे भद्रकालि ! [illegible] जो समग्र भूमि को क्षत्रियों से हीन कर देने की पहिले प्रतिज्ञा की है उसको परिपूर्ण [illegible] कीजिए।४४। आप ही मेरी माता-पिता हैं और मेरी ही [illegible] [illegible] तीन जगतों की माता [illegible] और आप ही पिता हैं—ऐसी आपके चरणों में मेरा बार-बार प्रणाम निवेदित है । वसिष्ठ जी ने कहा—उस समय में परमाधिक वेगवाली भद्रकाली देवी इस प्रकार से संस्तुत [illegible] गयी थी ।४५। तो वह देवी परम प्रसन्न होकर वरदान द्वारा आनन्द देने वाली होती हुई भार्गव परशुराम से बोली—भद्रकाली ने कहा—हे [illegible] [illegible] ! आप महान भाग वाले हैं । [illegible] इस समय में मैं आपके ऊपर बहुत प्रसन्न हो गई हूँ ।४६। [illegible] मुझसे वरदान प्राप्त कर लो जो भी कुछ तुमने अपने हृदय में विचार करके मेरी प्रार्थना की है । परशुराम ने कहा—हे भक्तवत्सले ! यदि आप हे [illegible] !

मुझे कोई वरदान ही देना चाहती [illegible] तो [illegible] यही वरदान चाहता हूँ कि यह राजा सुचन्द्र से इस युद्ध में मेरा [illegible] हो जावे तभी मैं आपकी अनुकम्पा का पात्र होऊँगा। हे देवि ! यही मेरा निवेदन आपकी सेवा में [illegible] किया है सो आप परम प्रसन्न चित्त से ही कर दीजिए।४७-४८।

येन केनाप्युपायेन जयस्मातर्नमोऽस्तु [illegible]।
भद्रकाल्युवाच—
आग्नेयास्त्रेण राजेंद्र सुचंद्रं नय मद्गृहम् ॥४६
ममातिप्रियभक्तोऽयं पार्षदो मे भवत्ययम्।
वसिष्ठ उवाच—
इत्युक्तमाकर्ण्य स सार्वेंद्रो देव्याः प्रियं
कर्तुं मयोद्यतोऽभूत् ॥५०
प्राणाग्निमभ्याचमनं [illegible] कृत्वा सुचंद्रमुद्दिश्य च तत्समादधे।
अस्त्रं प्रयुक्तं नृपतेर्वधाय रामेण राजन् प्रसभं [illegible] तत् ॥५१
दग्ध्वा वपुर्भूतमयं तदीयं निनाय लोकं परदेवतायाः।
ततस्तु रामेण कृतप्रणामा सा भद्रकाली जगदाधिकर्णी ॥५२
अंतर्हिताभूद्य जामदग्न्यस्तस्थौ रणे भूपवधाभिकांक्षी ॥५३

हे जगत् की माता ! जिस किसी भी उपाय से मेरा विजय हो जावे यही मेरी [illegible] है। मेरा आपके लिए [illegible] है। भद्रकाली देवी ने कहा—राजेन्द्र सुचन्द्र को तुम आग्नेयास्त्र द्वारा ही मेरे स्थान [illegible] पहुँचा दो।४६। यह मेरा अत्यधिक प्रिय भक्त है सो आज ही [illegible] मेरे गृह में पहुँचकर मेरा पार्षद हो जायेगा। वसिष्ठ जी ने कहा—उस भार्गव परशुराम जी ने यह इतना ही देवी [illegible] द्वारा कहा हुआ [illegible] करके इसके [illegible] वह देवी का प्रिय कार्य करने के लिए समुद्यत हो गया था।५०। फिर परशुराम जी ने प्राणों का आयाम करके आचमन किया [illegible] और फिर राजा सुचन्द्र को उद्दिष्ट करके वह अस्त्र धारण किया [illegible] उस [illegible] का [illegible] [illegible] ! राम ने नृप [illegible] [illegible] [illegible] लिए बलपूर्वक उस समय में प्रयोग किया था।५१। उसके [illegible] भौतिक शरीर को अपने [illegible] से भस्मीभूत करके उसको फिर पर देवता के लोक को पहुँचा दिया था। इसके अनन्तर परशुराम के द्वारा प्रणिपात

की हुई वह जगत की आदि कर्त्री भद्रकाली देवी वहाँ पर अन्तर्हित हो गयी थी और परशुराम उस रण स्थल में नृप के वध की आकांक्षा वाला होकर स्थित हो गये ॥ ।५२-५३।

— x —

परशुराम द्वारा कार्त्तवीर्य-वध

वसिष्ठ उवाच—

सुचंद्रे पतिते राजन् राजेंद्राणां शिरोमणौ ।
तत्पुत्रः पुष्कराक्षस्तु रामं योद्धुमथागतः ॥१
स रथस्थो महावीर्यः सर्वशस्त्रास्त्रकोविदः ।
अभिवीक्ष्य रणेत्युग्रं रामं कालांतकोपमम् ॥२
चकार शरजालं च भार्गवेंद्रस्य सर्वतः ।
मुहूर्तं जामदग्न्योऽपि बाणैः संछादितोऽभवत् ॥३
ततो निष्क्रम्य सहसा भार्गवेंद्रो महाबलः ।
शरव्रातान्महाराज समुदैक्षत सर्वतः ॥४
दृष्ट्वा तं पुष्कराक्षं तु सुचंद्रतनयं तदा ।
क्रोधमाहारयामास दिधक्षन्निव पावकः ॥५
■ क्रोधेन समाविष्टो वारुणं समथासृजत् ।
ततो मेघाः समुत्पन्ना गर्जंतो भैरवान्रवान् ॥६
ववृषुर्जलधाराभिः प्लावयंतो धरां नृप ।
पुष्कराक्षो महावीर्यो वायव्यास्त्रमथासृजत् ॥७

श्री वसिष्ठजी ने कहा—हे राजन् ! ■■ ■■ सुचन्द्र का निपातन हो गया ■ जो कि सभी राजेन्द्रों का शिरोमणि ■ तब ■■ पुत्र पुष्कराक्ष परशुरामजी से युद्ध करने के लिए वहाँ पर ■■ था ।१। वह महान ■ वीर्य वाला ■ और अपने रथ पर संस्थित ■ और सभी ■■ के शस्त्रास्त्रों के प्रयोग करने में बहुत बड़ा पण्डित था तथापि उसकी दृष्टि में परशुराम रण में अतीव उग्र और कालान्तक यम के ■■ दिखाई दिये थे ।२। उस पुष्कराक्ष ने ऐसी बाणों की वृष्टि उनके सभी ओर ■ की एक

पड़ी के लिए परशुरामजी को शरों [illegible] जाल [illegible] भली भाँति ढक दिया [illegible] ।३। इसके अनन्तर भार्गवेन्द्र जो महान बल से समन्वित थे उस बाणों के जाल से सहसा बाहिर निकल आये और हे महाराज ! उसने शरों के बन्धों को सभी ओर देखा था ।४। [illegible] [illegible] में परशुराम ने सुचन्द्र के पुत्र पुष्कराक्ष के ऊपर अपनी दृष्टि डाली थी और उनको बड़ा भारी क्रोध उत्पन्न हो गया था। उस समय में क्रोध से [illegible] जलती हुई अग्नि के ही [illegible] दिखाई [illegible] रहे [illegible] ।५। उस काल में [illegible] से समाविष्ट होकर वारुण [illegible] को छोड़ा था। इसके अस्त्र [illegible] [illegible] से सभी ओर [illegible] महान भैरव गर्जना करते हुए मेघ समुत्पन्न हो गये थे ।६। हे नृप ! [illegible] मेघों [illegible] जल के द्वारा सम्प्लावित [illegible] इस पृथ्वी को प्लावित करते हुए बड़ी घोर वृष्टि की थी। पुष्कराक्ष महान वीर्य [illegible] [illegible] उसने भी [illegible] [illegible] में वायव्य अस्त्र को छोड़ दिया था ।७।

तेन तेऽदर्शनं नीताः सद्य एव बलाहकाः ।
अथ रामो भृशं क्रुद्धो ब्राह्मं तत्राभिसंदधे ।।८
पुष्कराक्षोऽपि तेनैव विचकर्ष महाबलः ।
ब्राह्मं सोऽप्याहितं दृष्ट्वा दंदह्यत इवोल्बणः ।।९
घोरं परशुमादाय निःश्वसंस्तमधावत ।
रामस्याधावतस्तत्र पुष्कराक्षो धनुर्धरः ।।१०
संदधे पंचविशिखान्दीप्तास्यानुरगानिव ।
एकैकेन च बाणेन हृदि शीर्षे भुजद्वये ।।११
शिखायां [illegible] कथाञ्चित्वा तस्तंभ भृगुमातुरम् ।
स चैवं पीडितो रामः पुष्कराक्षेण संयुगे ।।१२
क्षणं स्थित्वा भृशं धावन्परशुं मूर्ध्न्यपातयत् ।
शिखामारभ्य पादान्तं पुष्कराक्षं द्विधाऽकरोत् ।।१३
पतिते शकले भूमौ तत्कालं पश्यतां नृणाम् ।
आश्चर्यं सुमहज्जातं दिवि चैव दिवौकसाम् ।।१४

उसने वायव्य अस्त्र के द्वारा उन सभी मेघों को तितर-बितर करके तुरन्त ही दूर भगा दिया था जो कि वहाँ बिल्कुल भी दिखाई न दे रहे थे।

इसके अनन्तर परमाधिक क्रुद्ध हुए और उन्होंने ब्रह्मास्त्र अभिसन्धान किया था ।८। महान मन्त्री पुष्कराक्ष ने भी उसी समय ब्रह्म अस्त्र का ही प्रयोग करके उसको निकृष्ट कर दिया था । वह इतना क्रोधित हो दग्ध आहूत सर्व हो जाया । ऐसा परशुराम ने उसको देखा था ।६। फिर उष्ण श्वास लेते हुए राम ने अपना महान घोर परशु ले लिया था और उसकी ओर दौड़े । धनुर्धारी पुष्कराक्ष ने वहाँ पर दौड़ते हुए परशुराम ऊपर पाँच बाण छोड़े थे जो परम दीप्त उरगों के ही समान थे । उसने एक-एक बाण परशुराम के शरीर का भेदन किया था और एक हृदय में—एक शिर को भुजाओं और एक शिखा में मारकर इनका भेदन कर दिया तथा बहुत आतुर करके स्तम्भित कर दिया था । वह राम इस प्रकार से प्रपीड़ित हो गये थे और युद्ध में पुष्कराक्ष ने उनको जहाँ तहाँ रोक दिया था ।१०-१२। पर भर स्थित रहकर बहुत ही बहुत अधिक से दौड़कर उन्होंने फिर उस पुष्कराक्ष के मस्तक अपने परशु प्रहार किया था और चोटी से लेकर पैरों तक उसके दो टुकड़े कर दिये थे ।१३। दो खण्डों में कटकर उसके भूमि पर निपतित हो जाने पर जो भी मनुष्य वहाँ पर देख रहे थे उनको देवलोक में देवों को बहुत बड़ा आश्चर्य हुआ था कि इतने बड़े बलशाली को किस तरह टुकड़े कर मार गिराया है ।१४।

विदार्य रामस्तं क्रोधात्पुष्कराक्षं महाबलम् ।
तत्सैन्यमदहत्क्रुद्धः पावको विपिनं यथा ॥१५

यतो यतो धावति भार्गवोऽसौ मनोऽनिलौघाः प्रहरन्परश्वधम् ।
ततस्ततो वाजिरथेभमानवा निकृत्तगात्राः शतशो निपेतुः॥१६

रामेण तत्रातिबलेन संगरे निहन्यमानास्तु परश्वधेन ।
हा मातस्त्विति जल्पमाना भस्मीबभूवुः
सुविचूर्णितास्तथा ॥१७

मुहूर्तमात्रेण च भार्गवेण तत्पुष्कराक्षस्य बलं समग्रम् ।
अनेकराजन्यकुलं हतेश्वरं कृतं नवाक्षौहिणिकं भृशातुरम् ॥१८

पतिते पुष्कराक्षे तु कार्त्तवीर्यार्जुनः स्वयम् ।
आजगाम महावीर्यः सुवर्णरथमास्थितः ॥१९

नानाशस्त्रसमाकीर्णं नानारत्नपरिच्छदम् ।
व्याघ्रचर्मप्रमाणं च शतवाजियुतं नृपः ॥२०
युते बाहुसहस्रेण नानायुधधरेण च ।
बभौ स्वर्लोकमारोक्ष्यन्देहान्ते सुकृती यथा ॥२१

परशुराम ने क्रोध करके उस महाबली पुष्कराक्ष को विदीर्ण करके फिर क्रुद्ध होकर उसकी जो परम विशाल सेना थी उसको भी भस्मीभूत करके [illegible] दिया जिस तरह से दावाग्नि बड़े भारी वन को जला दिया करता है ।१५। मन और वायु के सदृश वेग वाले परशुराम जहाँ-जहाँ पर भी दौड़कर जाते थे और अपने फरसा से प्रहार कर रहे थे वहीं-वहीं पर अश्व-रथ-हाथी और मानव सैनिक कट-कटकर छिन्न भिन्न शरीर वाले सैकड़ों ही गिर गये थे ।१६। अत्यन्त बल वाले राम [illegible] वहाँ युद्ध भूमि में अपने परशु से जिनको मारकर गिरा दिया था अथवा अधमरे होकर गिर गये [illegible] थे उस समय में मूच्छित होकर पड़े हुए चीत्कार कर रहे थे और हे तात ! [illegible] माता ! हम मर रहे हैं—यह कहते हुए भस्मीभूत हो गये थे ।१७। मुहूर्त्त मात्र [illegible] ही अर्थात् दो घड़ियों के समय में भार्गव ने उस पुष्कराक्ष की सम्पूर्ण सेना को तथा बहुत से राजाओं [illegible] समुदाय को जिनके स्वामी निहत हो गये हैं एवं अत्यन्त आतुर भी अक्षौहिणी सैन्य को निहत कर दिया था ।१८। जब यह देखा गया था कि पुष्कराक्ष जैसा महाबली मर गया तो कार्त्तवीर्यार्जुन जिसका महान बल-वीर्य था [illegible] एक सुवर्ण से निर्मित रथ पर समास्थित होकर वहाँ पर युद्ध करने [illegible] लिए [illegible] हो गया था ।१९। उसका वह ऐसा [illegible] [illegible] जिसमें अनेक भाँति [illegible] [illegible] भरे हुए थे और विविध भाँति के रत्नों का परिच्छद था । उसका [illegible] प्रमाणस्थ [illegible] और उसमें सौ [illegible] लगे हुए थे ।२०। वह राजा भी अनेक आयुध धारी [illegible] बाहुओं से युक्त था । उसकी उस समय [illegible] ऐसी शोभा हो रही थी जैसे कोई पुण्यात्मा देह के अन्त समय [illegible] स्वर्गलोक को [illegible] रहा होवे ।२१।

पुत्रास्तस्य महावीर्या शतं युद्धविशारदाः ।
सेनाः संव्यूह्य संतस्थुः संग्रामे पितुराज्ञया ॥२२
कार्त्तवीर्यस्तु बलवान्रामं दृष्ट्वा रणाजिरे ।
कालांतकयमप्रख्यं योद्धुं समुपचक्रमे ॥२३

दक्षे पंचशतं बाणान्वामे पंचशतं धनुः ।
जग्राह भार्गवेंद्रस्य समरे जेतुमुद्यतः ॥२४
बाणवर्षं चकाराथ रामस्योपरि भूपते ।
यथा बलाहको वीर पर्वतोपरि वर्षति ॥२५
बाणवर्षेण तेनाजौ सत्कृतो भृगुनन्दनः ।
जग्राह स्वधनुर्दिव्यं बाणवर्षं तथाऽकरोत् ॥२६
तावुभौ रणसंदृप्तौ तदा भार्गवहैहयौ ।
चक्रतुर्युद्धमतुलं तुमुलं लोमहर्षणम् ॥२७
ब्रह्मास्त्रं च स भूपालः संदधे रणमूर्द्धनि ।
वधाय भार्गवेंद्रस्य सर्वशस्त्रास्त्रभृद्बली ॥२८

उस कार्त्तवीर्य के पुत्र भी सौ थे जो महान वीर्य वाले थे और युद्ध करने की विद्या में महान पण्डित थे। वे भी सब अपने पिता की आज्ञा से सेनाओं का संग्रह करके रण में समवस्थित हो गये थे।२२। उस बलवान कार्त्तवीर्य ने रणभूमि में जब परशुराम को देखा था उसको उनका स्वरूप ऐसा प्रतीत होता था मानों वह कालान्तक यम ही होवें फिर भी वह युद्ध करने को प्रस्तुत हो गया था।२३। भार्गव को युद्ध में जीतने के लिए उसके दाहिनी ओर पाँच सौ बाण थे और वामभाग में पाँच सौ धनुष थे।२४। हे भूपते! उस सहस्रार्जुन ने परशुराम के ऊपर बाणों का प्रक्षेप ऐसा किया था जैसे मेघ वृष्टि कर रहे होवें। जिस प्रकार बलाहक मेघ किसी पर्वत के ऊपर जल की वर्षा किया करते हैं।२५। उसने बाणों की वर्षा के द्वारा ही रण भूमि में भृगुनन्दन का सत्कार किया था। उसने अपना दिव्य धनुष ग्रहण किया था। और उसी भाँति से बाणों की थी।२६। वे दोनों ही कार्त्तवीर्य और भार्गव राम उस समय में रण करके के दर्प वाले थे और उन दोनों ने अनुपम युद्ध किया था जो बड़ा ही तुमुल और रोम हर्षण था। रण के प्राङ्गण में उस राजा ने ब्रह्मास्त्र का सन्धान किया था। वह राजा सभी शस्त्रों और अस्त्रों के धारण करने वाला और बलवान था जिसने के वध के ही लिए इस अस्त्र का प्रयोग किया था।२८।

रामोऽपि वायुमुपस्पृश्य ब्राह्मं ब्रह्माय संदधे ।
ततो व्योम्नि तदा सक्ते द्वे चाप्यस्त्रे नराधिप ॥२९

प्रवृत्याते अगत्प्रांते तेजसा ज्वलनार्कवत् ।
त्रयो लोकाः [illegible] दृष्ट्वा तन्महदद्भुतम् ॥३०
ज्वलदस्त्रयुगं तप्ता मेनिरेऽस्योपसंयमम् ।
रामस्तदा वीक्ष्य चमत्प्रणाशं जगन्निवासोक्त-
मथास्मरत्तदा ॥३१
रक्षा विधेयाऽद्य मयाऽस्य संयमो निवारणीयः
परमांशधारिणा ।
इति व्यवस्य प्रभुरुग्रतेजा नेत्रद्वयेनाथ तदस्त्रयुग्मम् ॥३२
पीत्वातिरामं जगदाकलय्य तस्थौ क्षणं ध्यानगतो महात्मा ।
ध्यानप्रभावेण ततस्तु तस्य महास्त्रयुग्मं विगतप्रभावम् ॥३३
पपात भूमौ सहसाऽथ तत्क्षणं सर्वं जगत्स्वास्थ्यमुपाजगाम ।
स जामदग्न्यो महता महीयान्प्रभुः तथा
पालयितुं निहंतुम् ॥३४
विभुस्तथापीह निजं प्रभावं गोपायितुं लोकविधिं चकार ।
धनुर्धरः शूरतमो महस्वान्सदग्रणीः संसदि [illegible] ॥३५

इधर परशुराम जी ने भी [illegible] उपसंहार करके महास्त्र के निराकरण करने के लिए महास्त्र का ही [illegible] किया था । हे नराधिप ! उस समय में ये दोनों अस्त्र सदा ही अन्तरिक्ष में प्रसक्त हो गये थे ।२९। ये दोनों ही तेज से जाज्वल्यमान सूर्यों के समान जग प्रान्त में विशेष [illegible] से चक रहे थे । उस समय में पाताल के सहित तीनों लोक इस महान अद्भुत अस्त्रों के पारस्परिक संघर्ष को देख रहे थे ।३०। वे दोनों महास्त्र जाज्वल्यमान थे और सभी लोग उनके तेज से संतप्त हो रहे थे । [illegible] समय में इसका उपसंयम सभी ने माना था । परशुराम ने भी [illegible] सम्पूर्ण [illegible] प्रकृष्ट नाश देखकर उसी [illegible] में जगन्निवास के कथन का स्मरण किया था ।३१। [illegible] मेरे द्वारा किसी भी रीति से सुरक्षा करनी चाहिए और इसका संयम करके निवारण करना ही चाहिए क्योंकि मैं तो परमांश का अर्थात् प्रभु के ही अंश का [illegible] करने वाला हूँ जिसकी यह सृष्टि है । यह निश्चय करके अतीव उग्र तेज वाले प्रभु ने अपने दोनों नेत्रों से उन दोनों

नेत्रों [illegible] उन दोनों अस्त्रों का पान कर लिया था ।३२। [illegible] के कल्याण का विचार करके ही उनका पान किया और फिर महान आत्मा वाले उनने [illegible] भर के लिए ध्यान में अवस्थित होकर चुपचाप वे खड़े रह गये थे । इसके उपरान्त उनके ध्यान के प्रबल [illegible] से वे दोनों ही महास्त्र प्रभाव हीन हो गये थे ।३३। फिर इसके अनन्तर वह दोनों अस्त्रों का जोड़ा भूमि पर गिर गया। [illegible] ।३४। वह परशुराम तो महान पुरुषों में भी परम महान [illegible] और इस संसार के सृजन-पालन और निहनन करने [illegible] पूर्ण समर्थ थे । ।१४। वे साक्षात् विष्णु [illegible] तो भी अपने वास्तविक प्रभाव को छिपाने के ही लिए [illegible] लौकिक विधान को किया करते थे जिससे लोग उनके असली स्वरूप को [illegible] पहिचान पावें । वह ऐसा ही सबकी दृष्टि [illegible] दर्शित किया करते [illegible] कि वे बड़े धनुर्धारी-विजिष्णुर-तेजस्वी-सभा [illegible] प्रमुख और संसद [illegible] तथ्य के बोलने वाले हैं ।३५।

कलाकलापेषु कृतप्रयत्नो विद्यासु शास्त्रेषु बुधो विशिष्टः
एवं नृलोके प्रथयन्स्वभावं सर्वाणि कल्याणि
करोति नित्यम् ॥३६

सर्वे तु लोका विजितास्तु तेन रामेण राजन्यनिषूदनेन ।
एवं स रामः प्रथित प्रभावः प्रशामयित्वा तु तदस्त्रयुग्मम् ॥३७

पुनः प्रवृत्तो निधनं प्रकर्तुं रणागतो हैहयवंशकेतोः ।
तूणीरतः पत्रियुगं गृहीत्वा पुंखे निधायाथ धनुर्ज्यकायाम् ॥३८

आलक्ष्य लक्ष्यं नृपकर्णयुग्मं चकर्त्तचूडामणिहर्त्तुकामः ।
स कृत्तकर्णो नृपतिर्महात्मा विनिर्जिताशेषजगत्प्रवीरः ॥३९
मेने निजं वीर्यमिह प्रणष्टं रामेण भूमीश तिरस्कृतात्मा ।
क्षणं धराधीशतनुर्विवर्णा गतानुभावा नृपतेर्बभूव ॥४०
लेख्येष सञ्चित्रकरप्रयुक्ता सुदीनचित्तस्य विलक्ष्यतेऽथ ।
ततः [illegible] राजा निजवीर्यवैभवं समस्तलोकाधिकतां
प्रयातम् ॥४१

विचिन्त्य पौलस्त्यजयादिलब्धं क्रोधाग्निवासीत्स
जयाभिकाङ्क्षी ।
दध्यौ पुनर्मीलितलोचनो नृपो दत्तं तमात्रेयकुलप्रदीपम् ॥४२

जितनी भी कलायें हैं उन सबके [illegible] प्राप्त करने [illegible] लिए प्रयत्न करने वाले हैं तथा [illegible] विद्याओं [illegible] एवं शास्त्रों में शुद्ध है और विधि [illegible] [illegible] हैं। इसी रीति से लोक में अपने प्रभाव एवं [illegible] को दिखलाते हुए सभी कल्पों नित्य किया करते [illegible]।३६। क्षत्रियों [illegible] निषूदन करने वाले परशुराम ने [illegible] लोकों को जीत लिया है इस प्रकार से ही परशुराम प्रथित प्रभाव वाले थे। उन्होंने उसी [illegible] में उन दोनों ब्रह्मास्त्रों को प्रशामित कर दिया था।३७। फिर वे उस रण भूमि [illegible] हैहय वंश के केतु कार्त्तवीर्य का निधन करने के लिये युद्ध में प्रवृत्त हो गये [illegible]। तूणीर से दो बाणों को लेकर धनुष की प्रत्यञ्चा को खींचकर उसमें बाणों को चढ़ाया था।३८। नृप की चूड़ामणि का हरण करने की कामना वाले रामने लक्ष्य पर निशाना लगाकर नृप [illegible] दोनों कानों को [illegible] गिराया था। जिस कार्त्तवीर्य ने जगत् में समस्त महान् वीरों को पराजित कर लिया था वह महात्मा जब कटे हुए कानों वाला हो गया था तो अपने मन में भयभीत हो गया था तो अपने मन में भयभीत हो गया था।३९। उस समय में यह मान लिया था कि हे भूमीश ! वह राम [illegible] द्वारा तिरस्कृत आत्मा वाला होगया [illegible] और अब उसका वीर्य-विक्रम सब नष्ट होगया है। [illegible] नृपते ! एक ही [illegible] में उसका शरीर विवर्ण होकर भूमि पर गिर गया था और उनके सभी अनुभाव विगत हो गये थे।४०। उसके अनन्तर उस कार्त्तवीर्य राजाने देखा था कि समस्त लोकों में अधिकता को प्राप्त होने [illegible] अपने वीर्यविक्रम से सर्वथा गया हुआ है और [illegible] दीनचित्त वाले का शरीर किसी अच्छे चित्र-[illegible] [illegible] द्वारा निर्मित चित्र के-ही [illegible] हो गया है।४१। [illegible] अपने विजय की आकांक्षा वाला राजा यही चिन्तन करके कि मैंने पौलस्त्य रावण जैसे बलवान् पर भी विजय [illegible] को भी [illegible] मेरी [illegible] दशा हो रही है-यही सोच करता हुआ वह वहाँ पड़ा था। फिर उस राजा ने अपने दोनों नेत्र मूँद लिये थे और आत्रेय कुल के प्रदीप दत्तात्रेय का उसने ध्यान किया था।४२।

यस्य प्रभावानुगृहीत ओजसा तिरश्चकारा-
खिलयोकपालकान् ।
यथास्य हृद्येष महानुभावो दत्तः प्रयातो न हि
दर्शनं तदा ॥४३
खिन्नोऽतिमात्रं धरणीपतिस्तदा पुनः पुनर्ध्यानपथं जगाम ।

विशेष परितप्त हो रहा था और शोक एवं मोह से भी युक्त हो गया था। जब वह इस रीति से राजा शोक में मग्न हो रहा था तो सबके चित्तों की गति के देखने वाले महात्मा राम ने उससे कहा था ।४६। हे राजन् ! अब तुम इतने अधिक शोक को मत करो। जो महानुभाव होते हैं वे कभी भी ऐसा शोक नहीं किया करते हैं आदि सर्ग में जो तुझे वरदान देने के लिए हुआ था वही मैं अब तेरे सादन करने के लिए हुआ हूँ ।४७। वही तू यहाँ पर समागत हुआ है। अब तुम चित्त में धैर्य धारण करो। यह तो संग्राम करने का समय है। इसमें विषाद करने की तो कोई चर्चा का अवसर ही नहीं आना चाहिए। तुम तो जानते हो यह भी भली भाँति समझते ही हो कि सभी प्राणी अपने किये हुए ही कर्मों का योग चाहे वह शुभ हो या अशुभ हो विपाक हो जाने पर दैव के द्वारा किये हुए को भोगा करते हैं। ।४८। हे नरेश ! इस शुभ और अशुभ का विपर्यय करने के लिये अन्य कोई भी सामर्थ्य नहीं रखता है। जो कुछ भी बहुत से जन्मों में किये गये पुण्य कर्मों का सञ्चय था उसी का यह प्रभाव था कि भगवान् दत्तात्रेय महामुनि का इस लोक में तुम वरदान के योग्य पात्र बन गये थे। तात्पर्य यही है कि सभी फलाफल किये हुए कर्मों के ही अनुसार हुआ करते हैं यह सभी कर्माधीन है जिस का विचार कोई भी नहीं किया करता है ।४९।

जातो भवानद्य तु दुष्कृतस्य फलं प्रभुंक्ष्व स्वमिहार्जितस्य ।
गुर्वाश्रमस्यापकृतस्त्वया मे यतस्ततः
कर्णनिकृन्तनं ते ॥५०

कृतं मया पश्य हरंस्तमोजसा चूडामणिं मामपहृत्य ते यशः ।
इत्येवमुक्त्वा स भृगुर्महात्मा नियोज्य बाणं च
विकृष्य चापम् ॥५१

चिक्षेप रामः स तु लाघवेन छित्वा मणिं सम्यगुपाजगाम ।
तद्वीक्ष्य कर्मास्य मुनेः सुतस्य स चार्जुनो
हैहयवंशकर्त्ता ॥५२

समुद्यतोऽभूत्पुनरप्युदायुधस्तं हंतुमाजौ द्विषमात्मशत्रुम् ।
शूलशक्तिगदाचक्रखड्गपट्टिशतोमरैः ॥५३

नानाप्रहरणैश्चान्यैराजघान द्विजात्मजम् ।
स रामो लाघवेनैव संप्रक्षिप्तान्यनेन च ॥२४
शूलादीनि चकर्ताशु मध्य एव निजायुधैः ।
स राजा वायुं पस्पृश्य ससर्जाग्नेयमुत्तमम् ॥२५
अस्त्रं रामो वारुणेन शमयामास सत्वरम् ।
गान्धर्वं विदधे राजा वायव्येनाहनद्विभुम् ॥२६

आज आपको यह परम दुष्कृत का ही फल प्राप्त हुआ है। अब यहाँ पर जो भी पाप किया [illegible] उसका फल भोगिए क्योंकि यह दुष्कृत आपने ही को अर्जित किया है फिर इसका फल भी आप ही को भोगना है। आपने मेरे गुरु जमदग्नि का अपमान करके बड़ा भारी अपकार किया है। यही कारण [illegible] कि आपके कार्यों [illegible] कृतघ्न हुआ [illegible] ॥२०॥ तुम्हारे [illegible] का अपहरण करके मैंने भोज से तुम्हारी चूड़ामणि का अपहरण किया है यह तुम देख लो। [illegible] कहकर उन महात्मा भृगु ने बाण चढ़ाकर धनुष की प्रत्यञ्चा को खींच लिया था ॥२१॥ उन्होंने [illegible] राजा [illegible] ऊपर उस [illegible] का प्रक्षेप किया था और बड़े ही लाघव से उस मणि का छेदन किया था जिससे कि वह मणि परशुराम के समीप में [illegible] हो गयी थी। उस मुनिकुमार के इस कर्म का अधिकारी लाभ करके वह हैहय के वंश के धारण करने वाले सहस्रार्जुन युद्ध को तैयार हो गया था ॥२२॥ वह कार्त्तवीर्य राजा आयुध ग्रहण करके युद्ध [illegible] द्विज सुत को जिसको वह अपना शत्रु सम- [illegible] था मारने [illegible] लिये समुद्यत हो गया था। शूल-शक्ति-गदा-चक्र-खड्ग-पट्टिश और तोमर तथा अन्यान्य [illegible] प्रकार के प्रहरणों से उस कार्त्तवीर्य द्विजवर के पुत्र परशुराम पर [illegible] किये थे किन्तु परशुराम ने उनके द्वारा जो भी अस्त्रों का प्रक्षेप किया [illegible] वे [illegible] बहुत ही लाघव से उन सबको काट दिया [illegible] और [illegible] तक वे [illegible] लक्ष्य तक पहुँचने भी नहीं पाये थे तभी तक बीच [illegible] ही अपने बाणों [illegible] सबको राम ने काटकर शीघ्र ही गिरा दिया था। उस राजा ने भी जल [illegible] उपस्पर्शन करके फिर अपने उत्तम आग्नेय [illegible] को छोड़ दिया [illegible] ॥२३-२५॥ रामने अपने वारुण [illegible] के द्वारा शीघ्र ही [illegible] आग्नेय अस्त्र [illegible] कर दिया था। फिर राजा ने गान्धर्व अस्त्र को छोड़ा था और वायव्य अस्त्र से विभु परशुराम के ऊपर प्रहार किया था ॥२६॥

समाकुल हो गये थे और वे सब ब्रह्मा-विष्णु और महेश्वर को अपने आगे करके वहाँ पर [illegible] हो गये थे ।६१। भगवान् शङ्कर जो महाज्ञानी थे और मृत्यु के ऊपर भी विजय प्राप्त करने वाले साक्षात् प्रभु थे । उन्होंने तुरन्त ही अपनी संजीवनी विद्या से भार्गव को जीवन प्रदान करके जीवित [illegible] दिया था ।६२। परशुराम जी को [illegible] चेतना [illegible] हो गयी थी तो सम्हलकर खड़े हुए थे और उन्होंने अपने आगे सभी सुरगणों को देखा था। हे राजेन्द्र ! उन्होंने ब्रह्मा आदिक उन महान् देवों के चरणों में बड़े ही भक्ति के [illegible] से प्रणाम किया [illegible] ।६३।

ते स्तुता भार्गवेन्द्रेण सद्योऽदर्शनमागताः ।

[illegible] रामो वायुं स्पृश्य जजाप कवचं तु तत् ॥६४

उत्थितश्च सुसंरब्धो निर्दहन्निव चक्षुषा ।

स्मृत्वा पाशुपतं चास्त्रं शिवदत्तं स भार्गवः ॥६५

सद्यः संहृतवांस्तत्तु कार्त्तवीर्यं महाबलम् ।

स राजा दत्तभक्तस्तु विष्णोश्चक्रं सुदर्शनम् ।

प्रविष्टो भस्मसाज्जातं शरीरं बाहुनन्दन ॥६६

भार्गवेन्द्र के द्वारा उनकी स्तुति [illegible] गयी [illegible] और फिर वे सभी सुरगण तुरन्त ही अन्तर्हित हो गये थे । उन परशुराम-प्रभु ने जल का आचमन करके [illegible] [illegible] में उस कवच का [illegible] किया था ।६४। और भली भाँति संरब्ध होकर वे उठ खड़े [illegible] थे । उस समय [illegible] उनके नेत्रों में ऐसा अद्भुत तेज हो गया था जिससे ऐसा प्रतीत हो रहा [illegible] मानों वे चक्षु से सब को दग्ध ही कर रहे होंवे । उन भार्गव ने भगवान् शिव के द्वारा कृपा करके प्रदान किये पाशुपत अस्त्र का स्मरण किया [illegible] ।६५। उस पाशुपत अस्त्र ने महान् बलवान् उस कार्त्तवीर्य को तुरन्त ही संहृत कर दिया था अर्थात् मार गिराया था । वह राजा दत्तात्रेय महामुनि का परम [illegible] था और भगवान् विष्णु के सुदर्शन-चक्र [illegible] प्रविष्ट हो गया [illegible] और सहस्रों बाहुओं के द्वारा [illegible] करने वाले उसका शरीर भस्मसात् हो गया था ।६६।

—x—

भार्गव चरित्र वर्णन (१)

वसिष्ठ उवाच—

दृष्ट्वा पितुर्वधं घोरं तत्पुत्रास्ते शतं त्वरा ।
धारयामासुरत्युग्रं भार्गवं स्वबलैः पृथक् ॥१
एकैकाक्षौहिणीयुक्ताः सर्वे ते युद्धदुर्मदाः ।
संग्रामं तुमुलं चक्रुः संरब्धास्तु पितुर्वधात् ॥२
रामस्तु दृष्ट्वा तत्पुत्राञ्छूरान्रणविशारदान् ।
परश्वधं समादाय युयुधे तैश्च संगरे ॥३
तां सेनां भगवान्रामः शताक्षौहिणिसंमिताम् ।
निजघान त्वरायुक्तो मुहूर्तद्वयमात्रतः ॥४
निःशेषितं स्वसैन्यं तु कुठारेणैव लीलया ।
दृष्ट्वा रामेण ते सर्वे युयुधुर्वीर्यसंमताः ॥५
नानाविधानि दिव्यानि प्रहरंतो महौजसः ।
परितो मंडलं चक्रुर्भार्गवस्य महात्मनः ॥६
अथ रामोऽपि बाणास्तेषां मंडलमध्यगः ।
विरेजे भगवान्साक्षाच्चक्रनाभिस्तु चक्रगा ॥७

श्री वसिष्ठ जी ने कहा—उसके पुत्रों ने यह महान् घोर अपने पिता देखा तो सौ पुत्रों ने पृथक्-पृथक् अपने सैन्य बलों लेकर अतीव उग्र भार्गव का धारण किया ।१। वे सभी युद्ध करने अत्यन्त दुर्मद थे और सबके एक-एक अक्षौहिणी सेना थी । अपने पिता के हो जाने वे अत्यन्त ही क्रोध भरे हुए थे और उन्होंने तुमुल संग्राम किया था ।२। परशुराम जी ने देखा था कि उसके सभी पुत्र बड़े शूरवीर और रण करने में बहुत कुशल तब उन्होंने अपना फर्शा उठा लिया और सबके युद्ध क्षेत्र घोर युद्ध किया ।३। भगवान् राम ने सौ अक्षौहिणियों से संयुत उस समस्त सेना को बड़ी ही त्वरा से युक्त होकर दो ही मुहूर्त्त के विहंनन करके मार गिराया था ।४। महान् वीर्य संमत उन्होंने यह देखा था परशुराम ने अपने कुठार

द्वारा खेल ही खेल में लीला से ही बिना कुछ अधिक आयास किये सम्पूर्ण अपनी सेना को मारकर समाप्त कर दिया है तो सबने बड़ा भारी घोर युद्ध किया था ।५। महान् आत्मा वाले भार्गव ने चारों ओर विविध प्रकार के दिव्य अस्त्रों के द्वारा प्रहार करते हुए उन महान् ओज वालों ने सबने एक मण्डल सा बना लिया था अर्थात् सब ओर से घेर कर बीच में दे लिया था ।६। इसके अनन्तर महान् बलशाली परशुराम भी उन सबके मण्डल (घेरा) में मध्य में स्थित होकर वह साक्षात् भगवान् परम सुशोभित हुए थे जिस तरह से समस्त नाड़ियों के समूह के मध्य में स्थित नाभि शोभा दिया करती है ।७।

नृत्यन्निवासौ विरराज रामः गतं पुनस्ते परितो भ्रमंतः ।
रेजुश्च गोपीगणमध्यसंस्थः कृष्णो यथा ताः
परितो भ्रमंत्यः ॥८

तदा तु सर्वे द्रुहिणप्रधानाः समागताः स्वस्वविमानसंस्थाः ।
समाकिरन्नन्दनमाल्यवर्गैः समंततो राममहीनवीर्यम् ॥९

यः शस्त्रपाशानुबलिष्ठजं ज्वानिहुंकारगर्भो
दिवमस्पृशत्स वै ।
तीर्थंगिकस्येव प्ररवाताणि भांतीव वद्धास्त्रवर्तपाताः ॥१०

ऊर्ध्वंति भस्म : क्षतविक्षतांगा गायंति यक्षस्त्विव गीतमिश्राः ।
एवं प्रवृत्तं नृपयुद्धमण्डलं पश्यंति देवा
भृशविस्मिताक्षाः ॥११

ततस्तु रामोऽवनिपालपुत्रान्विजघासुराजी विविधास्त्रपूर्गैः ।
पृथक्चकाराखिलास्तु मंडलाद्विच्छिद्य पंक्ति
प्रभुरात्तचापः ॥१२

एकैकशस्तान्निजघान वीरान्छतं तदा पंच
ततः पलायिताः ।
शूरो वृषास्यो वृषभूरसेनो जयध्वजश्चापि
विभिन्नवीर्याः ॥१३

नाम वाली नगरी को देखा था जो नगरी बहुत ही विशाल थी।१८। उस नगरी की छटा का वर्णन किया जाता है—उस नगरी में अनेक भवन ऐसे बने हुए थे जो अनेक भाँति के रत्नों से संयुत थे, उन भवनों की शोभा से वह परम सुशोभित थी। उसमें बहुत से यक्ष विद्यमान थे जो विचित्र प्रकार के भूषणों के धारण करने वाले तथा विविध स्वरूपों वाले थे। इनसे भी उसकी बड़ी शोभा हो रही थी।१९। उस नगरी में बहुत तरह के वन और उपवन थे जिनमें अनेक प्रकार के वृक्ष थे। वह नगरी अनेक विशाल वापियों (बावड़ियों) से तथा तालाबों से भी परम सुशोभित थी।२०। उस पुरी के बाहिरी ओर में सीता और अलकनन्दा नाम वाली सुन्दर सरिताओं से समावृत था। वहाँ पर देवों की अङ्गनाएँ स्नान कर रही थीं जिससे उनके अङ्गों में लगा हुआ कुंकुम छूटकर उनके जल में प्रवाहित हो रहा था।२१।

तृषाविरहिताश्चांभः पिबन्ति करिणो मुदा।
यत्र संगीतसंनादा श्रूयन्ते तत्र तत्र ह॥२२
गन्धर्वैरप्सरोभिश्च सततं सहचारिभिः।
तां दृष्ट्वा भार्गवो राजन्मुदा परमया युतः॥२३
ययौ तदूर्ध्वं शिखरं यत्र शंकरं गृहम्।
ततो ददर्श राजेंद्र स्निग्धच्छायं महावटम्॥२४
तस्याधस्ताद्धराबासं सुसेव्यं सिद्धसंयुतम्।
ददर्श तत्र प्राकारं शतयोजनमंडलम्॥२५
नानारत्नाचितं रम्यं चतुर्द्वारं गणावृतम्।
नन्दीश्वरं महाकालं रक्ताक्षं विकटोदरम्॥२६
पिंगलाक्षं विशालाक्षं विरूपाक्षं घटोदरम्।
मंदारं भैरवं बाणं रुरुं भैरवमेव च॥२७
वीरकं वीरभद्रं च चंडं भृंगिं रिटिं मुखम्।
सिद्धेन्द्रनाथरुद्रांश्च विद्याधरमहोरगान्॥२८

उन सरिताओं में तृषा से विरहित करी बड़े ही आनन्द से उनका जल पी रहे थे। वहाँ पर जहाँ-तहाँ संगीत की परम मधुर ध्वनियाँ सुनाई दे रही थी।२२। वहाँ पर बहुत से गन्धर्व गण अप्सराओं को अपने साथ में

लिए हुए निरन्तर रंगरेलियाँ कर रहे थे। भार्गव श्री परशुराम जी ने जिस समय में उस परम सुन्दर पुरी का अवलोकन किया उनको अत्यन्त हर्ष हुआ था।२३। इसके अनन्तर वे उसके ऊपर गये थे जिस शिखर पर भगवान् शिव का परम सुरम्य निवास करने का गृह था। हे राजेन्द्र! वहाँ पर एक महान विशाल बहुत ही घनी छाया वाला वट का वृक्ष उन्होंने देखा था।२४। उस वट वृक्ष के नीचे एक विशाल गृह बना हुआ था जो भली भाँति सेवन करने के योग्य था और बड़े-बड़े महान् सिद्धगणों से समन्वित था। वहाँ पर उसका एक प्रकार (बहार दीवारी) उन्होंने देखा था जिसका मण्डल (घेरा) एक सौ योजन वाला था।२५। उस नगर में अनेक प्रकार के रत्न खचित हो रहे थे। वह परम रम्य और चार प्रधान द्वारों से बहु समन्वित था। वहाँ पर गण सब ओर थे। उन उन गणों में नन्दीश्वर-महाकाल-रक्ताक्ष और विकटोदर थे।२६। इनके अतिरिक्त पिंगलाक्ष-विरूपाक्ष-घटोदर-मन्दार-भैरव-बाण-रुद्र—भैरव भी थे।२७। उन गणों में वीरभद्र-चण्ड-रिटि-भृङ्ग भी थे। वहाँ पर सिद्धेश्वर-नाग और यक्ष थे तथा विद्याधर और महोरग भी विद्यमान थे।२८।

भूतं तपिशाचांश्च कूष्माण्डान्महाराक्षसान् ।
वेतालान्दानवेंद्रांश्च योगीन्द्रांश्च जटाधरान् ॥२९
यक्षकिंपुरुषांश्चैव डाकिनीयोगिनीस्तथा ।
दृष्ट्वा नंद्याज्ञया तत्र प्रविष्टोऽतमुदान्वितः ॥३०
ददर्श तत्र भुवनैराद्भुतं शिवमंदिरम् ।
चतुर्योजनविस्तीर्णं तत्र प्राग्द्वारसंस्थितौ ॥३१
दृष्ट्वा वामे कार्त्तिकेयं दक्षे चैव विनायकम् ।
ननाम भार्गवस्तौ द्वौ शिवतुल्यपराक्रमौ ॥३२
पार्षदप्रवरास्तत्र क्षेत्रपालाश्च संस्थिताः ।
रत्नसिंहासनस्थाश्च रत्नभूषणभूषिताः ॥३३
भार्गवं प्रविशन्तं तं ह्यपृच्छच्छिवमंदिरम् ।
विनायको महाराज क्षणं तिष्ठेत्युवाच ह ॥३४
निद्रितो ह्युमया युक्तो महादेवोऽधुनेति च ।
ईश्वराज्ञां गृहीत्वाहमत्रागमिष्ये क्षणांतरे ॥३५

वहाँ पर इन उपर्युक्त वर्णों के अतिरिक्त बहुत से भूत-प्रेत-पिशाच कूष्मांड-महाराक्षस-वेताल-दानवेन्द्र और जटाजूट धारी बड़े-बड़े योगीन्द्र भी थे ।२९। वहाँ उस शिव की नगरी में यक्ष-किम्पुरुष-डाकिनी और योगिनियाँ भी थीं । इन सबको वहाँ पर परशुरामजी ने अवलोकन किया था । भगवान् शङ्कर के दाँई और स्वामी कार्तिकेय और उनके बाँई ओर विघ्नेश्वर विनायक विराजमान थे । भार्गवेन्द्र ने उन दोनों को प्रणाम किया था क्योंकि ये दोनों शिव के पुत्र शङ्कर के ही समान पराक्रम वाले थे । इससे पूर्व परशुरामजी ने नन्दी की आज्ञा ग्रहण करके ही उस पुर के अन्दर प्रवेश किया था । अन्दर प्रवेश करने की आज्ञा पाकर उनको बहुत ही प्रसन्नता हुई थी । वहाँ पर भुवनों से सदावृत शिवजी के मन्दिर का अवलोकन किया था । यह मन्दिर चार योजन के विस्तार [illegible] था ।३०-३१-३२। वहाँ पर परम श्रेष्ठ पार्षद और क्षेत्रपाल भी समवस्थित थे वे लोग रत्न खचित सिंहासनों पर रत्नों के विविध भूषणों से विभूषित होकर विराजमान थे ।३३। जिस समय में भार्गव शिव मन्दिर में प्रवेश कर रहे थे तब उन सबने इनसे पूछा था हे महाराज ! उस समय में विनायक ने उनसे यही कहा था कि एक क्षण मात्र आप यहीं पर ठहरिए ।३४। इस समय में महादेव जी अपनी प्रिय पत्नी जगदम्बा उमा के साथ शयन किये हुए हैं । [illegible] एक ही क्षण भर में ईश्वर की आज्ञा प्राप्त करके यहीं पर [illegible] होता [illegible] ।३५।

त्वया सार्द्धं प्रवेक्ष्यामि भ्रातस्तिष्ठात्र साम्प्रतम् ।
विनायकस्येवं श्रुत्वा ह्यवतिष्ठे भार्गवनन्दन: ।।३६
प्रणम्य तु प्रचकाम गणेशं त्वरयान्वितः ।
राम उवाच—
गत्वा ह्यन्तःपुरं भ्रातः प्रणम्य जगदीश्वरौ ।।३७
पार्वतीशंकरौ सद्यो यास्यामि निजमन्दिरम् ।
कार्त्तवीर्य: सुचन्द्रश्च सपुत्रबलबांधव: ।।३८
अन्ये सहस्रशो भूपाः काम्बोजाः पह्लवाः शकाः ।
कान्यकुब्जाः कोसलेशा मायावन्तो महाबलाः ।।३९
निहताः समरे सर्वे मया शम्भुप्रसादतः ।

तस्मिमं प्रणिपत्यैव यास्यामि स्वगृहं प्रति ॥४०
इत्युक्त्वा भार्गवस्तत्र तस्थौ गणपतेः पुरः ।
प्रोवाच मधुरं वाक्यं भार्गवे स गणाधिपः ॥४१
विनायक उवाच -
क्षणं तिष्ठ महाभाग दर्शनं ते भविष्यति ।
अद्य विश्वेश्वरो भ्रातर्भवान्या सह वर्त्तते ॥४२

■ फिर हे भाई ! आपको साथ ही लेकर आपका प्रवेश वहाँ पर अभी करा दूँगा । अतएव वहाँ पर कुछ समय तक आप रुकिए । भार्गव नन्दन ने विनायक ■ ■ ■ का श्रवण करके बड़ी ही शीघ्रता से युक्त होकर श्री गणेशजी से कुछ कथन करने का ■ किया था । राम ने कहा—हे भाई ! आप अन्तः पुर में जाकर ■ दोनों जगदीश्वरों को प्रणाम करिए अर्थात् मेरा प्रणिपात निवेदित कर दीजिए । पार्वती और शङ्कर इन दोनों को प्रणाम करके ■ तुरन्त ही अपने मन्दिर को गमन करूँगा । कार्त्तवीर्य और सुचन्द्र जो अपने पुत्रों-सैनिकों और बान्धवों के सहित थे एवं अन्य भी सहस्रों नृप जो कि काम्बोज—पह्लव शक-कान्यकुब्ज—कोशलेश्वर थे जो कि बड़ी ही अधिक माया वाले और महान् बलवान् थे ।३६-३७-३८-३९। मैंने भगवान् शम्भु की ही कृपा से तथा परिपूर्ण ■ ■ ■ में ■ निहनन किया ■ । अतएव ■ ■ उन्हीं प्रभु ■ चरणों में प्रणाम करके फिर अपने घर को ■ जाऊँगा ।४०। इतना निवेदन करके परशुराम वहाँ पर गणपति ■ आगे स्थित हो गये थे । फिर उन गणाधिप प्रभु ने भार्गव से बहुत मधुर स्वर में कहा था ।४१। विनायक ने कहा—■ महाभाग ! एक क्षण आप वहाँ पर ठहरिए आपको भगवान् शङ्कर ■ दर्शन हो जायगा । हे भाई ! आज वे विश्वेश्वर प्रभु भवानी के ■ ■ विद्यमान ■ ।४२।

स्त्रीपुंसोर्युं क्तयोस्तात सहैकासनसंस्थयोः ।
करोति सुखभंगं यो नरकं स व्रजेद्ध्रुवम् ॥४३
विशेषतस्तु पितरं गुरुं वा भूपतिं द्विज ।
रहस्यं समुपासीनं न पश्येदिति निश्चयः ॥४४
कामतोऽकामतो वापि पश्येद्यः सुरतोन्मुखम् ।

स्त्रीविच्छेदो भवेत्तस्य ध्रुवं सप्तसु जन्मसु ॥४५

श्रोणिं वक्षःस्थलं वक्त्रं यः पश्यति परस्त्रियः ।
मातुर्वापि भगिन्या वा दुहितुः स नराधमः ॥४६

मार्गेय उवाच—

अहो श्रुतमपूर्वं किं वचनं तव वक्त्रतः ।
भ्रान्त्या विनिर्गतं वापि हास्यार्थमथवोदितम् ॥४७

कामिनां सविकाराणामेतच्छास्त्रनिदर्शनम् ।
निर्विकारस्य ते शिशोर्न दोषः कश्चिदेव हि ॥४८

यास्याम्यंतः पुरं भ्रातस्तत्र किं तिष्ठ बालक ।
यथाहृष्टं करिष्यामि तत्र यत्समयोचितम् ॥४९

हे तात ! पति और पत्नी जब एक ही आसन पर संस्थित होकर संयुक्त होवें और साथ ■ निरत होवें उस समय में जो कोई भी सुरत-सुख का भङ्ग किया करता है वह निश्चय ही नरक ■ गमन किया करता है ।४३। यह तो सर्व साधारण के लिए नियम है और विशेष ■ से हे द्विज ! जो कोई अपने पिता—गुरु अथवा भूपति को यद्यपि वे रहस्य में समुपासीन हों तो इनको कभी भी बाधा डालते हुए नहीं देखना चाहिए—यह निश्चित सिद्धान्त की बात है ।४४। चाहे इच्छा से ■ बिना ही ■ के कहीं पर भी सुरत क्रीड़ा ■ उन्मुख पति-पत्नी को जो कोई देखता है अर्थात् देखा करता है उसकी स्त्री का विच्छेद ■ जन्मों तक हो जाया करता है यह परम निश्चित है ।४५। जो पराई स्त्री के श्रोणि—वक्षः स्थल और मुख को देखता है तात्पर्य यह है कि बुरी दृष्टि से देखा करता है वह चाहे अपनी ■ हो—भगिनी हो ■ दुहिता हो इनमें कोई भी हो तो वह नरों में बड़ा ही अधम होता ■ ।४६। मार्गेय ने कहा—आज ■ आपके मुख से निकले हुए अपूर्व ही ■ सुने हैं। ये वचन भ्रान्ति से ■ निकल गये हैं ■ आपने हास्य के ही लिये कहे हैं ? ।४७। यह तो सब विकारों से युक्त कामियों के शास्त्र ■ निदर्शन है अर्थात् ■ से वासित अन्तःकरण वाले ही ऐसे विषय की चर्चा किया करते हैं। आप तो विकारों ■ रहित हैं और शिशु हैं क्या आपको ऐसा कथन करने से कोई दोष नहीं होता है ? ।४८। हे भाई ! मैं तो अन्तः पुर ■ जाऊँगा। आप तो बालक हैं, आपको इस बात ■ क्या

प्रयोजन है आप यहीं पर ही रहिए। मैं वहाँ पर जैसा भी देखूँगा और जो भी उस समय में उचित होगा, करूँगा ।४९।

तत्रैव माता [illegible] [illegible] नाम निरूपितौ ।
जगतां पितरौ तौ च पार्वतीपरमेश्वरौ ॥५०
इत्युक्त्वा भार्गवो राजन्नंतर्गन्तुं समुद्यत: ।
विनायकस्तदोत्थाय वारयामास सत्वरम् ॥५१
वाग्युद्धं च तयोरासीन्मिथो हस्तविकर्षणम् ।
दृष्ट्वा स्कन्दस्तु सभ्रान्तो बोधयामास तौ तदा ॥५२
बाहुभ्यां द्वौ समुद्गृह्य पृथगुत्सारितौ तदा ।
अथ क्रुद्धो गणेशाय भार्गव: परवीरहा ।
परश्वधं समादाय संप्रक्षेप्तुं समुद्यत: ॥५३
तं दृष्ट्वा गजाननो भृगुवरं क्रोधाग्निपर्णं त्वरा
त्वात्मार्थं परशुं तदा निजकरेणोद्धृत्य वेगेन तु ।
भूर्लोकं भुव: स्वरपि तस्योर्ध्वं महर्जनं लोकं
चापि तपोऽथ सत्यमपरं वैकुण्ठमभ्यानयत् ॥५४
तस्योर्ध्वं [illegible] निदर्शयन्भृगुवरं गोलोकमीशात्मजो
निष्पात्या धरलोक सप्तकमधस्थं दर्शयामास च ।
उद्धृत्याथ ततो हि गर्भसलिले प्रक्षिप्तमात्रं त्वरा
भीतं प्राणपरिप्सुमानयवशो तत्रैव सत्रास्थित: ॥५५

वहाँ पर माता [illegible] हैं और पिता भगवान शंकर हैं, आपने दोनों के [illegible] निरूपित कर ही दिये हैं। वे पार्वती और परमेश्वर तो सम्पूर्ण जगतों के पिता-माता हैं ।५०। हे राजन ! इतना भर कहकर भार्गव राम अन्दर जाने के लिए उद्यत हो गये थे। उसी समय में विनायक ने शीघ्र ही उठकर उनका वारण कर दिया था अर्थात् अन्त: पुर में जाने से रोक दिया था ।५१। पहिले तो उन दोनों का वाग्युद्ध अर्थात् कहा सुनी हुई और फिर हाथों की खींच [illegible] हुई, जब कार्त्तिकेय जी ने देखा तो उनको बहुत सम्भ्रान्ति हुई थी और [illegible] समय में उन्होंने दोनों को समझाया था ।५२। स्वामी स्कन्द ने अपनी बाहुओं से पकड़कर उन दोनों को अलग-अलग

कर दिया था। इसके अनन्तर शत्रु वीरों के हनन करने वाले भार्गव गणेश जी पर बहुत क्रुद्ध हो गये थे और अपनी परशु लेकर उसका प्रहार करने के लिए उद्यत हो गये थे।५३। गजानन ने जब यह देखा था कि भृगुवर बड़ी शीघ्रता से क्रोध में भरकर अपने लिए परशु को प्रक्षिप्त कर रहे हैं तो उन्होंने उसी समय में बड़े ही वेग से अपने हाथ से परशुराम को ऊपर उठा कर भूर्लोक-भुवर्लोक-स्वर्लोक-और उसके भी ऊपर महर्लोक-जनलोक तप-लोक-सत्यलोक और दूसरे वैकुण्ठ लोक में ले आये थे।५४। उन भगवान शम्भु के पुत्र गजानन ने उन भृगुवर उसके ऊपर गोलोक को दिखाते हुए फिर गिराकर नीचे के सातों अतल-वितल-सुतल-तला-तल-रसातल-महातल और पाताल लोकों को दिखा दिया था। फिर नीचे के लोकों से ऊपर उठाकर सलिल के गर्भ में शीघ्रता से प्रक्षिप्त किया था। जब यह देखा कि वह भयभीत होकर अपने प्राणों की रक्षा करने की इच्छा वाले हैं तो फिर वहाँ पर उनको लाकर खड़ा कर दिया था जहाँ पर वे पहिले स्थित थे।५५।

भार्गव-चरित्र वर्णन (२)

वसिष्ठ उवाच—

एवं संभ्रामितो रामो गणाधीशेन भूपते।
हर्षशोकसमाविष्टो विचिन्त्यारमपराभवम् ॥१
गणेशं चाभितो वीक्ष्य निर्विकारमवस्थितम्।
क्रोधाविष्टो भृशं भूत्वा प्राक्षिपत्स्वपरश्वधम् ॥२
गणेशस्त्वभिवीक्ष्याथ पित्रा दत्तं परश्वधम्।
अमोघं कर्त्तुकामस्तु वामे तं दशनेऽग्रहीत् ॥३
स तु दंतः कुठारेण विच्छिन्नो भूतलेऽपतत्।
भुवि शोणितसंदिग्धो वज्राहत इवाचलः ॥४
दंतपातेन विध्वस्ता साब्धिद्वीपधरा धरा।
चकंपे पृथिवीपाल लोकास्त्राससुपागताः ॥५

हाहाकारो महानासीद्देवानां दिवि पश्यताम् ।
कार्त्तिकेयादयस्तत्र चुक्रुशुर्भृशमातुराः ॥६
अथ कोलाहलं श्रुत्वा दंतपातध्वनिं तथा ।
पार्वतीशंकरौ तत्र समाजग्मतुरीश्वरौ ॥७

वसिष्ठ जी ने कहा—हे भूपते ! रीति से गणाधीश के द्वारा परशुराम भली भाँति प्रमित किये गये थे । उनको बहुत से अद्भुत लोकों के दर्शन से हर्ष हुआ था और अपने पराक्रम की तुच्छता कर बड़ा भारी शोक भी हुआ । ऐसे हर्ष और शोक समाविष्ट होकर उन्होंने अपने पराभव का चिन्तन किया ।१। उस गणेश को सामने देखा था कि विना विकार वाले अवस्थित हैं तो फिर अत्यन्त क्रोध में भरकर परशुरामजी ने अपने परशु को फेंककर था ।२। गणेशजी ने यह देखा था कि वह परशु अपने पिताजी के द्वारा राम को दिया गया था । उस परशु के प्रहार को अमोघ अर्थात् करने की ही वाले गणेशजी ने उस परशु को अपने बाँये दाँत पर ग्रहण कर लिया ।३। गणेश जी का वह बाँया दाँत कुठार से विच्छिन्न होकर भूतल पर गिर गया था । रुधिर से संदिग्ध (लथपथ) वह दाँत भूमि पर एक पर्वत ही गिर गया था ।४। उस दाँत पात ऐसा भीषण हुआ था कि सम्पूर्ण सागरों और द्वीपों के सहित यह विध्वस्त हो गया था और पृथिवीपाल काँप उठे तथा सभी लोकों को बड़ा भारी उत्पन्न हो गया ।५। स्वर्ग में जो देवगण देख रहे थे उनमें बड़ा भारी हाहाकार मच गया और वहाँ पर कार्त्तिकेय आदि जो थे सभी अत्यन्त आतुर होकर क्रन्दन करने लगे थे ।६। इसके अनन्तर बड़ा भारी वहाँ पर कोलाहल हो गया था तो उस दाँत गिरने की ध्वनि को सुनकर ईश्वर पार्वती तथा भगवान् शङ्कर वहाँ पर समागत हो गये थे ।७।

हेरम्बं पुरतो दृष्ट्वा वक्रतुंडैकदंतिनम् ।
पप्रच्छ स्कन्दं पार्वती किमेतदिति कारणम् ॥८
स तु पृष्टस्तदा मात्रा सेनानीः सर्वमादितः ।
वृत्तांतं कथयामास मात्रे रामस्य शृण्वतः ॥९
सा श्रुत्वोदंतमखिलं जगतां जननी नृप ।

उवाच शंकरं [illegible] पार्वती प्राणनायकम् ॥१०

पार्वत्युवाच—अयं ते भार्गवः शंभो शिष्यः पुत्रः सखोऽभवत् ।

त्वत्तो लब्ध्वा परं तेजो वर्मं त्रैलोक्यजिद्विभो ॥११

कार्तवीर्यार्जुनं संख्ये जितवानूर्जितं नृपम् ।

स्वकार्यं साधयित्वा तु प्रादात्तुभ्यं [illegible] दक्षिणाम् ॥१२

तत्ते सुतस्य दशनं कुठारेण न्यपातयत् ।

अनेनैव कृतार्थस्त्वं भविष्यसि न संशयः ॥१३

त्वमिमं भार्गव शम्भो रक्षान्तेवासिसत्तमम् ।

[illegible] कार्याणि सर्वाणि साधयिष्यति सद्गुरोः ॥१४

भगवान शङ्कर ने गणेशजी को अपने सामने देखा था जिसका मुख तिरछा हो गया था और केवल एक ही दाँत था । पार्वतीजी [illegible] स्वामी कार्त्तिकेय से पूछा था कि इस दुर्घटना के घटित होने [illegible] क्या कारण था ।८। माताजी द्वारा [illegible] स्वामी कार्त्तिकेय से पूछा गया तो सेनानी ने आदि से सम्पूर्ण वृत्तान्त माताजी को कहकर सुना दिया था । उस समय में वहाँ पर परशुराम भी इसको सुन ही रहे [illegible] ।९। [illegible] नृप ! जगतों की जननी पार्वतीजी ने पूर्ण समाचार [illegible] करके रुष्ट होती हुई अपने प्राणनायक भगवान शङ्कर [illegible] बोलीं ।१०। पार्वतीजी ने कहा—हे शम्भो ! यह भार्गव तो आपका ही शिष्य है और पुत्र के ही [illegible] हुआ था । हे विभो ! इसने आप ही से ऐसा परम तेज और त्रैलोक्य को जीतने [illegible] वर्म प्राप्त किया है ।११। इसने महान अजित कार्त्तवीर्यार्जुन नृप को युद्ध में जीत लिया [illegible] यह आप ही के द्वारा प्रदत्त बलविक्रम [illegible] इसकी विजय हुई है । इसने अपने कार्य को साधित करके अर्थात् अपने शत्रु [illegible] निहनन करके अब यह आपकी सेवा में दक्षिणा दी [illegible] ।१२। वह यही तो दक्षिणा [illegible] कि आप [illegible] के पुत्र के दाँत को अपने कुठार से तोड़कर नीचे गिरा दिया है । आप इसी कार्य से कृतार्थ होंगे—इसमें लेशमात्र भी संशय नहीं है ।१३। हे शम्भो ! आप इस परम श्रेष्ठ अपने [illegible] तथा शिष्य की [illegible] कीजिए । [illegible] इसके बड़े ही अच्छे गुरु [illegible] अब आपके समस्त कार्यों को [illegible] ही सिद्ध करेगा ।१४।

अहं नैवात्र तिष्ठामि यस्त्वया विमता विभो ।

पुत्राभ्यां सहिता यास्ये पितुः स्वस्य निकेतनम् ॥१५

संतो भुजिष्यातनयं सत्कुर्वंत्यात्मपुत्रवत् ।
मनसा [illegible] कृतो नैव सत्कारो वचसाऽपि हि ॥१६
आत्मनस्तनयस्यास्य ततो यास्यामि दुःखिता ।
वसिष्ठ उवाच—
एतच्छ्रुत्वा तु वचनं पार्वत्या भगवान्भव: ॥१७
नोवाच किंचिद्वचनं साधु वासाधु भूपते ।
सस्मार मनसा कृष्णं प्रणतक्लेशनाशनम् ॥१८
गोलोकनाथं गोपीशं नानानुनयकोविदम् ।
स्मृतमात्रोऽथ भगवान् केशव: प्रणतार्तिहा ।
आजगाम यथासिद्धुर्भक्तश्योऽखिलेश्वर: ॥१९
मेघश्यामो विशदवदनो रत्नकेयूरहारो विद्युद्वासा
मकरसदृशे कुण्डले संदधान: ।
बर्हापीडं मणिगणयुतं बिभ्रदीषत्स्मितास्यो गोपीप्राणो
गवितसुयशा: कौस्तुभोद्भासिवक्षा: ॥२०
राधया सहित: श्रीमान् श्रीदाम्ना चापराजित: ॥२१

हे विभो ! [illegible] अब यहाँ पर नहीं रहूँगी क्योंकि आपने मेरा अपमान कर दिया [illegible] अर्थात् मुझको अपनी नहीं [illegible] है, [illegible] मैं तो अपने दोनों पुत्रों को साथ में लेकर अपने पिताजी [illegible] घर में चली जाऊँगी ।१५। सत्पुरुष तो अपनी पुत्री के पुत्रों को अपने [illegible] पुत्रों के समान [illegible] किया करते हैं । आपने तो अपने वचनों से भी कभी सत्कार नहीं किया है ।१६। [illegible] तो [illegible] ही पुत्र [illegible] फिर [illegible] कभी इसका आदर-सम्मान वाणी [illegible] द्वारा भी नहीं किया है । इसी कारण से [illegible] अधिक दुःखित होकर ही चली जाऊँगी । वसिष्ठ जी ने कहा—भगवान शङ्कर ने अपनी [illegible] प्रिया पत्नी पार्वती के इस वचन का श्रवण किया था ।१७। हे राजन् ! किन्तु इस वचन को सुनकर भी उन्होंने पार्वती जी [illegible] अच्छा या कुछ भी वचन उत्तर के [illegible] में नहीं कहा था । और प्रणतों के क्लेशों [illegible] विनाश कर देने वाले भगवान श्री कृष्णचन्द्र का मन में स्मरण किया था ।१८। व्रज की गोपियों के नाथ और गोलोक के स्वामी तथा अनेक भाँति के अनुनयों-विनयों के ज्ञाता महान

मनीषी भगवान ने ध्यान में मन के द्वारा स्मरण किया था केवल स्मरण करने ही से अपने चरणों में शिर झुकाकर प्रणत होने वाले भक्तों की पीड़ा [illegible] शमन कर देने वाले केशव भगवान् वहाँ पर आकर उपस्थित हो गये थे क्योंकि प्रभु तो [illegible] चराचर के ईश्वर हैं—दया के सागर हैं और अपने भक्तों [illegible] वश में होने वाले हैं ।१९। [illegible] भगवान् के सुन्दर जगत मोहन स्वरूप का वर्णन किया जाता है—उनका वर्ण नील सजल मेघ के समान था—आपका मुख विकसित कमल के सदृश था और आप रत्न जटित केयूर और हार [illegible] किये हुए थे। सौदामिनी विद्युत के समान पीताम्बर पहिने हुए [illegible] और मकरों [illegible] आकृति वाले दो कुण्डल कानों में धारण कर रहे थे। मयूर पिच्छों से निर्मित और अनेक मणियों [illegible] संयुत मस्तक पर मुकुट पहिन रहे थे तथा उनके मुख कमल पर मन्द मुस्कान [illegible] रही थी। [illegible] गोपियों के साथ जिनके मन का वर्णन किया है कौस्तुभ मणि से समुद्भासित वक्षःस्थल वाले थे ।२०। अद्भुत थी से [illegible] श्रीकृष्ण के [illegible] में रासेश्वरी राधा भी थीं और श्रीदामा से अपराजित [illegible] ।२१।

मुष्णंस्तेजांसि सर्वेषां स्वत्विषा ग्रामवासिभिः ।
अथैनमागतं दृष्ट्वा शिवः संहृष्टमानसः ॥२२
प्रणिपत्य यथान्यायं पूजयामास चागतम् ।
प्रवेश्याभ्यंतरे वेश्म राधया सहितं विभुम् ॥२३
रत्नसिंहासने रम्ये सदारं स न्यवेशयत् ।
अथ तत्र गता देवी पार्वती तनयान्विता ॥२४
ननाम चरणान्शम्भोः पुत्राभ्यां सहिता मुदा ।
अथ रामोऽपि तत्रैव गत्वा नमितकंधरः ॥२५
पार्वत्याश्चरणोपांते पपाताकुलमानसः ।
सा यदा नाभ्यनंदत्तं भार्गवं प्रणतं पुरः ॥२६
तदोवाच जगन्नाथः पार्वतीं प्रीणयन्गिरा ॥२७
श्रीकृष्ण उवाच—
अयि नगनंदिनि निंदितचंद्रमुखि त्वमिमं जमदग्निसुतम् ।
नय निजहस्तसरोजसमर्पितमस्तकमंकमनंतगुणे ॥२८

भगवान् श्रीकृष्ण [illegible] महान् सागर थे और अपने दिव्य देह [illegible] कान्ति से सबके तेज को तिरस्कृत कर रहे थे। इसके अनन्तर जिस [illegible] भगवान् श्रीकृष्ण ने वहाँ पर पदार्पण किया था तो उसका दर्शन करके भगवान् शिव [illegible] में परमाधिक प्रसन्नता हुई थी ।२२। उन वहाँ पद [illegible] हुए प्रभु को [illegible] के अनुसार जैसा भी महापुरुषों के लिये अभिवादन किया जाता है प्रणिपात किया और अर्चन किया था। फिर बड़े ही आदर [illegible] राधिका जी के साथ प्रभु का अपने [illegible] में प्रवेश कराया था ।२३। वहाँ पर एक रत्न जटित परम सुरम्य सिंहासन पर राधिका जी के सहित उनको विराजमान कराया था। इसके [illegible] पार्वती जी ने साक्षात् प्रभु का आगमन देखा तो वह भी अपने दोनों पुत्रों के सहित वहाँ पर पहुँच गयी थीं ।२४। बड़े ही हर्षोल्लास के साथ इन्होंने अपने दोनों पुत्रों के सहित श्रीकृष्ण और श्रीराधा चरणों में प्रणाम किया था। इसके उपरान्त परशुराम भी वहीं पर पहुँच गये थे और अपनी गरदन को नीचे की ओर झुकाये हुए आकुलित मन वाले होकर पार्वती [illegible] के चरणों के समीप में ही भूमि में गिर गये थे। किन्तु [illegible] अपने आगे प्रणिपात करते हुए भार्गव को पार्वती जी ने अभिनन्दित नहीं किया था तो [illegible] भगवान् श्रीकृष्ण ने स्वयं उनके हृद्गत अमर्ष का अवलोकन किया [illegible] ।२५-२६। उस समय जगतों के [illegible] प्रभु श्रीकृष्ण ने अपनी परम मधुर वाणी [illegible] पार्वती जी को प्रसन्न करते हुए उनसे कहा [illegible] ।२७। श्रीकृष्ण ने कहा—अयि ! नगराज की पुत्रि ! आप तो इतने अधिक सुन्दर [illegible] वाली हैं कि जिसकी छटा के सामने [illegible] भी तुच्छ है। आपके अन्दर तो समस्त गुण गण विद्यमान हैं। अब आप इस जमदग्नि के पुत्र परशुराम को अपने कर कमलों [illegible] इसका मस्तक पकड़ कर अपनी गोद में बिठा लीजिए ।२८।

भवभयहारिणि शंभुविहारिणि कल्मषनाशिनि कुंभिगते ।
[illegible] चरणे पतितं सततं कृतकिल्बिषमप्यथ देहि वरम् ॥२९

शृणु देवि महामाये वेदोक्तं वचनं मम ।
यच्छ्रुत्वा हर्षिता नूनं भविष्यसि न संशयः ।
विनायकस्ते तनयो महात्मा महतां महान् ॥३०
यं कामः क्रोध उद्वेगो भयं नाविशते [illegible] ।
वेदस्मृतिपुराणेषु संहितासु च भामिनि ॥३१

था और फिर उसको संयोजित किया था जो कि एक गज के सिर से ही जोड़ दिया गया था। हे देवि ! इसीलिए यह [illegible] [illegible] वाले हैं।३५।

चतुर्थ्यामुदितश्चन्द्रो दक्षिणा शप्त आतुरः ।
अनेन विधृतो भाले भालचन्द्रस्ततः स्मृतः ॥३६
शप्तः पुरा सप्तभिस्तु मुनिभिः संक्षयं गतः ।
जातवेदा दीपितोऽभूत्तेनासौ शूर्पकर्णकः ॥३७
पुरा देवासुरे युद्धे पूजितो दिविषद्गणैः ।
विघ्नं निवारयामास विघ्ननाशस्ततः स्मृतः ॥३८
अद्यायं देवि रामेण कुठारेण निपात्य च ।
दशनं दैवतो भद्रे ह्येकदंतः कृतोऽमुना ॥३९
भविष्यत्यथ पर्याये ब्रह्मणो हंसवल्लभे ।
वक्रीभविष्यत्तुंडत्वाद्वक्रतुंडः स्मृतो बुधैः ॥४०
एवं तवास्य पुत्रस्य संति नामानि पार्वति ।
स्मरणात्पापहारीणि त्रिकालानुगतान्यपि ॥४१
अस्मात्त्रयोदशीकल्पात्पूर्वस्मिन्दशमीपवे ।
मयास्मै तु वरो दत्तः सर्वदेवाग्रपूजने ॥४२

चतुर्थी तिथि में चन्द्रमा उदित हुआ था और दक्षिणा के द्वारा इसको शाप दे दिया [illegible] [illegible] तब यह अत्यन्त आतुर हो [illegible] था। उस [illegible] में इन्हीं गणेश ने इसको अपने [illegible] में धारण कर लिया [illegible]। तभी से इनका [illegible] भाल चन्द्र कहा गया है।३६। प्राचीन काल में पहिले सात मुनियों ने एक बार इसको [illegible] दे दिया था। इसी कारण से यह क्षीणता को प्राप्त हो गया [illegible]। इनके द्वारा एक बार जातवेदा (अग्नि) दीपित किया गया था। इसी कारण से तभी से इनका शूर्पकर्णक नाम हो गया [illegible]।३७। पहिले समय में देवों और असुरों का महान् भीषण देवासुर संग्राम हुआ था उसमें देवगणों के द्वारा इनकी बड़ी अर्चना हुई थी। उससे परम प्रसन्न होकर इन्होंने सभी विघ्नों का निवारण कर दिया था। फिर तभी से इनका विघ्न नाश—यह शुभ नाम पड़ गया था।३८। हे देवि ! आज परशुराम के द्वारा इसके ऊपर अपने कुठार का प्रहार किया गया है हे भद्रे ! इससे दैववशात् इनका एक

दाँत टूटकर गिर गया है। इसीलिये इनने इसको एकदन्त कर दिया है ।३९। हे हर ! वल्लभे ! इसके अनन्तर यह ब्रह्मा के पर्य्याय में होंगे । कुठार की प्रहार से इनका मुख कुछ टेढ़ा सा हो गया है तभी से बुधों के द्वारा इनको वक्रतुण्ड कहा गया है ।४०। हे पार्वति ! इसी भाँति से आपके इस पुत्र (गणेश) के अनेक नाम हैं। जिनका तीनों कालों में अर्थात् प्रातः-मध्याह्न और सायंकाल में स्मरण करने वाले होते हैं ।४१। इस मर्यादकी [illegible] से पूर्व कर्दमोद्भव में मैंने ही इनको यह वरदान दे दिया था कि [illegible] देवों के पूजन के पहिले इन्हीं का सर्वप्रथम पूजन हुआ करेगा ।४२।

जातकर्मादिसंस्कारे गर्भाधानादिकेऽपि च ।
यात्रायां च वणिज्यादौ युद्धे देवार्चने शुभे ।।४३
संकष्टे काम्यसिद्धयर्थं पूजयेद्यो गजाननम् ।
तस्य सर्वाणि कार्याणि सिद्धयं स्येव न संशयः ।।४४
वसिष्ठ उवाच—
इत्युक्तं तु समाकर्ण्य कृष्णेन सुमहात्मना ।
पार्वती जगतां माता विस्मिताऽसीच्छुभानना ।।४५
यदा नैवोत्तरं प्रादात्पार्वती शिवसन्निधौ ।
तदा राधाऽब्रवीद्देवी शिवरूपा सनातनी ।।४६
श्री राधोवाच—
प्रकृतिः पुरुषश्चोभावन्योन्याश्रयविग्रहौ ।
द्विधा भिन्नौ प्रकाशेते प्रपंचेस्मिन् यथा तथा ।।४७
त्वं चाहमावयोर्देवि भेदो नैवास्ति कश्चन ।
विष्णुस्त्वमहमेवास्मि शिवो द्विगुणतां गतः ।।४८
शिवस्य हृदये विष्णुर्भवत्या रूपमास्थितः ।
मम रूपं समास्थाय विष्णोश्च हृदये शिवः ।।४९

जातकर्म आदि षोडश संस्कारों के कराने के समय में तथा गर्भ के आधान आदि कर्मों में—यात्रा के करने के समय में वाणिज्य आदि व्यसायों के करने के काल में—संग्राम के आरम्भ करने के समय में एवं किसी भी

शुभ कार्य के करने के समय में तथा सङ्कट के आ पड़ने पर और किसी भी कामना से युक्त कार्य की सिद्धि के लिए जो भी कोई इन गजानन प्रभु [illegible] पूजन करेगा [illegible] पुरुष के समस्त कार्य अवश्यमेव सिद्ध हो जाया करते हैं—इनमें कुछ भी संशय नहीं है ।४३-४४। श्री वसिष्ठजी ने कहा—परम शुभ मुख वाली जगतों की स्वामिनी पार्वती श्रीकृष्ण महान् आत्मा वाले प्रभु [illegible] द्वारा इस प्रकार से कहे हुए वचन का श्रवण करके अत्यन्त विस्मित हो गयी थीं ।४५। [illegible] भगवान् शिव की सन्निधि में पार्वतीजी [illegible] कुछ भी उत्तर नहीं दिया था उस समय में सनातनी [illegible] के [illegible] वाली राधा जी ने देवी [illegible] कहा था ।४६। श्री राधाजी ने कहा—जिस रीति से [illegible] प्रपञ्च में पुरुष और प्रकृति दोनों परस्पर में एक दूसरे के आश्रम में विग्रहों (स्वरूपों) को रखने वाले [illegible] और दो रूपों में भिन्न प्रकाशित हुआ करते [illegible] उसी रीति [illegible] हे देवि ! तुम और मैं दोनों में दो रूप तो [illegible] किन्तु वस्तुत कोई भी भेद नहीं है । तुम विष्णु और मैं ही शिव [illegible] और त्रिगुणता को [illegible] हुआ है ।४७-४८। भगवान् शिव के हृदय में विष्णु आपके [illegible] में समाश्रित हैं और मेरे रूप में समाश्रित होकर भगवान् विष्णु के हृदय में शिव है ।४९।

एष रामो महाभागे वैष्णवः सेवको मम ।
गणेशोऽयं शिवः साक्षाद्वैष्णवत्वं समाश्रितः ॥५०

एतयोरावयोः शम्भोश्चापि भेदो न दृश्यते ।
एवमुक्त्वा तु सा राधा क्रोडे कृत्वा गजाननम् ॥५१

मूर्ध्न्युपाघ्राय पस्पर्श स्वहस्तेन कपोलके ।
स्पृष्टमात्रे कपोले तु क्षतं पूर्त्तिमुदागतम् ॥५२

पार्वतीसुप्रसन्नाभूदनुनीताऽथ राधया ।
पादयोः पतितं राममुत्थाप्य निजपाणिना ॥५३

क्रोडीचकार सुप्रीता मूर्ध्न्युपाघ्राय पार्वती ।
एवं तयोस्तु सत्कारं दृष्ट्वा रामगणेशयोः ॥५४

कृष्णः स्कन्दमुपाकृष्य स्वांके [illegible]कृष्णा न्यवेशयत् ।
[illegible] शम्भुरपि प्रीतः श्रीदामानमुपस्थितम् ॥५५

स्वोत्संगे स्थापयामास प्रेम्णा सत्कृत्य मानदः ॥५६

हे महाभागे ! यह वैष्णव परशुराम शैवता को [illegible] हुआ [illegible] अर्थात् शिव के स्वरूप को प्राप्त होजाने वाला हो [illegible] है । और साक्षात् यह गणेश शिव हैं जो वैष्णवत्व को प्राप्त हुआ है अर्थात् विष्णु के स्वरूप में समास्थित है । इन तुम दोनों प्रभुओं का भी भेद दिखलाई नहीं दिया करता है । इस प्रकार से कहकर श्री राधा ने अपनी गोद में गजानन को बैठा लिया था ।५०-५१। फिर गणेशजी [illegible] मस्तक सूंघ कर अपने हाथ [illegible] उनके कपोलों का स्पर्श किया था । उनके केवल कर कमल के स्पर्श करते ही [illegible] जो भी दाँत के टूट जाने से क्षत हो गया [illegible] वह भरकर ठीक हो गया था ।५२। इसके अनन्तर श्री राधा जी के द्वारा अनुनय की गयी पार्वतीजी भी परम प्रसन्न हो गयी थीं और अपने चरणों [illegible] मस्तक नवाकर पड़े हुए परशुराम को उन्होंने भी अपने करकमल से पकड़ कर उठा लिया था । पार्वती जी ने परम प्रसन्न होकर उसको अपनी गोद [illegible] बिठाकर उसके सिर का उपघ्राण किया था । आर्य संस्कृति में [illegible] एवं बड़े लोग अपने छोटे बालकों का सिर सूंघ कर उनकी आयु की वृद्धि किया करते थे । इस रीति [illegible] उन दोनों राम और गणेश [illegible] सत्कार भगवान् श्रीकृष्ण [illegible] अपने नेत्रों [illegible] देखा था । [illegible] श्रीकृष्ण ने भी [illegible] को अपनी ओर उठाकर बहुत ही प्रेम के साथ अपनी गोद में बैठा लिया था । इसके अनन्तर भगवान् शम्भु ने भी परम प्रसन्न होकर वहीं पर समुपस्थित श्रीदामा को अपनी गोद [illegible] संस्थापित कर लिया [illegible] और मान प्रदान करने वाले प्रभु ने उसका बड़ा सत्कार किया था ।५३-५४-५५-५६।

— × —

भार्गव-चरित्र वर्णन (३)

वसिष्ठ उवाच—

एवं सुस्निग्धचित्तेषु तेषु तिष्ठत्सु भूपते ।

भवान्युत्संगतो रामः समुत्थाय कृतांजलिः ॥१

तुष्टाव प्रयतो भूत्वा निर्विशेषं विशेषवत् ।

अद्वयं द्वैतमापन्नं निर्गुणं सगुणात्मकम् ॥२

राम उवाच—

प्रकृतिविकृतिजातं विश्वमेतद्विधातुं मम कियदनुभातं वैभवं तत्प्रमातुम् ।

अविदिततनुनामाऽमोघवस्त्वेकधामाऽभवदथ भव-
भामा पातु मां पूर्णकामा ॥३
प्रकटितगुणमानं कालसंख्याविधानं सकलभयनिदानं
कीर्त्यंते मत्प्रधानम् ।
तदिह निखिलतातः संप्रभूतोस्पातः कृतकृतकनिपातः
पातु मामद्य मातः ॥४
दनुजकुलविनाशी लेखपालाविनाशी प्रथम-
कुलविकाशी सर्वविद्याप्रकाशी ।
प्रसभरचितकाशी भक्तवत्साखिलाशीरवतु विधितपाशी
मां सदा व्यमुखाशी ॥५
हरनिकटनिवासी कृष्णसेवाविलासी
प्रणतजनविभासी गोपकन्याप्रहासी ।
हरकृतबहुमानो गोपिकेशैकतानो विदितबहुविधानो
जायतां कीर्तिहा नो ॥६
प्रभुनियतमना यो गुम्नभक्तांतरायो हृतदुरितनिकायो
ज्ञानदातापरायोः ।
सकलगुणगरिष्ठो राधिकांके निविष्ठो मम
कृतमपराधं क्षंतुमर्हत्यगाधम् ॥७

श्री वसिष्ठ जी ने कहा—हे नृपते ! इस रीति से ■ सबके परमा-
त्मिक स्नेह से युक्त चित्त वाले हो जाने पर समवस्थित हुए देखा था तो
परशुराम भवानी की गोद से उतर कर दोनों हाथों को जोड़कर पूर्णतया
प्रणत हो गये ■ ।१। फिर परम प्रयत्नशील होकर विशेषता से रहित की
भी विशेष की भाँति स्तुति की थी । ■ द्वैत से रहित होते हुए भी अर्थात्
एक ही स्वरूप वाले होकर भी इस ■ में द्वैत भाव को प्राप्त हो रहे ■
अर्थात् दो स्वरूपों में दर्शन दे रहे हैं । वास्तव में आप गुणों ■ रहित हैं तो
भी ■ सगुण स्वरूप ■ संयुत हैं ।२। परशुराम ने कहा—यह सम्पूर्ण विश्व
प्रकृति के विकारों से ही समुत्पन्न हुआ है । इसकी रचना करने ■ लिए जो

पायाद्यः स चराचरस्य जगतो व्यापी विभुः सच्चिदा-
नंदाब्धिः प्रकटस्थितो विलसति प्रेमांधया राधया ।
कृष्णः पूर्णतमो ममोपरि दयाक्लिन्नांतरः स्यात्सदा
येनाहं सुकृती भवामि च भवाम्यानंदलीनांतरः ॥१०

वसिष्ठ उवाच–

स्तुत्वैवं जामदग्न्यस्तु विरराम च तत्परम् ।
विज्ञाताखिलतत्त्वार्थो हृष्टरोमा कृतार्थवत् ॥११
अथोवाच प्रसन्नात्मा कृष्णः कमललोचनः ।
भार्गवं प्रणतं भक्त्या कृपापाङ्गं पुरःस्थितम् ॥१२

कृष्ण उवाच–

सिद्धोऽसि भार्गवेंद्र त्वं प्रसादान्मम सांप्रतम् ।
अद्य प्रभृति वत्सास्मिँल्लोके श्रेष्ठतमो भव ॥१३
तुभ्यं वरो मया दत्तः पुरा विष्णुपदाश्रमे ।
तत्सर्वं क्रमतो भाव्यं समा बह्वीस्त्वया विभो ॥१४

जो श्री राधा इस जगत् के लय-उद्भव और स्थिति [illegible] की जनों के द्वारा समाराधित होती हैं-स्वामी के मुख से विगलित प्रेमरूपी अमृत के रसास्वाद [illegible] से स्नान कराती हैं—जो रास लीला की स्वामिनी हैं—रसिकों की ईश्वरी हैं अपने रमण कराने वाले [illegible] हृदय में निवास वाली [illegible] अपने आपको आनन्द पाने वाली वह नेत्री अर्थात् गोपीगणाधीश्वरी जिनका शुभ नाम श्री राधा कीर्तित किया जाया करता है वह अवनत मेरी की रक्षा करें ।८। जिसके गर्भ से अति विराट् स्वरूप का उद्भव हुआ [illegible] और जिसका वह विराट् स्वरूप एक अंशभूत [illegible] था—जिसकी नाभि से समुत्पन्न कमल [illegible] समुत्पन्न हुए विधाता ने जिसको एकान्त में उपदेश दिया गया था—इस स्थावर जङ्गम सम्पूर्ण विश्व की रचना की है और जिसके रोमों में ये समस्त ब्रह्माण्ड शोभित हो रहे हैं उस पूर्ण परमेश्वर को जन्म देने वाली जननी मेरे ऊपर निरन्तर प्रसन्न होवे ।९। जो इस चराचर जगत् [illegible] व्यापक विभु है और जो सत्-चित् और आनन्द [illegible] स्वरूप में स्थित होकर प्रेमान्ध श्रीराधा के [illegible] क्रीड़ा प्राप्त [illegible] वह मेरी रक्षा

करें। परम पूर्णतम परमेश्वर श्रीकृष्ण मेरे ऊपर करुणा से पसीचे हुए हृदय वाले मेरे ऊपर होवें जिससे मैं कृतार्थ हो जाऊँ और आनन्द में लीन अन्तःकरण वाला हो जाऊँ।१०। वसिष्ठजी ने कहा—इस रीति से जमदग्नि महामुनि के पुत्र परशुराम ने भगवान श्रीकृष्णचन्द्र की स्तुति करके फिर इसके पश्चात् वह विरत होकर चुप हो गए थे। वह सम्पूर्ण तत्वों के अर्थों का ज्ञाता एक सफलता प्राप्त होने वाले के ही समान परम प्रसन्न पुलकोद्गम वाला हो गया था।११। इसके अनन्तर कमलों के समान लोचनों वाले परम प्रसन्न आत्मा से युक्त होते हुए श्रीकृष्ण ने अपने आगे उपस्थित-भक्ति भावना से प्रणत तथा कृपा के पात्र भार्गव से कहा—।१२। श्रीकृष्ण बोले—हे भार्गवेन्द्र ! तुम इस समय मेरे प्रसाद (पूर्ण प्रसन्नता) से सिद्ध हो गये हो। हे वत्स ! तुम आज से लेकर इस लोक में सबसे अधिक श्रेष्ठ हो गए हो।१३। पहिले समय में विष्णु महाश्रम में मैंने आपको वर दिया था। वह सब सत्य है जिसो। क्रम से बहुत से वर्षों में पूर्ण होना चाहिए अर्थात् पूर्ण हो ही जायगा।१४।

दया विधेया दीनेषु श्रेय उत्तममिच्छता।
योगश्च साधनीयो वै शत्रूणां निग्रहस्तथा ॥१५

त्वत्समो नास्ति लोकेऽस्मिंस्तेजसा च बलेन च।
ज्ञानेन यशसा चापि सर्वश्रेष्ठतमो भवान् ॥१६

अथ स्वगृहमासाद्य पित्रोः शुश्रूषणं कुरु।
तपश्चर यथाकालं तेन सिद्धिः करस्थिता ॥१७
राधोत्संगात्समुत्थाप्य गणेशं राधिकेश्वरः।
आलिंग्य गाढं रामेण मैत्रीं तस्य चकार ह ॥१८
अथोमागपि संप्रीती तदा रामगणेश्वरौ।
कृष्णाज्ञया महाभागौ बभूवतुररिंदम ॥१९
एतस्मिन्नंतरे देवी राधा कृष्णप्रिया सती।
उभाभ्यां च वरं प्रादात्प्रसन्नास्या मुदान्विता ॥२०

राधोवाच—सर्वस्य जगतो वंद्यौ दुराधर्षौ प्रियावहौ।
मद्भक्तौ च विशेषेण भवंतौ भवतां सुतौ ॥२१

अब मेरा तुम्हारे लिए यह उपदेश है कि परम श्रेयकी अभिलाषा रखने वाले आपको जो बिचारे दीन प्राणी हैं उन पर दया करनी चाहिए। और तुमको योग की साधना करनी चाहिए तथा अपने शत्रुओं का निग्रह

भी [illegible] चाहिए ।१५। इस लोक [illegible] आपके समान अन्य कोई भी तेज-बल-[illegible] और [illegible] [illegible] समानता रखने वाला नहीं है और आप सबमें परम श्रेष्ठतम [illegible] ।१६। उसके अनन्तर आप अपने निवास गृह [illegible] पहुँचकर अपने माता-पिता की शुश्रूषा करो। और [illegible] भी समय प्राप्त हो तब तपश्चर्या करो। इससे सिद्धि आपके करतल में स्थित हो जायगी ।१७। फिर श्री-राधिका के ईश्वर ने भी राधाजी की गोद से गणेशजी को अपनी बाहुओं [illegible] स्वयं उठाकर अपने वक्षःस्थल से लगा लिया था और भली-भाँति स्नेहालिङ्गन करके फिर उनकी मित्रता परशुराम के [illegible] करादी थी ।१८। [illegible] शत्रुओं दमन करने वाले! इसके उपरान्त उस समय में भगवान श्रीकृष्ण की आज्ञा से महान भाग वाले वे दोनों ही परशुराम और गणेश बहुत प्रीति वाले हो गये थे अर्थात् उन दोनों की बहुत [illegible] गहरी प्रीतिमयी मित्रता हो गयी थी और पहिले हुआ द्वेष भाव बिल्कुल ही उनके हृदयों से निकल गया था ।१९। इसी बीच [illegible] परम सती-साध्वी श्रीकृष्ण [illegible] की प्रिया श्रीराधा देवी अधिक आनन्द से समन्वित होकर प्रसन्न मुख कमल वाली ने उन दोनों के लिए वर दिया था ।२०। श्रीराधाजी ने कहा—हे पुत्रो! [illegible] सम्पूर्ण जगत के द्वारा वन्दना करने [illegible] योग्य—असह्य तेज वाले और प्रिय कार्य का आवाहन करने वाले [illegible] [illegible] दोनों ही विशेष [illegible] [illegible] मेरे भक्त हो जावें ।२१।

भवतोर्नाम योऽभ्यार्य यत्कार्यं यः समारभेत् ।
सिद्धि प्रयातु तत्सर्वं मत्प्रसादाद्धि तस्य [illegible] ।।२२
अथोवाच जगन्माता भवानी भववल्लभा ।
वत्स राम प्रसन्नाऽहं तुभ्यं कं प्रददे वरम् ।
तं प्रब्रूहि महाभाग भयं त्यक्त्वा सुदूरतः ।
राम उवाच—
जन्मांतरसहस्रेषु येषु येषु व्रजाम्यहम् ।।२३
कृष्णयोर्मेवयोर्भक्तो भविष्यामीति देहि मे ।
अभेदेन [illegible] पश्यामि कृष्णो चापि भवौ तथा ।।२४
पार्वत्युवाच—
एवमस्तु महाभाग भक्तोऽसि भवकृष्णयोः ।

चिरंजीवी भवाशु त्वं प्रसादान्मम सुव्रत ॥२५
अथोवाच वराधीश: प्रसन्नस्तमुमापति: ।
प्रणतं भार्गवेन्द्रं तु वरार्हं जगदीश्वर: ॥२६
शिव उवाच—
रामभक्तोऽसि मे वत्स यस्तै दत्तो वरो मया ।
स भविष्यति कार्त्स्न्येन सत्यमुक्तं न चान्यथा ॥२७
अद्यप्रभृति लोकेऽस्मिन् भवतो बलवत्तर: ।
न कोऽपि भवताद्वत्स तेजस्वी च जवत्पर: ॥२८

जो कोई पुरुष आपके शुभ नाम का उच्चारण करके जो भी कुछ कार्य का समारम्भ किया करता है उसका वह कार्य मेरे प्रसाद से निश्चित रूप से सिद्धि को प्राप्त हो जाता है।२२। इसके उपरान्त भगवान भव (शिव) की वल्लभा भवानी देवी जो कि समस्त जगत को जन्म देने वाली माता है, बोली थीं। हे राम, [illegible] ! मैं तुम से बहुत प्रसन्न हूँ, मुझे तुम यह बतला दो कि तुम्हारे लिए मैं क्या वरदान दे दूँ। हे महान भाग वाले ! उसी वरदान को जो तुमको अभिलाषित हो मुझे स्पष्ट बतलाओ और इसमें सर्वथा [illegible] मत करो [illegible] भय को भी एकदम बहुत दूर हटा दो। परशुराम जी ने कहा—मैं अपने सहस्रों जन्मों में भी जिन जिन देहों में गमन करके समुत्पन्न होऊँ।२३। श्री [illegible] कृष्ण और भवानी-भव का अनन्य भक्त होऊँ यही वरदान आप मुझे [illegible] दीजिए। श्री राधा कृष्ण और भव-भवानी—इन दोनों युगलों में मैं कोई भेद भी नहीं देखूँ अर्थात् इनका एक ही स्वरूप मेरी दृष्टि में बना रहे।२४। जगदम्बा पार्वतीजी ने कहा—हे महाभाग ! इसी [illegible] से होगा। तुम तो [illegible] शंकर और श्रीकृष्ण-चन्द्र के परम भक्त हो। हे सुव्रत ! अर्थात् परम सुन्दर व्रत वाले ! मेरी कृपा के [illegible] से तुम बहुत शीघ्र चिरकाल पर्यन्त जीवित रहने वाले हो जाओ।२५। इसके पश्चात् इस वसुन्धरा के स्वामी भगवान उमापति परमाधिक प्रसन्न होकर उस राम से बोले और जगत के स्वामी ने जब देखा था कि वह भार्गवेन्द्र परशुराम उनके चरणों में [illegible] हो रहा है तथा वरदान प्राप्त करने का परम योग्य पात्र है तो उन्होंने कहा—।२६। भगवान शिव ने कहा—हे वत्स ! तुम मेरे राम के [illegible] हो—यह वरदान मैंने तुमको दिया था। वह वरदान सम्पूर्णतया कहा हुआ सत्य ही होगा और इस वरमें

अन्यथा कुछ भी नहीं होगा क्योंकि इसमें कुछ भी अन्तर न होगा।२७। ■ ! इस समस्त लोक में आज ही से आरम्भ करके आपसे अधिक बलवान कोई भी नहीं होगा और न कोई आपसे अधिक तेज के धारण करने वाला तेजस्वी ही होगा।२८।

वसिष्ठ उवाच–

अथ कृष्णोऽप्यनुज्ञाप्य शिवं च नगनंदिनीम् ।
गोलोकं प्रययौ युक्तः श्रीदाम्ना चापि राधया ॥२६
अथ रामोऽपि धर्मात्मा भवानीं च भवं तथा ।
संपूज्य चाभिवाद्याथ प्रदक्षिणमुपाक्रमीत् ॥३०
गणेशं कार्त्तिकेयं च नत्वापृच्छ्य च भूपते ।
अकृतव्रणसंयुक्तो निश्चक्राम गृहान्तरात् ॥३१
निष्क्रम्यमाणो रामस्तु नंदीश्वरमुखैर्गणैः ।
नमस्कृतो ययौ राजन्स्वगृहं परया मुदा ॥३२

वसिष्ठजी ने कहा—इसके अनन्तर भगवान श्रीकृष्ण शिव और नगराज की पुत्री को अनुज्ञापित करके श्रीराधा और श्री दामा के ■ अपने गोलोक ■ को चले गये ■।२९। इसके पश्चात् धर्मात्मा राम ने भी भगवान शिव और जगदम्बा ■ भली-भाँति अर्चन करके और अभिवादन करके इसके अनन्तर उन्होंने प्रदक्षिणा करने ■ उपक्रम किया ■।३०। हे भूपते ! फिर राम ने गणेशजी और स्वामी कार्त्तिकेय की सेवा में प्रणिपात करके तथा उनसे पूछकर उस गृह के ■ भाग से बाहिर निष्क्रमण किया था।३१। हे राजन् ! जिस वेला में राम वहाँ से बाहर निकल कर ■ रहे थे उस ■ पर नन्दीश्वर प्रभृति शिव ■ मुख्य गणों के ■ उनको प्रणाम किया गया ■ और फिर वह राम बड़ी ही ■ से अपने गृह को चले गये थे।३२।

सगरोपाख्यान (१)

वसिष्ठ उवाच–

राजन्नेवं भृगुर्विद्वान्पश्यञ्जनपदान्बहून् ।
समाजगाम धर्मात्माकृतव्रणसमन्वितः ॥१

मिलित्युः क्षत्रियाः सर्वे यत्र तत्र निरीक्ष्य तम् ।
प्रयांतं भार्गवं मार्गे प्राणरक्षणतत्पराः ॥२
अथाससाद राजेंद्र रामः स्वपितुराश्रमम् ।
शांतसत्त्वसमाकीर्णं वेदध्वनिनिनादितम् ॥३
यत्र सिंहा मृगा गावो नागमार्जारमूषकाः ।
समं चरंति संहृष्टा भयं त्यक्त्वा सुदूरतः ॥४
यत्र धूमं समीक्ष्यैव ह्यग्निहोत्रसमुद्भवम् ।
उन्नदंति मयूराश्च नृत्यंति च महीपते ॥५
यत्र सायंतने काले सूर्यस्याभिमुखं [illegible] द्विजैः ।
जलांजलीन्प्रक्षिपद्भिः क्रियते मूर्खलायिता ॥६
यत्रातिवासिभिर्नित्यं वेदाः शास्त्राणि संहिताः ।
अभ्यस्यंते मुदा युक्तैर्ब्राह्मणैर्व्रते स्थितैः ॥७

श्री वसिष्ठ महामुनि ने कहा—हे राजन् ! इस प्रकार से विहार [illegible] बहुत-से वन पर्वों का अवलोकन करते हुए [illegible] धर्मात्मा राम [illegible] गण से समन्वित होकर समागत हो गये [illegible] ।१। मार्ग में जहाँ पर भी क्षत्रिय मिले थे वे [illegible] उन परशुराम को देखकर [illegible] गये थे क्योंकि मार्ग में राम गमन करते हुए उन्हें दिखलाई पड़े थे और वे बिचारे अपने प्राणों की रक्षा में परायण होकर इधर-उधर भागे-भागे फिर रहे थे ।२। हे राजेन्द्र ! इसके पश्चात् परशुराम अपने पिता [illegible] आश्रम [illegible] पहुँच गए थे जो [illegible] परम शान्त [illegible] से घिरा हुआ था और जिसमें वेद मन्त्रों [illegible] ध्वनि गूँज रही थी ।३। [illegible] आश्रम [illegible] स्वभाव जनित वैर [illegible] भी नाम मात्र को भी नहीं था और परस्पर [illegible] निसर्ग शत्रु जीव भी जैसे सिंह और मृग [illegible] गौ-सर्प-मार्जार और मूषक भी [illegible] मिले-जुले एक साथ [illegible] करते थे और अपने स्वाभाविक शत्रुओं का भी भय दूर करके त्याग किया था ।४। हे महीपते ! जिस आश्रम [illegible] निरन्तर अग्नि होम [illegible] होते रहने से समुत्पन्न हुए धूम (धूँआ) को देखकर ही मेघावरण की भ्रान्ति से अर्थात् घने धूम के द्वारा समावृत अन्तरिक्ष को मेघाच्छन्न [illegible] मयूर बहुत प्रसन्न हो रहे थे और अपने चित्रविचित्र पिच्छों को फैला कर नृत्य कर रहे थे जहाँ पर [illegible] के समय में द्विजगण सूर्यदेव के सम्मुख [illegible] की अञ्जलियों

का प्रक्षेप [illegible] रहे थे जिस जल से सारी भूमि आविल हो गई [illegible] अर्थात् भीगकर मटमैले रङ्ग की हो रही थी ।६। जहाँ पर [illegible] शील वटु ब्रह्मचारियों के द्वारा नित्य ही वेदों-शास्त्रों और संहिताओं [illegible] अभ्यास किया [illegible] [illegible] । ये सभी छात्र परमाधिक हर्ष [illegible] समन्वित [illegible] ब्रह्मचर्य [illegible] में समाश्रित रहा करते थे ।७।

अथ रामः प्रसन्नात्मा पश्यन्नाश्रमसंपदम् ।
प्रविवेश शनै राजन्नकृतव्रणसंयुतः ॥८
जयशब्दं नमः शब्दं प्रोच्चरद्भिर्द्विजात्मजैः ।
द्विजैश्च सत्कृतो रामः परं हर्षमुपागतः ॥९
आश्रमाभ्यंतरे तत्र संप्रविश्य निजं गृहम् ।
ददर्श पितरं रामो जमदग्निं तपोनिधिम् ॥१०
साक्षाद्भृगुमिवासीनं निग्रहानुग्रहक्षमम् ।
पपात चरणोपान्ते हर्षाश्रुमालिंगितावनिः ॥११
रामोऽहं तव दासोऽस्मि प्रोच्चरन्निति भूपते ।
जग्राह चरणौ चापि विधिवत्सज्जनाग्रणीः ॥१२
अथ मातुश्च चरणावभिवाद्य कृताञ्जलिः ।
[illegible] प्रणतो वाक्यं तयोः संहर्षकारणम् ॥१३

राम उवाच—

पितस्तव प्रभावेण तपसोऽतिदुरासदः ।
कार्त्तवीर्यो हतो युद्धे सपुत्रबलवाहनः ॥१४

इसके अनन्तर [illegible] परम पुनीत [illegible] की अनिर्वचनीय विशाल विभूति का अवलोकन करने से प्रसन्न आत्मा वाले राम ने हे राजन् ! अपने पालित अकृत व्रण [illegible] सहित मन्दगति से उस [illegible] [illegible] प्रवेश किया [illegible] ।८। जैसे ही राम ने भीतर अपना पदार्पण किया [illegible] वैसे ही उनका दर्शन करके वहाँ पर स्थित द्विजों के बालकों ने जय-जयकार और नमस्कार की ध्वनियों को प्रोच्चारण किया था और विप्रों के द्वारा भार्गवेन्द्र राम [illegible] बड़ा ही अधिक सम्मान-सत्कार किया गया था । इस रीति [illegible] अपने स्वागत-समादर को देखते हुए राम को परमाधिक हर्ष हुआ था ।९। उस आश्रम के

तदग्रे निखिलः स्वीयो वृत्तान्तो विनिवेदितः ।
मया समाहितधिया स सर्वं श्रुतवानपि ॥२०
श्रुत्वा विचार्य तत्सर्वं ददौ मह्यं कृपान्वितः ।
यं त्रैलोक्यविजयं नाम कवचं सर्वसिद्धिदम् ॥२१

यह वही अधम [illegible] था । जिसने अपने परम दुष्ट मन्त्री की प्रेरणा से प्रेरित होकर आपका महान् [illegible] किया था । उस अपराध का [illegible] मेरे द्वारा उसको दे दिया गया है । हे मुनियों में परम श्रेष्ठ ! मैंने बलपूर्वक उसको दण्डित किया है । मैंने जिस रीति से अब तक जो कुछ भी किया है उसका पूर्ण विवरण क्रमानुसार मैं आपकी सन्निधि में निवेदित करता हूँ ।१५। मैंने आपको नमस्कार करके सर्वप्रथम ब्रह्माजी के समीप में गमन किया था क्योंकि समस्त सृष्टि ब्रह्मा जी के ही द्वारा हुई है । [illegible] उनको उसके निपातन से कुछ बुरा प्रतीत न हो, उनकी आज्ञा प्राप्त करना न्यायोचित एवं आवश्यक था । मैंने वहाँ जाकर उनको विधि के साथ प्रणिपात किया था और अपना समुपस्थित कार्य उनसे निवेदित कर दिया था ।१६। ब्रह्माजी ने आरम्भ से लेकर सम्पूर्ण वृत्तान्त सुना था और मुझसे कहा था । समस्त अभियगण भगवान् शिव के परम [illegible] हैं अतः अपने कार्य की सिद्धि के लिए सनातन शिवलोक में [illegible] चाहिए ।१७। हे तात ! पितामह के [illegible] [illegible] [illegible] श्रवण करके ब्रह्माजी को [illegible] करके भगवान् शिव के दर्शन की आकाङ्क्षा से फिर मैं शिवजी के लोक में गया था ।१८। हे भगवन् ! वहाँ [illegible] शिव लोक में प्रवेश करके [illegible] देवी के सहित भगवान् शिव को नमस्कार किया था । भगवान् शिव तो ऐसे देव हैं जो सबके लिए वाञ्छित अर्थ का [illegible] [illegible] दिया करते हैं ।१९। उन प्रभु के सामने मैंने अपना पूरा वृत्तान्त आवेदित कर दिया था । जो भी उनकी सेवा में निवेदित किया था उस सबको उन्होंने परम समाहित बुद्धि से उस सबका [illegible] भी किया था । उस सम्पूर्ण वृत्तान्त का श्रवण करके उन्होंने एक क्षण तक विचार किया था और फिर परमाधिक कृपा से समन्वित होकर समस्त सिद्धियों के देने वाले त्रैलोक्य विजय नाम वाला कवच मुझे उन्होंने प्रदान किया था ।२०-२१।

तल्लब्ध्वा तं नमस्कृत्य पुष्करं समुपागतः ।
तत्राहं साधयित्वा तु कवचं हृष्टमानसः ॥२२

कार्त्तवीर्यं निहत्याथो शिवलोकं पुनर्गतः ।
तत्र तौ तु मया दृष्टौ द्वारे स्कन्दविनायकौ ॥२३
तौ नमस्कृत्य धर्मज्ञ प्रवेष्टुं चोद्यतोऽभवम् ।
स मामवेक्ष्य गणपो विशन्तं त्वरयान्वितम् ॥२४
वारयामास सहसा नाद्यावसर इत्यथ ।
मम तेन पितस्तत्र वाग्युद्धं हस्तकर्षणम् ॥२५
सञ्जातपरशुक्षेमततोऽभूद्भृगुनन्दन ।
तञ्ज्ञात्वा समुद्गृह्य मामधश्चोर्द्ध्वमेव च ॥२६
करेण भ्रामयामास पुनश्चानीतवांस्ततः ।
तं दृष्ट्वातिक्रुधा क्षिप्तः कुठारो हि मया ततः ॥२७
दंतो निपतितस्तस्य ततो देव उपागतः ।
पार्वती तत्र दृष्टाऽभूत्तदा कृष्णः [illegible] ॥२८

उस कवच की सिद्धि पुष्कर तीर्थ में बतलायी थी अतएव मैंने उस को प्राप्तकर भगवान् शङ्कर को प्रणाम किया और मैं फिर उसकी सिद्धि [illegible] लिये पुष्कर में समागत हो गया [illegible] । वहाँ पर मैंने उस [illegible] की सिद्धि [illegible] कर ली थी । और उसे साधित करके मेरे मन में बड़ी प्रसन्नता हुई थी ।२२। फिर संग्राम भूमि में कार्त्तवीर्य [illegible] निपातन करके [illegible] पुनः शिव-लोक में गया था कि अपनी विजय [illegible] [illegible] प्रभु को सुनाऊँ । वहाँ पर मैंने द्वारपर [illegible] और विनायक को समवस्थित देखा ।२३। हे धर्म के [illegible] वाले भगवान् ! मैंने उन दोनों की सेवा में प्रणाम किया और [illegible] अन्दर प्रवेश करने के लिए समुद्यत हो गया [illegible] । [illegible] [illegible] में बड़ी शीघ्रता से युक्त होकर अन्दर प्रविष्ट होने वाले मुझ को देखकर गणेश जी ने रोक दिया था ।२४। उन्होंने मुझ [illegible] यही कह मुझको अन्दर प्रवेश करने [illegible] सहसा रोका [illegible] कि आपके अन्दर गमन करने [illegible] अवसर नहीं है । हे पिताजी ! उस समय में मेरा उन गणेश जी [illegible] [illegible] पहिले तो वाग्युद्ध अर्थात् अच्छी तरह से कहा सुनी हुई थी और फिर हाथों [illegible] कर्षण अर्थात् मेरा हाथ पकड़कर खींचातानी हुई थी ।२५। उस [illegible] में गणेश जी ने यह देखा कि भृगु नन्दन अपने परशु का प्रहार करने वाला हो रहा था । उन्होंने [illegible] जानकर मुझको पकड़ लिया था और ऊपर उठाकर नीचे की ओर कर दिया था ।२६।

गणेश जी ने अपने हाथ से उठाकर अच्छी तरह से ऊपर के अनेक लोकों में घुमाया था और फिर नीचे के लोकों में घुमाकर वहीं पर मुझे लाकर रख दिया था। फिर मुझको बड़ा भारी क्रोध आ गया था और मैंने अपना कुठार उनके ऊपर प्रक्षिप्त कर दिया था।२७। उस प्रहार से गणेशजी का एक बांया दाँत टूटकर भूमि पर गिर गया था। उसी समय में महादेवजी वहाँ पर आ गये थे। उस समय में पार्वतीजी ने अपने पुत्र के दाँत के टूट जाने की दुर्घटना देखी तो वे बहुत रुष्ट हो गयी थीं। उसी समय में भगवान् श्री कृष्ण भी आ गये थे।२८।

राधया सहितस्तेन सानुनीता वरं ययौ।
मातुः कृष्णो जगन्नाथ तेन मैत्रीं विधाय च ॥२६

ततः प्रणम्य देवेशौ पार्वतीपरमेश्वरौ।
आगतस्तव सान्निध्यमकृतव्रणसंयुतः ॥३०

वसिष्ठ उवाच—

इत्युक्त्वा भार्गवो रामो विरराम च भूपते।
जमदग्निस्तथैवं रामं शश्वन्निबर्हणम् ॥३१

जमदग्निरुवाच—

ब्रह्महत्याभिभूतस्त्वं तावद्दोषोपशान्तये।
प्रायश्चित्तं ततस्तावद्यथावत्कर्तुमर्हसि ॥३२

इत्युक्तः प्राह पितरं रामो मतिमतां वरः।
प्रायश्चित्तं तु तद्योग्यं त्वं मे निर्देष्टुमर्हसि ॥३३

जमदग्निरुवाच—

व्रतैश्च नियमैश्चैव कर्षयन्देहमात्मनः।
शाकमूलफलाहारो द्वादशाब्दं तपश्चर ॥३४

वसिष्ठ उवाच—

इत्युक्तः प्रणिपत्यैनं मातरं च भृगूद्वहः।
प्रययौ तपसे राजन्नकृतव्रणसंयुतः ॥३५

स गत्वा पर्वत वरं महेंद्रमरिकर्षणः।

सगरोपाख्यान (२)

वसिष्ठ उवाच—

ततः कदाचिद्विपिने चतुरंगबलान्वितः ।
मृगयामगमच्छूरः शूरसेनादिभिः सह ॥१
ते प्रविश्य महारण्यं हत्वा बहुविधान्मृगान् ।
अग्मुस्तृषार्त्ता मध्याह्ने सरितं नर्मदामनु ॥२
तत्र स्नात्वा च पीत्वा च वारि नद्या गतश्रमाः ।
गच्छंतो ददृशुर्मार्गे जमदग्नेरथाश्रमम् ॥३
दृष्ट्वाश्रमपदं रम्यं मुनीनागच्छतः पथि ।
कस्येदमिति पप्रच्छुर्भाविकर्मप्रचोदिताः ॥४
ते प्रोचुरतिभीतास्मा जमदग्नेर्महातपाः ।
वसत्यस्मिन्सुतो यस्य रामः शस्त्रभृतां वरः ॥५
तच्छ्रुत्वा वीरभूतेषां रामनामानुकीर्तनात् ।
क्रोधं महत्समुत्पन्नं पूर्ववैरमनुस्मरन् ॥६
अथ ते प्रोचुरन्योन्यं पितृहंतुर्वधात्पितुः ।
वैरं निर्यातितं किं तु करिष्यामो वयमधुना ॥७

श्री वसिष्ठ जी ने कहा—इसके उपरान्त यह हुआ था कि किसी समय में शूर शूरसेन आदि के साथ चतुरङ्गिणी सेना लेकर उसी वन में मृगया (शिकार) के लिये गया था। जिसमें पैदल-अश्व-हाथी और रथ ये सभी चारों साधन होते हैं वही चतुरङ्गिणी सेना कही जाती है।१। उन्होंने उस महान् विशाल अरण्य में प्रवेश करके बहुत-से मृगों का हनन किया था। जब मध्याह्न काल हो गया तो वे तृषा पिपासा बेचैन होकर नर्मदा नदी की ओर पहुँच गये थे।२। वहाँ पर उनने जल पान किया और स्नान किया था और अपने श्रम को दूर किया था। जब वहाँ से वे जा रहे थे तो भृगुवर जमदग्नि मुनि का आश्रम उनने देखा था।३। वह आश्रम का स्थान बहुत ही सुरम्य था। उसका अवलोकन करके उन्होंने मार्ग में आगमन करते हुए मुनिगणों से पूछा था कि यह किसका ऐसा परम सुन्दर आश्रम है। उस समय में होनहार ऐसा ही था और भविष्य में होने वाले कर्मों से वे प्रेरित

हो गये थे ।४। उन मुनिजनों ने उस नृप से कहा था कि इस आश्रम में अत्यन्त ही प्रशान्त आत्मा वाले और महान् तपस्वी जमदग्नि मुनि निवास किया करते हैं जिनके पुत्र [illegible] धारियों में परम श्रेष्ठ परशुराम [illegible] ।५। [illegible] श्रवण करके परशुराम जी के नाम के अनुकीर्त्तन [illegible] पहिले तो सुनने के [illegible] ही उनके हृदय [illegible] बड़ा भारी भय उत्पन्न हो गया था किन्तु फिर क्रोध को सहन करके उनको परशुराम की बड़ी भारी क्रूरता के [illegible] किये हुए पूर्व वैर का अनुस्मरण हो गया था ।६। इसके अनन्तर उन्होंने एक दूसरे से आपस में कहा था कि इन्होंने तो हमारे पिता का वध किया था तो ऐसे पिता के हनन करने वाले के पिता का वध [illegible] समय में [illegible] करके हम सब इस रीति से अपने वैर [illegible] बदला अवश्य निकालेंगे ।७।

इत्युक्त्वा खड्गहस्तास्ते संप्रविश्य तदाश्रमम् ।
प्रजघ्निरे प्रयातेषु मुनिवीरेषु सर्वतः ॥८
तं हत्वाऽस्य शिरो हृत्वा निषादा इव निर्दयाः ।
प्रययुस्ते दुरात्मानः सबलाः स्वपुरीं प्रति ॥९
पुत्रास्तस्य महात्मानो दृष्ट्वा स्वपितरं हतम् ।
परिवार्य महाराज रुरुदुः शोककर्शिताः ॥१०
भर्त्तारं निहतं भूमौ पतितं वीक्ष्य रेणुका ।
पपात मूर्च्छिता सद्यो लतेवाशनिताडिता ॥११
सा स्वचेतसि संमूढं शोकपावकदीपितान् ।
दूरभग्नहृदसंज्ञेव [illegible] प्राणैर्व्यमुच्यत ॥१२
अनालपन्त्यां तस्यां तु संज्ञां याता हि ते पुनः ।
न्यपतन्मूर्च्छिता भूमौ निमग्नाः शोकसागरे ॥१३
ततस्तपोधना येऽन्ये तत्तपोवनवासिनः ।
समेत्याश्वासयामासुस्तुल्यदुःखाः सुतान्मुनेः ॥१४

इतना कहकर वे [illegible] करों में खड्ग लेकर उस आश्रम के अन्दर प्रविष्ट हो गये थे और सभी ओर से गमनागमन करने वाले मुनियों का हनन किया था ।८। फिर उनने जमदग्नि मुनि का हनन कर दिया था और दया से रहित निषादों के ही समान उस जमदग्नि का मस्तक काटकर हरण कर लिया था। वे महान् [illegible] [illegible] वाले अपनी सेना [illegible] सहित

अपनी नगरी की ओर चले गये थे।९। हे महाराज ! [illegible] महामुनि जमदग्नि के जो अन्य पुत्र थे वे परम साधु प्रकृति से सुसम्पन्न महान् आत्मा वाले [illegible] ही थे जब उन्होंने देखा कि उनके पिता [illegible] बड़ी निर्दयता से हनन [illegible] किया गया है तो उस मृत पिता के [illegible] के चारों बैठकर महान शोक से उत्पीड़ित होते हुए [illegible] करने लग गये [illegible]।१०। अपने [illegible] स्वामी को निहत और भूमि पर पड़े हुए देखकर मुनि पत्नी रेणुका देवी तुरन्त ही भूमि पर पछाड़ खाकर झञ्झावात से गिरी हुई कोमल लता के ही समान मूच्छित होकर गिर गयी थी।११। उसके मन में मूर्च्छा आ गयी थी और उसको अपने देह का अनुसन्धान नहीं रहा था। वह शोक की अग्नि से दीपित हो गयी थी। वह बहुत अधिक संज्ञा [illegible] हीन [illegible] समान ही होकर तुरन्त ही अपने प्रिय प्राणों से वियुक्त हो गयी थी अर्थात् उसके प्राण पखेरू तुरन्त ही उड़ गए थे।१२। [illegible] उसके पुत्रों ने देखा कि वह कुछ भी नहीं बोल रही है तो फिर उनको होश आया था और अपनी माता का मृत शरीर देखकर वे सभी शोक के अगाध सागर में निमग्न होते हुए मूच्छित होकर भूमि में पछाड़ [illegible] गिर गये थे।१३। [illegible] ऐसा शोक [illegible] वहाँ कहा हाहाकार मच गया तो जो अन्य तप [illegible] हो [illegible] वाले तपस्वी गण [illegible] जो कि उसी तपोवन में निवास करने वाले [illegible] मुने ! उन सबको भी उन मुनि पति-पत्नियों [illegible] वियोग से [illegible] ही दुःख हो रहा था और [illegible] वहीं पर इकट्ठे हो गये थे तथा रेणुका के पुत्रों को समाश्वासन दिया था।१४।

सान्त्व्यमाना मुनिगणैर्जमदग्न्या यथाविधि ।
आशुशुर्वक्षसा तेषामग्नौ पित्रोः कलेवरे ॥१५
चक्रुरेव तदूर्ध्वं वै यत्कर्त्तव्यमनंतरम् ।
पित्रोर्मरणदुःखेन पीड्यमाना दिवानिशम् ॥१६
तत काले गते रामः समानां द्वादशावधौ ।
निवृत्तस्तपसः [illegible] सहागादाश्रमं पितुः ॥१७

समस्त समागत मुनिगणों के द्वारा [illegible] अच्छी तरह से उन पुत्रों को [illegible] दी गयी थी तो जमदग्नि के उन मुनियों के कहने से अपने माता-पिता के शवों का कर्मकाण्ड के अनुसार अग्नि में दाह कर दिया था।१५। अन्त्येष्टि के अनन्तर फिर जो भी करने के योग्य ऊर्ध्व [illegible] कलाप था उस

सबको भी पूर्णतया सम्पन्न किया था। ये सभी जमदग्नि के आत्मज अपने दोनों ही माता-पिता के मरण के असह्य दुःख से रात दिन पीड़ित होते हुए रहा करते थे।१६। इसके अनन्तर कुछ काल के व्यतीत हो जाने पर जबकि बारह वर्षों की अवधि पूर्ण हो गयी थी तो अपनी तपश्चर्या से निवृत्त होकर राम अकृत व्रण के साथ अपने पिता श्री में आये ▮।१७।

क्षत्रिय वंश नाश प्रतिज्ञा

वसिष्ठ उवाच—

स गच्छन्पथि शुश्राव मुनिभ्यस्तत्त्वमादितः।
राजपुत्रव्यवसितं पित्रोः स्वर्गतिमेव च ॥१
पितुस्तु जीवहरणं शिरोहरणमेव च।
तन्मृतेरेव मरणं श्रुत्वा मातुश्च केवलम् ॥२
विललाप महाबाहुर्दुःखशोकसमन्वितः।
समाश्वासयामास तुल्यदुःखोऽकृतव्रणः ॥३
हेतुभिः शास्त्रनिर्दिष्टैर्वीर्यसामर्थ्यसूचकैः।
युक्तिलौकिकदृष्टान्तैस्तच्छोकं संव्यशामयत् ॥४
सान्त्वितस्तेन मेधावी धृतिमालंब्य भार्गवः।
प्रययौ सहितः सख्या भ्रातॄणां तु दिदृक्षया ॥५
स तान् दृष्ट्वाभिवाद्यैतान् भार्गवो दुःखकर्षितः।
शोकामर्षयुतस्तैश्च सह तस्थौ दिनत्रयम् ॥६
ततोऽस्य सुमहान्क्रोधः स्मरतो निधनं पितुः।
बभूव सहसा सर्वलोकसंहरणक्षमः ॥७

श्री महामुनीन्द्र वसिष्ठजी ने कहा—परशुराम ने मार्ग में ▮ करते हुए मुनि मण्डल से आरम्भ से सब तत्त्व सुन लिया था अर्थात् वहाँ पर किस तरह से ▮ घटनाएँ हुईं थीं यह श्रवण कर लिया था। उनको यह भी ज्ञात हो गया था कि उन महान् दुष्ट राज पुत्रों ने यह कुचेष्टाएँ ▮ थीं और उनके द्वारा पिता की मृत्यु तथा शोक में माता का देहान्त हो ▮ है

।१। अपने पिताजी के जीवन [illegible] हरण और उनके सिर को काटकर ले जाने का समाचार भी उन्होंने जानकर यह भी उनको [illegible] हो गया था कि उनकी माताजी का मरण पिताजी की मृत्यु हो जाने ही से शोकोद्रेक वश हो गयी थी ।२। वह महाबाहु को बड़ा भारी शोक और असह्य दुःख हुआ था । इससे वे राम बहुत अधिक विलाप करने लग गये थे । यद्यपि अकृत [illegible] को भी परशुराम के ही समान दुःख हुआ [illegible] किन्तु फिर भी उसने राम को बहुत कुछ समाश्वासन दिया [illegible] ।३। वीर्य [illegible] सामर्थ्य [illegible] सूचक शास्त्रों में निर्दिष्ट किये गए हेतुओं के द्वारा और युक्तियों से [illegible] लोक में होने वाले अनेक दृष्टान्तों के द्वारा परशुराम जी के उस महान शोक को अकृत व्रण ने शमित कर दिया था ।४। उस अकृत व्रण के द्वारा सान्त्वना दिए गए परशुराम ने धैर्य का अवलम्बन किया था क्योंकि वह बहुत अधिक मेधावी थे । इसके अनन्तर परशुरामजी अपने [illegible] अकृत [illegible] [illegible] साथ अपने भाइयों के देखने की [illegible] से अपने गृह की ओर [illegible] दिये थे ।५। वहाँ पर भार्गव ने जाकर अभिवादन किया था और इन सबको परम दुःखित देखकर परशुरामजी को भी अत्यधिक दुःख हुआ था । उन सबके साथ में पुनः उस शोक [illegible] नवीनीकरण हो गया था और परम शोक में मग्न होकर वह वहाँ तीन दिन तक स्थित रहे थे ।६। इसके अनन्तर अपने पिता श्री के निधन का स्मरण करते हुए उनको महान क्रोध उत्पन्न हो गया था और तुरन्त ही वह सम्पूर्ण शोक [illegible] संहार कर देने में समर्थ हो गये थे ।७।

मातुरर्थे कृता पूर्वं प्रतिज्ञा सत्यसंगरः ।
स्वीचकार हृदये सर्वक्षत्रवधोद्यतः ॥८
क्षत्रवंश्यानशेषेण हत्वा तद् हृल्लोहितैः ।
करिष्ये तर्पणं पित्रोरिति निश्चित्य भार्गवः ॥९
भ्रातृणां चैव सर्वेषामाख्यायात्मसमीहितम् ।
प्रययौ तदनुज्ञातः कृत्वा संस्था पितुः क्रियाम् ॥१०
अकृतव्रणसंयुक्तः प्राप्य माहिष्मतीं ततः ।
तद्बाह्योपवने स्थित्वा सस्मार [illegible] महोदरम् ॥११
स तस्मै रथचापाद्यं सहसा श्वसमन्वितम् ।
प्रेषयामास रामाय सर्वसंहननानि च ॥१२

रामोऽपि रथमारुह्य सन्नद्धः समरं प्रभुः ।
गृहीत्वापूरयच्छंखं रुद्रदत्तममित्रजित् ॥१३
ज्याघोषं च चकारोच्चैं रोदसी कंपयन्निव ।
सहसाह्नोथ सारथ्यं चक्रे सारथिना वरः ॥१४

माता रेणुका ने अपने पति के वियोग में विलाप करते हुए इक्कीस बार अपने वक्षःस्थल को पीटा ■■ अतः परशुरामजी ने उसी समय में यह प्रतिज्ञा की थी कि मेरे पिता को क्षत्रिय जातीय नृप ने निहत किया है इसलिए मैं भी इक्कीस बार भूमण्डल को संहार करके क्षत्रियों ■ रहित कर दूँगा—माता ■ लिए की हुई ■■ प्रतिज्ञा को सत्यवादी किया था ।८। ने समस्त क्षत्रियों ■ वध करने के लिये समुद्यत होकर हृदय में सुदृढ़ मत भार्गवेन्द्र ने ऐसा निश्चय कर लिया ■■ कि क्षत्रियों ■ वंश में समुत्पन्न सबका निहनन करके उनके शरीरों के रुधिर ■ ■ अपने माता-पिता का तर्पण करूँगा ।९। अपने समस्त भाइयों ■ ■■ अपना समीहित ■■■ संकल्प कहकर अपने पिताजी ■■ सञ्चित क्रिया को पूर्ण करके भाइयों की आज्ञा ■■■ करके परशुराम चले गये ■ ।१०। फिर अकृतव्रण को साथ में लेकर माहिष्मती नगरी ■ स्थित होकर उन्होंने महोदर (श्रीगणेश जी) का स्मरण किया ■■ ।११। उन्होंने तुरन्त ही राम के लिए रथ-चाप आदि सभी आयुधों तथा अश्वों आदि को भेज दिया था ।१२। फिर परशुराम प्रभु भी उस ■■ पर समारूढ़ होकर सन्नद्ध हो गये थे और शत्रुओं पर विजय पाने वाले ने शरके सहित धनुष ■■ ■■■ कर लिया था तथा भगवान रुद्र के द्वारा प्रदत्त शंख की ध्वनि करके उससे सम्पूर्ण भाग को पूरित कर दिया था ।१३। अपने धनुष की प्रत्यंचा की टंकार से अन्तरिक्ष और भूमण्डल को प्रकम्पित करते हुए बड़ा ही उच्च घोष किया था । सारथियों में परम ■■ सहसाह्न ने उनके रथ ■■ सारथि होने ■■ कार्य ग्रहण किया था ।१४।

रथज्याशंखनादैस्तु तथास्त्रिशोरकम्पिणः ।
तस्याभून्नगरी सर्वा संक्षुब्धाश्च नरद्विपाः ॥१५
रामं त्वागतमाज्ञाय सर्वक्षत्रकुलांतकम् ।
संक्षुब्धाश्चक्रुरुद्योगं संग्रामाय नृपात्मजाः ॥१६
अथ पंचरथाः शूराः शूरसेनादयो नृप ।

ततस्ते भग्नसंकल्पा हतस्यन्दनवाहनाः ।
हतशिष्टा नृपतयो दुद्रुवुः सर्वतो दिशम् ॥२२

एवं विद्राव्य सैन्यानि हत्वा जित्वाथ संयुगे ।
जघान शतशो राज्ञः क्रूरान्शरवराग्निना ॥२३

ततः क्रोधपरीतात्मा दग्धुकामोऽखिलां पुरीम् ।
उदैरयद्भार्गवोऽस्त्रं कालाग्निसदृशप्रभम् ॥२४

ज्वालाकवलिताशेषपुरप्राकारमालिनीम् ।
पुरीं सहस्त्यश्वनरां स ददाहास्त्रपावकः ॥२५

दह्यमानां पुरीं दृष्ट्वा प्राणत्राणपरायणः ।
जीवनाय जगामाशु वीतिहोत्रो भयातुरः ॥२६

अस्त्राग्निना पुरीं सर्वां दग्ध्वा हत्वा [illegible] णामथान् ।
प्राणयामोऽखिलान् लोकान् साक्षात्काल इवान्तकः ॥२७

अक्षतव्रणसंयुक्तः सहसाहेन चान्वितः ।
जगाम रथघोषेण कंपयन्निव मेदिनीम् ॥२८

इसके अनन्तर वे समस्त नृप भग्न सङ्कल्प वाले हो गये थे और उनके सैनिक तथा [illegible] [illegible] हाथी घोड़े आदि नष्ट हो गये थे। जो भी नृप हनन करने से बच गये थे वे भय [illegible] भीत होकर [illegible] दिशाओं [illegible] और इधर-उधर भाग गये।२२। इस रीति से सम्पूर्ण सेना के सैनिकों को खदेड़ कर तथा हनन करके भार्गवेन्द्र ने युद्ध में विजय प्राप्त की थी और अपने बाणों की अग्नि [illegible] द्वारा सैकड़ों क्रूर नृपों [illegible] वध कर दिया था।२३। फिर महान् क्रोध से भरी हुई आत्मा वाले परशुराम ने [illegible] पुरी को दग्ध करने की इच्छा की थी [illegible] भार्गव ने कालाग्नि अपने [illegible] को छोड़ दिया [illegible] ।२४। उस अस्त्र की अग्नि ने उस नगरी को जिसमें सभी हाथी-घोड़े और मनुष्य थे जला दिया [illegible] और वह पुरी अस्त्राग्नि के जल कर ज्वालाओं [illegible] उसके पुरप्राकार आदि की माला [illegible] कवलित हो गयी थी अर्थात् उस महान् प्रदीप्त अग्नि ने सबको स्वाहा कर दिया था और वहाँ पर कुछ भी शेष नहीं रहा [illegible] ।२५। [illegible] [illegible] पुरी को जलती हुई देखकर अपने प्राणों की रक्षा में तत्पर वीतिहोत्र भय [illegible] आतुर होकर वहाँ से जीवन के परित्राण

करने के लिये शीघ्र ही चला गया था ।२६। अपनी अस्त्र की अग्नि से सम्पूर्ण नगरी को जलाकर तथा शत्रुओं का हनन करके उस समय में धार्मेन्द्र राम समस्त लोकों का विनाश करते हुए साक्षात् अन्त के देने वाले काल की ही भाँति हो गये थे ।२७। फिर अकृतव्रण के सहित और सहसाह से समन्वित होकर अपने रथ के महान् घोष से सम्पूर्ण पृथ्वी को कम्पित करते हुए वहाँ से गये थे ।२८।

विनिघ्नन् क्षत्रियान्सर्वान् संशाम्य पृथिवीतले ।
महेंद्राद्रिं ययौ रामस्तपसे धृतमानसः ।।२९
तस्मिन्नक्षचतुष्कं च यावत्क्षत्रसमुद्भवम् ।
प्रत्येत्य भूयस्तद्धत्यै बद्धदीक्षो धृतव्रतः ।।३०
क्षत्रक्षेत्रेषु भूयश्च क्षत्रमुत्पादितं द्विजैः ।
निजघान पुनर्भूमौ रामः शतसहस्रशः ।।३१
वर्षद्वयेन भूयोऽपि कृत्वा निःक्षत्रियां महीम् ।
षट्चतुष्टयवर्षान्तं तपस्तेपे पुनश्च सः ।।३२
भूयोऽपि राजसंबुद्धं क्षत्रमुत्पादितं द्विजैः ।
जघान भूमौ निःशेषं साक्षात्काल इवांतकः ।।३३
कालेन तावता भूयः समुत्पन्नं नृपान्वयम् ।
निर्व्वंशमकार पृथिवीं वर्षद्वयमथान्तरम् ।।३४
अलं रामेण राजेंद्र स्मरता निधनं पितुः ।
त्रिःसप्तकृत्वः पृथिवी तेन निःक्षत्रिया कृता ।।३५

इस पृथ्वी तल पर क्षत्रियों का निहनन करते हुए पूर्णतया इस भूमि पर शान्ति स्थापित करके फिर भार्गव राम तपश्चर्या करने के लिये मन में निश्चय करके महेन्द्र पर्वत पर वहाँ से चले गये थे ।२९। उसमें जितना भी क्षत्रियों का समुद्भव था वह बारह थे उनके प्रति भी आकर फिर उनके हनन करने के वास्ते व्रत धारण करने वाले परशुराम बद्ध दीक्षा वाले हो गये थे ।३०। और द्विजों ने क्षत्रियों के क्षेत्रों में फिर क्षत्रियों का उत्पादन कर दिया था । जब परशुरामजी को क्षत्रियों की उत्पत्ति का ज्ञान हुआ कि अभी और भी क्षत्रिय समुत्पन्न हो गये हैं तो पुनः उन्होंने सैकड़ों और

सहस्रों क्षत्रिय नृपों का भूमि पर हनन कर दिया [illegible] ।३१। फिर भी [illegible] वर्षों [illegible] भूमि को क्षत्रियों का वध करके क्षत्रियों से रहित [illegible] दिया था और फिर दश [illegible] के लम्बे [illegible] तक [illegible] का तपन किया [illegible] ।३२। हे राजन् ! जब फिर भी उनको यह ज्ञान हुआ था [illegible] ब्राह्मणों ने क्षत्रियों को अपने तपोबल से समुत्पन्न कर दिया है तो फिर भी उन्होंने साक्षात् विनाश करने वाले काल के ही समान इस भूमण्डल [illegible] क्षत्रियों को मार-काटकर समाप्त कर दिया था ।३३। उसमें [illegible] में फिर क्षत्रिय लोग समुत्पन्न हो गये थे तब दो वर्ष पर्यन्त निरन्तर पृथ्वी पर उन सबका हनन करते भार्गवेन्द्र ने किया था ।३४। हे राजेन्द्र ! अपने पिताजी के क्षत्रियों [illegible] द्वारा निधन का स्मरण करते हुए पूर्ण रूप से उन्होंने इक्कीस बार [illegible] भूमि [illegible] इसी रीति से क्षत्रियों से रहित कर दिया था। उनकी माता रेणुका ने अपने पति के वियोग के शोक [illegible] रुदन करते हुए इक्कीस बार अपने वक्षःस्थल को करों से प्रताड़ित किया था उतनी ही बार परशुरामजी ने इस भूमण्डल क्षत्रियों से रहित कर दिया था ।३५।

— x —

॥ [illegible] कथन वर्णन ॥

वसिष्ठ उवाच–

ततो मूर्द्धाभिषिक्तानां राज्ञाममिततेजसाम् ।
षट्सहस्रद्वयं रामो जीवग्राहं गृहीतवान् ॥१

ततो राजसहस्राणि गृहीत्वा मुनिभिः सह ।
स जगाम महातेजाः कुरुक्षेत्रं तपोमयम् ॥२

सरसी पंचकं तत्र खानयित्वा भृगूद्वहः ।
सुखावगाहतीर्थानि तानि चक्रे समन्ततः ॥३

जघान तत्र वै राज्ञः शरीरप्रभवासृजा ।
सरांसि तानि वै पंच पूरयामास भार्गवः ॥४

स्नात्वा तेषु यथान्यायं जामदग्न्यः प्रतापवान् ।
पितॄन्संतर्पयामास यथावत्स्वमतंद्रितः ॥५

पितुः प्रेतस्य राजेंद्र श्राद्धादिकमशेषतः ।
ब्राह्मणैः सह मातुश्च तत्र चक्रे यथोदितम् ॥६
एवं तीर्णप्रतीकः स कुरुक्षेत्रे तपोमये ।
उवासातंद्रितः सम्यक् पितृपूजापरायणः ॥७

श्री वसिष्ठ जी ने कहा—इसके अनन्तर अपरिमित तेज वाले मूर्द्धाभिषिक्त अर्थात् सर्व शिरोमणि बारह सहस्र राजाओं का परशुरामजी ने जीवनों का ग्रहण किया था अर्थात् मार गिराया था ।१। इसके अनन्तर एक सहस्र राजाओं को पकड़ कर मुनियों के ▬ महान् तेजस्वी वे परशुराम जी तपोमय कुरुक्षेत्र में गमन कर गये थे ।२। भृगुश्रेष्ठ ने वहाँ पर पाँच सरोवर खुदवा कर उनको ▬ और परम पुण्य का आवाहन करने वाले तीर्थ कर दिया था ।३। वहीं पर उन सहस्र नृपों ▬ हनन किया था और उनके शरीरों से निकले हुए रुधिर से भार्गव ने उन पाँचों सरोवरों को भर दिया था ।४। परमाधिक प्रतापी जमदग्नि ▬ पुत्र ने न्यायानुसार ▬ सरोवरों में स्नान किया ▬ और तन्द्रा से रहित होकर शास्त्रोक्त विधान से अपने पितरों को तृप्त किया था अर्थात् पितृगणों के लिए तर्पण किया था ।५। हे राजेन्द्र ! वहीं पर परशुरामजी ने जैसा भी शास्त्र में कहा गया है वहीं ब्राह्मणों के साथ रहकर अपने मृत पिता का और माता ▬ श्राद्ध आदि पूर्ण रूप से सुसम्पन्न किया था ।६। इस रीति से पितृऋण ▬ उत्तीर्ण होने वाले उन्होंने ▬ तप से परिपूर्ण कुरुक्षेत्र में पितृगणों की अर्चना में तत्पर होते हुए अतन्द्रित रहकर भली भाँति निवास किया था ।७।

ततः प्रभृत्य भूद्राजंस्तीर्थानामुत्तमोत्तमम् ।
विहितं जामदग्न्येन कुरुक्षेत्रे तपोवने ॥८
स्यमंतपंचकमिति स्थानं त्रैलोक्यविश्रुतम् ।
यत्र चक्रे भृगुश्रेष्ठः पितॄणां तृप्तिमक्षयाम् ॥९
स्नानदानतपोहोमद्विजभोजनतर्पणैः ।
भृशमाप्यायितास्तेन यत्र ते पितरोऽखिलाः ॥१०
अवापुरक्षयां तृप्तिं पितृलोकं च शाश्वतम् ।
समंतपंचकं नाम तीर्थं लोके परिश्रुतम् ॥११

सर्वपापक्षयकरं महापुण्योपबृंहितम् ।
मर्त्यानां यत्र यातानामेनांसि निखिलानि तु ॥१२
दूरादेवापयास्यंति प्रवाते शुष्कपर्णवत् ।
तत्क्षेत्रचर्यागमनं मर्त्यानामसतामिह ॥१३
न लभ्यते महाराज जातु जन्मशतैरपि ।
समंतपंचकं तीर्थं कुरुक्षेत्रेऽतिपावनम् ॥१४

इसके पश्चात् हे राजन् ! तपश्चर्या करने ■ उस वन कुरुक्षेत्र में जमदग्नि के पुत्र के द्वारा किया हुआ यह कुरु क्षेत्रधाम तभी से आरम्भ करके तीर्थों से सबसे परम श्रेष्ठ तीर्थ ■ गया ■ ।८। यह स्थान स्यमन्तक—इस नाम से तीनों लोकों ■ प्रख्यात हो गया था । क्योंकि यहाँ पर परशुरामजी ने अपने पितृगणों की ■ तृप्ति की थी ।९। वहाँ पर उन्होंने पितरों को बहुत ही अच्छी तरह से स्नान-दान-जप-होम-विप्रों ■ लिए भोजन और तर्पण आदि के द्वारा सन्तृप्त कर दिया था ।१०। और पितृगणों के लोक मे निरन्तर अक्षय तृप्ति प्राप्त की थी । स्यमन्तक नाम वाला तीर्थ लोक से परिभूत ■ ।११। यह तीर्थ समस्त पापों के क्षय का करने वाला है और महान पुण्य से उपबृंहित है । जहाँ पर समागत हुए मनुष्यों के सम्पूर्ण से उपबृंहित है । जहाँ पर समागत ■ मनुष्यों के सम्पूर्ण पाप दूर से ही वायु में शुष्क पत्तों की ही भाँति अपगत हो जाता करते हैं । मनुष्यों ■ जो असत् ■ उनकी चर्या तथा ■ बड़ी ही कठिनाई से प्राप्त हुआ करता है । यह ■ महाराज ! कभी भी सौ में जन्मों भी प्राप्त नहीं करता है । स्यमन्तक पंचक तीर्थ कुरुक्षेत्र में बहुत ही अधिक पावन ■ ।१२-१४।

यत्र स्नातः सर्वतीर्थैः स्नातो भवति मानवः ।
कृतकृत्यस्ततो राम: सम्यक् पूर्णमनोरथः ॥१५
उवास तत्र नियतः कंचित्कालं महामतिः ।
ततः संवत्सरस्यांते ब्राह्मणैः सहितो वशी ॥१६
पितृपिंडप्रदानाय जामदग्न्योऽगमद्गयाम् ।
ततो गत्वा ततः श्राद्धं यथाशास्त्रमरिंदमः ॥१७

ब्राह्मणांस्तर्पयामास पितॄनुद्दिश्य सत्कृतान् ।
श्रैवं तत्र परं स्थानं चन्द्रपादमिति स्मृतम् ॥१८
पितृतृप्तिकरं श्रेयं नाऽन्यल्लोके न विद्यते ।
यत्रार्चिताः स्वकुलजैर्यथाशक्ति मनागपि ॥१९
पितरः पिण्डदानाद्यैः प्राप्स्यंति गतिमक्षयाम् ।
पितॄनुद्दिश्य तत्रासौ तर्पितेषु द्विजातेषु ॥२०
ददौ च विधिवत्पिण्डं पितृभक्तिसमन्वितः ।
ततस्तत्पितरः सर्वे पितृलोकादुपागताः ॥२१

यह तीर्थ ऐसा महिमामय है कि जहाँ पर स्नान कर लेने वाला मनुष्य संसार के समस्त तीर्थों के [illegible] पुण्य फल प्राप्त कर लेने वाला हो जाता है। इसके अनन्तर राम अपने सब कृत्यों को पूर्ण कर लेने वाले सफल तथा सभी भाँति पूर्ण मनोरथों वाले हो गये थे।१५। फिर वे महती मति वाले नियत होकर कुछ काल [illegible] निवासी हो गये थे। फिर सम्वत्सर के [illegible] में सभी ब्राह्मणों के सहित पितृगणों के लिए पिण्ड समर्पित करने के लिये जमदग्नि के पुत्र गया गये थे। वहाँ पर जाकर शत्रुओं के [illegible] करने वाले ने शास्त्र की पद्धति के ही अनुसार [illegible] किया [illegible]।१६-१७। उन्होंने [illegible] से अपने पितृगणों [illegible] उद्देश्य ग्रहण करके ब्राह्मणों का सत्कार किया था और उनको संतृप्त किया था। उसके आगे शैव स्थान [illegible] जो चन्द्रपाद नाम से कहा गया है।१८। पितृगणों [illegible] तृप्ति करने [illegible] उसके समान लोक [illegible] अन्य कोई भी श्रेय नहीं है। यह ऐसा स्थान [illegible] जहाँ पर अपने कुल में समुत्पन्न मानवों के द्वारा शक्ति के अनुसार अत्यल्प रूप [illegible] भी अर्चित हुए पितृगण पिण्ड दानादिक के द्वारा अक्षय गति को प्राप्त [illegible] होंगे। वहाँ पर पितृगणों का उद्देश्य लेकर द्विजातियों को तृप्त किया था। जब [illegible] पूर्णतया तृप्त हो गये थे तो पितृगण के प्रति भक्तिभाव [illegible] समन्वित होकर विधि पूर्वक पिण्डदान किया था। इसके अनन्तर सभी पितृलोक से वहाँ [illegible] उपागत हो गये थे।१९-२१।

जगृहुस्तत्कृतां पूजां जमदग्निपुरोगमाः ।
अथ संप्रीतमनसः समेत्य भृगुनंदनम् ॥२२
ऊचुस्तत्पितरः सर्वेऽदृश्या भूत्वान्तरिक्षगाः ।

पितर ऊचु :—

महत्कर्म कृतं वीर भवताऽन्यैः सुदुष्करम् ॥२३
अस्मानपि यथान्यायं सम्यक् तर्पितवानसि ।
अस्माकमक्षयां प्रीतिं तथापि त्वं न यच्छसि ॥२४
क्षत्रहत्यां हि कृत्वा तु कृतकर्माभवत्ततः ।
क्षेत्रस्यास्य प्रभावेण भक्त्या च [illegible] दर्शनम् ॥२५
प्राप्ताः [illegible] पूजिताः किं तु नाक्षय्यफलभागिनः ।
तस्मात्त्वं वीरहत्यादिपापप्रशमनाय हि ॥२६
प्रायश्चित्तं यथान्यायं कुरु धर्मं च शाश्वतम् ।
यथाच्च विनिवर्तस्व क्षत्रियाणामतः परम् ॥२७
पितुर्न्न तेऽपराध्यंते न स्वतंत्रं यतो जगत् ।
तन्निमित्तं तु मरणं पितुस्ते विहितं पुरा ॥२८

जमदग्नि जिनमें अग्रगामी थे ऐसे उन [illegible] पितृगणों ने वहाँ पर आकर उसके द्वारा [illegible] गयी पूजा [illegible] ग्रहण किया [illegible] और वे सब भृगुनन्दन पर बहुत अधिक प्रसन्न मन वाले हो गये [illegible] ।२२। उन समस्त पितृगणों ने आकाश में स्थित होते हुए अदृश्य होकर ही उससे कहा था । पितृगण ने कहा—हे वीर ! तुमने बहुत ही बड़ा कार्य किया है जो कि [illegible] जनों के द्वारा कभी भी नहीं हो सकता [illegible] अर्थात् महान् कठिन [illegible] ।२३। आपने न्याय पूर्वक बहुत ही अच्छी तरह से सन्तृप्त किया [illegible] तो भी हमारी कभी क्षीण [illegible] होने वाली प्रीति तुमने हमको नहीं दी है ।२४। कारण यह है कि आपने समस्त क्षत्रियों की हत्या करके ही [illegible] कर्म करने वाले हुए हैं । [illegible] तो इस क्षेत्र का ही [illegible] है कि हमने आपको दर्शन दिया है तथा भक्ति भी इसका एक कारण है ।२५। हम लोग यहाँ पर पूजित तो [illegible] हुए [illegible] किन्तु फिर भी [illegible] [illegible] के भागी नहीं हुए हैं । इस कारण से आपको [illegible] महान् पाप के निवारण करने के लिये कुछ अवश्य ही कुछ [illegible] ही होगा जो कि बड़े-बड़े वीरों की हत्या के [illegible] के लिये होना चाहिए ।२६। [illegible] आपका कर्त्तव्य है कि न्याय के अनुरूप इसका प्रायश्चित करो और निरन्तर रहने वाला धर्म [illegible] कर्म करो । तथा इससे आगे भविष्य में क्षत्रियों [illegible] वध करने [illegible]-कार्य से दूर हो जाओ । अर्थात् क्षत्रियों की हत्या

करना बन्द कर दो।२७। इन विचारों के द्वारा तुम्हारे पिता का कोई भी अपराध नहीं किया गया है क्योंकि यह जगत् स्वतन्त्र नहीं है अर्थात् जगत् के प्राणी स्वेच्छा से ही कर्मों के करने ■ कभी भी स्वतन्त्र नहीं हुआ करते हैं। पहिले आपके पिता ■ जो मरण हुआ है उसके यह कोई भी निमित्त नहीं ■ क्योंकि स्वाधीनता किसी ■ भी कर्मों के करने की हुआ ही नहीं करती है।२८।

हंतुं कं कः समर्थः स्याल्लोके रक्षितुमेव वा।
निमित्तमात्रमेवेह सर्वः सर्वस्य चैतयोः ॥२९
ध्रुवं कर्मानुरूपं ते चेष्टंते सर्व एव हि।
कालानुवृत्तं बलवान्मुलोको नात्र संशयः ॥३०
बाधितुं भुवि भूतानि भूतानां न विधिं विना।
शक्यते वस्स सर्वोऽपि यतः शक्त्या स्वकर्मकृत् ॥३१
अमं प्रति ततो रोषं विमुच्याश्मत्रिवेप्सया।
शममाप्नुहि भद्रं ते स ह्यस्माकं परं बलम् ॥३२
वसिष्ठ उवाच—
इत्युक्त्वांतर्दधुः सर्वे पितरो भृगुमन्दमम्।
स चापि तद्वचः सर्वं प्रतिजग्राह सादरम् ॥३३
अकृतव्रणसंयुक्तो मुदा परमया युतः।
प्रययौ च तदा रामस्तस्मात्सिद्धवनाश्रमम् ॥३४
तस्मिन्स्थित्वा भृगुश्रेष्ठो ब्राह्मणैः सहितो नृप।
तपसे धृतसंकल्पो बभूव स महामनाः ॥३५

इस लोक में कौन है जो किसी का हनन ■ रक्षण करने की सामर्थ्य रखता हो। तात्पर्य यही है कि किसी में भी किसी के मारने ■ रक्षा करने की शक्ति नहीं है। मरण और संरक्षण इन दोनों के विषय में सभी केवल इस लोक में एक निमित्त ही हुआ करते ■ और वस्तुतः स्वयं कोई भी कुछ करने वाला नहीं होता है।२९। जो भी कोई यहाँ पर किया करते हैं वे सभी यह निश्चय है कि अपने पूर्व कृत कर्मों के ही अनुसार चेष्टा किया करते हैं। तात्पर्य यही है कि जैसा भी जिसका कर्म पूर्व में किया हुआ होता

है वही करने के लिए सबको यहाँ पर विवश होना ही पड़ता है। यहाँ पर मानवगण काल के ही अनुसार चला करते हैं। यह निस्सन्देह [illegible] कि नृलोक बलवान् है।३०। [illegible] भूमण्डल में कोई भी हे [illegible]! विधि के बिना प्राणियों को कोई [illegible] पहुँचा [illegible] शक्ति के द्वारा सामर्थ्य नहीं रखा करता है कारण यही है कि यहाँ पर सभी अपने कृत कर्मों के अनुसार ही सब किया करते हैं। तात्पर्य यही है कि कर्म ही बड़ा बलवान् है जिसके वशीभूत होकर प्राणी कार्य करने को प्रेरित होता है।३१। आपने जो क्षत्रियों के वध करने [illegible] क्रोध किया [illegible] उसको अब त्याग दो यदि आपके [illegible] में हमारे प्रिय करने की अभिलाषा है। अब आप शम को ग्रहण करो। इस भूमण्डल में इसी शम से आपका श्रेय होगा। यह शम तो हमारा बड़ा भारी बल है।३२। वसिष्ठजी ने कहा—उन भृगुनन्दन जी से इतना ही कहकर सब पितृगण अन्तर्हित हो गये थे। फिर [illegible] परशुरामजी ने [illegible] बहुत ही आदर के साथ उनके उस वचन का ग्रहण किया था।३३। अकृतव्रण को अपने साथ में लेकर परमाधिक प्रसन्नता से संयुत होकर उसी समय में परशुराम वहाँ [illegible] सिद्धों के वन में स्थित आश्रम को चले गये थे।३४। महान् विशाल मन वाले राम उस आश्रम में समवस्थित होकर जहाँ कि बहुत से ब्राह्मण भी उनके साथ में थे [illegible] नृप! फिर वे तप करने के लिए [illegible] [illegible] सङ्कल्प धारण करने वाले हो गये थे।३५।

सरथं सहसाहं च धनुः संहननानि च।
पुनरागमसंकेतं कृत्वा प्रास्थापयत्तदा ॥३६

ततः स सर्वतीर्थेषु चक्रे स्नानमतंद्रितः।
परीत्य पृथिवीं सर्वां पितृदेवादिपूजकः ॥३७

एवं क्रमेण पृथिवीं त्रिवारं भृगुनन्दनः।
परिचक्राम राजेंद्र लोकवृत्तमनुव्रतः ॥३८

ततः स पर्वतश्रेष्ठं महेंद्रं पुनरप्यथ।
जगाम तपसे रामस्त्राह्मणैरभिसंवृतः ॥३९

स तस्मिन्शिखरराजाय मुनिसिद्धनिषेविते।
निवासमात्मनो राजन्कल्पयामास धर्मवित् ॥४०

मुनयस्तं तपस्यंतं सर्वेतत्रनिवासिनः।

द्रष्टुकामाः समाजग्मुर्नियता ब्रह्मवादिनः ॥४१

ददृशुस्ते मुनिगणास्तपस्यासक्तमानसम् ।

कार्मं कल्मषमशेषेण दग्ध्वा शान्तमिवामलम् ॥४२

उस समय में परशुरामजी ने रथ के सहित सहसाह्व को और मनुष्य तथा समस्त आयुधों को पुनः [illegible] पड़ने पर आगमन [illegible] संकेत करके वहीं से प्रस्थापित कर दिया [illegible] ।३६। इसके पश्चात् उन्होंने सभी तीर्थों [illegible] अतन्द्रित होकर [illegible] किया था और पितृगण तथा देवों [illegible] पूजन रीति से हे राजेन्द्र ! भृगुनन्दन ने लोक [illegible] का अनुवर्तन करते हुए तीन बार सम्पूर्ण पृथ्वी का परिक्रमण किया [illegible] ।३७। हे राजन् ! इसके अनन्तर उन्होंने ब्राह्मणों से अभिसंवृत होकर फिर तपस्या करने के लिए महेन्द्र पर्वत पर जो कि पर्वतोंमें परमश्रे [illegible] [illegible] किया था ।३९। [illegible] राजन् ! इसमें [illegible] [illegible] उन्होंने मुनिगण और सिद्ध-समुदायों [illegible] द्वारा सेवित उस पर्वत पर अधिक समय तक अपने निवास करने [illegible] विचार कर लिया था ।४०। फिर वहीं पर समस्त क्षेत्रों के निवासी नियत और ब्रह्मवादी मुनियों ने तपश्चर्या करने वाले उन भार्गवेन्द्र के दर्शन करने की [illegible] रखकर वहीं पर समागमन किया [illegible] ।४१। उन मुनियों ने तपश्चर्या में समासक्त उनका पूर्ण रूप से कामियों के [illegible] को [illegible] करके [illegible] शान्त अग्नि की भाँति दर्शन किया था ।४२।

अथ तानागतान्दृष्ट्वा मुनीन्दिव्यांस्तपोमयान् ।

अर्घ्यादिसमुदाचारैः पूजयामास भार्गवः ॥४३

कृतकौशलसंप्रश्नपूर्विकाः सुमहोत्सवाः ।

तेषां तस्य च संवृत्ताः कथाः पुण्या मनोहराः ॥४४

ततस्तेषामनुमते मुनीनां भावितात्मनाम् ।

हयमेधं महायज्ञमाहर्तुमुपचक्रमे ॥४५

संभृत्य सर्वसंभारानौर्वाद्यैः सहितो नृप ।

विश्वामित्रभरद्वाजमार्कण्डेयादिभिस्तथा ॥४६

तेषामनुमते कृत्वा काश्यपं गुरुमात्मनः ।

वाजिमेधं ततो राजन्नाजहार महाक्रतुम् ॥४७

तस्याभूत्काश्यपोऽध्वर्यु रुद्गाता गौतमो मुनिः ।
विश्वामित्रोऽभवद्धोता रामस्य विदितात्मनः ॥४८

ब्रह्मत्वमकरोत्तस्य मार्कण्डेयो महामुनिः ।
भरद्वाजाग्निवेश्याद्या वेदवेदांगपारगाः ॥४६

भार्गवेन्द्र मुनि ने जिस समय में उन ... परम दिव्य ... परि-पूर्ण मुनियों को वहाँ पर समागत हुए देखा ... तो उन्होंने अर्घ्य आदि ... उपचारों के द्वारा सहर्ष उनका अर्चन किया था ।४३। उन समस्त महोदयों ने सर्व प्रथम तो क्षेम-कुशल का प्रश्नोत्तर किया था फिर उन सबकी और भार्गवेन्द्र की परस्पर में परम पुण्यमय मनोहर कथाएं हुई थीं ।४४। इसके उपरान्त भावित आत्मा वाले उन्हीं मुनियों की अनुमति ... भृगुनन्दन ने महायज्ञ के आहरण करने का उपक्रम किया था ।४५। इसके अनन्तर हे नृप ! औवादि तथा विश्वामित्र—भरद्वाज और मार्कण्डेय आदि के सहित यज्ञ के उपयुक्त समस्त संभारों ... संग्रह किया ... था ।४६। फिर उन्हीं सबकी अनुमति हो जाने पर भृगुनन्दन ... को अपना गुरु बनाकर हे राजन् ! फिर वाजिमेध महान् क्रतु का समाहरण किया ... ।४७। विदित आत्मा वाले भृगुनन्दन के गुरु तो काश्यप हुए ... और उद्गाता गौतम मुनि हुए थे और उस यज्ञ में विश्वामित्र ऋषि होता हुए थे ।४८। महामुनि मार्कण्डेय ने वहाँ पर ब्रह्मा के पद को ग्रहण किया था । भरद्वाज-अग्निवेश्य आदि जो भी वेदों तथा वेदों के अङ्ग शास्त्रों के पारगामी ... पण्डित ... ।४९।

मुनयश्चक्रुरन्यानि कर्माण्यन्ये यथाक्रमम् ।
पुत्रैः शिष्यैः प्रशिष्यैश्च सहितो भगवान्भृगुः ॥५०

सादस्यमकरोद्राजन्नन्यैश्च मुनिभिः सह ।
स तैः सहाखिलं कर्म समाप्य भृगुपुंगवः ॥५१

ब्राह्मणं पूजयामास यथावद्गुरुणा सह ।
अलंकृत्य यथान्यायं कन्यां रूपवतीं महीम् ॥५२

पुरनामशतोपेतां समुद्राम्बरमालिनीम् ।
आहूय भृगुशार्दूलः सशैलवनकाननाम् ॥५३

काश्यपाय ददौ सर्वांमृते तं शैलमुत्तमम् ।
आत्मनः सन्निवासार्थं तं रामः पर्यकल्पयत् ॥५४

ततः प्रभृति राजेंद्र पूजयामास शास्त्रतः ।
हिरण्यरत्नवस्त्राश्वगोगजान्नादिभिस्तथा ॥५५

पुरा समाप्य यज्ञांते [illegible] चावभृथाप्लुतः ।
चक्रे द्रव्यपरित्यागं तेषामनुमते तदा ॥५६

इन समस्त मुनियों ने तथा अन्यों ने [illegible] के अनुसार अन्यान्य जो भी कर्म उस यज्ञशाला में थे उनको किया था । उस [illegible] भगवान् भृगु भी अपने पुत्रों-शिष्यों और प्रशिष्यों के सहित पधारे थे । उन्होंने अन्यान्य मुनियों के साथ हे राजन् ! यज्ञ की सदस्यता की थी अर्थात् [illegible] सदस्य बन गये थे और उन सबके साथ मिलकर भृगुपुङ्गव परशुरामजी ने उस सम्पूर्ण कर्म को सुसम्पन्न किया था ।५०-५१। [illegible] सम्पूर्ण कर्म [illegible] हो गया [illegible] यथा रीति अपने गुरुदेव के ही [illegible] ब्रह्माजी [illegible] पूजन किया था । फिर रूप लावण्य वाली मही कन्या को महामूल्यवान् आभूषणों से समलंकृत किया था ।५२। फिर उस मही कन्या को जो सहस्रों पुरों और ग्रामों से समन्वित एवं सागरों और अम्बर की माला वाली थी तथा उसमें अनेकों शैल-वन और कानन भी थे । [illegible] मुनि शार्दूल ने उसको अपने समीप में बुला लिया था ।५३। फिर सम्पूर्ण उसको काश्यप मुनि को दे दिया था। केवल उस उत्तम महेन्द्र पर्वत को नहीं दिया था जिस पर वे स्वयं निवास किया करते थे क्यों कि परशुरामजी ने उस पर्वत को अपने ही निवास करने [illegible] लिए कल्पित [illegible] किया था ।५४। तभी [illegible] लेकर हे राजेन्द्र ! शास्त्रानुसार सुवर्ण-रत्न-वस्त्र-अश्व-गौ-गज आदि के द्वारा [illegible] पूजन किया था । पहिले इस सब कर्म को समाप्त करके फिर यज्ञ के अवसान समय में वे यज्ञान्त अवभृथ स्नान से आप्लुत हुए थे और उसी [illegible] पर उन समस्त महा मुनियों [illegible] [illegible] अनुमति से फिर द्रव्य का परित्याग कर दिया था ।५५-५६।

दत्वा च सर्वभूतानामभयं भृगुनन्दनः ।
तत्रापि पर्वतवरे तपश्चर्तुं समारभत् ॥५७

ततस्तं समनुज्ञाय सदस्या ऋत्विजस्तथा ।
ययुर्यथागतं सर्वे मुनयः संशितव्रताः ॥५८

गतेषु तेषु भगवानकृतव्रणसंयुतः ।
तपो महत्समास्थाय तत्रैव न्यवसत्सुखी ॥५९
काश्यपी तु ततो भूमिर्जननाथा ह्यनेकशः ।
सर्वदुःखप्रशान्त्यर्थं मारीचानुमतेन तु ॥६०
तत्र दीपप्रतिष्ठाख्यव्रतं विष्णुमुखोदितम् ।
चचार धरणीं सम्यक् दुःखैर्मुक्ताऽभवच्च सा ॥६१
इत्येव जामदग्न्यस्य प्रादुर्भाव उदाहृतः ।
यस्मिञ्छ्रुते नरः सर्वपातकैर्विप्रमुच्यते ॥६२
प्रभावः कार्त्तवीर्यस्य लोके प्रथिततेजसः ।
प्रसंगात्कथितः सम्यङ्नातिसंक्षेपविस्तरः ॥६३

इसके पश्चात् भृगुनन्दन ने समस्त प्राणियों के लिए अभय का दान दे दिया था और वहाँ ही उस पर्वत पर तपस्या करने का आरम्भ कर दिया [illegible] ।५७। इसके अनन्तर जो भी [illegible] में समागत सदस्य तथा ऋत्विज थे उन्होंने एवं संशित व्रतों वाले मुनियों ने सभी [illegible] जैसे-जैसे जहाँ से यहाँ आगमन किया वैसे ही विदा होकर चले गये [illegible] ।५८। [illegible] सबके चले जाने पर [illegible] ने अकृतव्रण [illegible] संयुत होकर महान तप में समास्थित होकर सुख [illegible] सम्पन्न उसी स्थान पर निवास किया करते [illegible] ।५९। इसके पश्चात् जननाथा काश्यपी भूमि [illegible] अनेक प्रकार [illegible] समस्त दुःखों की प्रशान्ति के लिए मारीच की अनुमति [illegible] एक व्रत किया था ।६०। वहाँ पर दीप प्रतिष्ठा नाम वाला व्रत जो कि भगवान विष्णु के मुख से [illegible] गया। [illegible] उसको धरणी ने भली भाँति किया [illegible] और फिर समस्त दुःखों [illegible] मुक्त हो गयी थी ।६१। यह भगवान जामदग्न्य का प्रादुर्भाव [illegible] बता दिया गया है जिसके श्रवण करने पर मनुष्य समस्त पातकों से मुक्त हो जाया करता है ।६२। अपरिमित तेज वाले कार्त्तवीर्य [illegible] लोक में जो प्रबल प्रभाव था वह भी प्रसङ्ग से दिया गया [illegible] जो न तो अति संक्षिप्त था और न विशेष विस्तृत ही था ।६३।

एवंप्रभावः स नृपः कार्त्तवीर्योऽभवद्भुवि ।
न तादृशः पुमान्कश्चिद्भावी भूतोऽथवा श्रुतः ॥६४

दत्तात्रेयाद्वरं वव्रे मृत्युमुत्तमपूरुषात् ।
यत्पुरा सोऽगमन्मुक्तिं रणे रामेण घातितः ॥६५
तस्यासीत्पंचमः पुत्रः प्रख्यातो यो जयध्वजः ।
पुत्रस्तस्य महाबाहुस्तालजंघोऽभवन्नृप ॥६६
अभूत्तस्यापि पुत्राणां शतमुत्तमधन्विनाम् ।
तालजंघाभिधा येषां वीतिहोत्रोऽग्रजोऽभवत् ॥६७
पुत्रैः सवीतिहोत्राद्यैर्हैहयाद्यैश्च राजभिः ।
कालं महान्तमवसद्धिमाद्रिवनगह्वरे ॥६८
यः पूर्वं रामबाणेन द्रवन्पृष्ठेऽभिताडितः ।
तालजंघोऽपतद्भूमौ मूर्छितो गाढवेदनः ॥६९
ददर्श वीतिहोत्रस्तं द्रवन्तं दैववशादिव ।
रथमारोप्य वेगेन पलायनपरोऽभवत् ॥७०

वह नृप कार्त्तवीर्य इस भूमण्डल में प्रकार के प्रभाव वाला हुआ था कि उस प्रकार कोई भी पुरुष न कभी हुआ और न भविष्य में भी होगा तथा न कभी सुना ही गया है ।६४। उसने दत्तात्रेय मुनीन्द्र से यह वरदान प्राप्त किया कि उसकी मृत्यु किसी महान् उत्तम पुरुष होवे । रण वह परशुरामजी के द्वारा निहत होकर पहिले मुक्ति को हो गया ।६५। राजा का पाँचवां पुत्र था जिसका नाम था । नृप ! उसका पुत्र महाबाहु तालजङ्घ हुआ ।६६। उसके भी उत्तम धनुर्धारी सौ पुत्र हुए थे । उन सबके नाम तालजङ्घ था उनमें वीतिहोत्र सबमें बड़ा भाई था ।६७। वह वीतिहोत्र प्रभृति पुत्रों तथा हैहय वंशज नृपों के सहित उस हिमाद्रि पर्वत के वन गह्वर में बहुत लम्बे समय तक उसने निवास किया था ।६८। जो पहिले राम के बाण द्वारा भागता हुआ भी पृष्ठ भाग में प्रताड़ित हो था । फिर वह तालजङ्घ गहरी वेदना से युक्त होकर मूर्च्छा को प्राप्त हो गया था और भूमि पर गिर गया था ।६९। भाग्यवश उसको भागते हुए वीतिहोत्र ने देखा था । बड़े ही वेग से उसको रथ पर समारोपित करके वह भाग जाने में तत्पर हो गया था ।७०।

ते तत्र न्यवसन्सर्वे हिमाद्रौ भयपीडिताः ।
कृच्छ्रं महांतमासाद्य शाकमूलफलाशनः ॥७१
ततः शांतिं गते रामे तपस्यासक्तमानसे ।
तालजंघः स्वकं राज्यं सपुत्रः प्रत्यपद्यत ॥७२
सन्निवेश्य पुरीं भूयः पूर्ववन्नृपसत्तमः ।
वसंस्तदा निजं राज्यमपालयदरिंदमः ॥७३
सुपुत्रः सानुगबलः पूर्ववैरमनुस्मरन् ।
अभ्याययौ महाराज तालजंघः पुरं तव ॥७४
चतुरंगबलोपेतः कंपयन्निव मेदिनीम् ।
रुरोधाभ्येत्य नगरीमयोध्यां स महीपतिः ॥७५
ततो निष्क्रम्य नगरात्फल्गुतंत्रोऽपि ते पिता ।
युयुधे तैर्नृपैः सर्वैर्वृद्धोऽपि तरुणो यथा ॥७६
निहतानेकमातंगतुरंगरथसैनिकः ।
शत्रुभिर्निर्जितो वृद्धः पलायनपरोऽभवत् ॥७७

वे सभी भागते हुए आकर भय [illegible] बहुत पीड़ित हो गये थे और हिमाद्रि पर्वत में [illegible] गये थे। उन सबको महान [illegible] प्राप्त हुआ था और वहाँ पर वे सब शाक-मूल और फलों [illegible] करने वाले हुए थे।७१। जब वहाँ [illegible] परशुराम परम शान्ति को प्राप्त हो जाने पर केवल तपस्या में ही आसक्त मन वाले हो गये थे और फिर उनका कोई भी भय नहीं रहा [illegible] तो तालजङ्घ ने अपने पुत्रों [illegible] सहित अपना राज्य कर लिया था।७२। उस श्रेष्ठ राजा ने फिर पूर्व की ही भाँति अपनी नगरी को सन्निवेशित करके उस [illegible] वहीं पर निवास करते हुए उस अरिन्दम ने अपने राज्य का परिपालन किया [illegible]।७३। हे महाराज ! सुन्दर पुत्र वाले और अपने अनुचरों [illegible] सेना से युक्त होकर [illegible] तालजङ्घ ने पूर्व वैर का अनुस्मरण करके वह तालजङ्घ आपके पुर में [illegible] हो गया था।७४। वह चतुरङ्गिणी सेना से संयुत होकर भूमि को कँपाता हुआ जैसे ही चला था। जब [illegible] अयोध्या नगरी में पहुँचा तो वह राजा रोने लग गया था।७५। इसके पश्चात् आपके पिता के पास बहुत [illegible] थे तो भी वह नगर से निकल

आये थे और उन नृपों के वृद्ध होते हुए भी तरुण पुरुष के ही समान उसने घोर युद्ध किया था ।७६। उसके बहुत से हाथी-अश्व-रथ और सैनिक जब निहत हो गये थे तो वह शत्रुओं के द्वारा निर्जित हो गया था और फिर वह वृद्ध वहाँ से भागने लगा था ।

त्यक्त्वा स नगरं राज्यं सकोशबलवाहनम् ।
अन्तर्वत्न्या च ते मात्रा सहितो वनमाविशत् ॥७८
तत्र चौर्वाश्रमोपान्ते निवसन्नचिरादिव ।
शोकामर्षसमाविष्टो वृद्धभावेन च स्वयम् ॥७९
विलोक्यमानो मात्रा ते बाष्पगद्गदकंठया ।
अनाथ इव राजेन्द्र स्वर्गलोकमितो गतः ॥८०
ततस्ते जननी राजन्दुःखशोकसमन्विता ।
चितामारोपयद्भर्तुः रुदती सा कलेवरम् ॥८१
अनन्तरादिदुःखेन भर्तुर्ध्वंसमकर्शिता ।
चकाराग्निप्रवेशाय सुदृढां मतिमात्मनः ॥८२
और्वस्तदखिलं श्रुत्वा स्वयमेव महामुनिः ।
निर्गत्य चाश्रमात्तां च वाक्यमिदमब्रवीत् ॥८३
न मर्तव्यं त्वया राज्ञि सांप्रतं जठरे तव ।
पुत्रस्तिष्ठति सर्वेषां प्रवरश्चक्रवर्तिनाम् ॥८४

उस वृद्ध नृप ने अपना सम्पूर्ण राज्य-नगर-कोष-बल समस्त वाहनों को छोड़कर गर्भवती तुम्हारी माता को साथ में लेकर वन में प्रवेश कर लिया था ।७८। वहाँ वन में और्व मुनि के आश्रम के समीप में अल्प समय तक ही उसने निवास किया था और वह स्वयं वृद्धता के कारण से बहुत ही अधिक शोक तथा अमर्ष से समाविष्ट हो गया था । तुम्हारी माता उसको देख रही थी और उसके नेत्रों से अश्रुपात हो रहा था उसका कण्ठ गद्गद हो गया था । हे राजेन्द्र ! वह वृद्ध नृप एक अनाथ के ही समान यहाँ से स्वर्गलोक में चला गया था ।७९-८०। इसके अनन्तर हे राजन् ! तुम्हारी माता बिचारी पति वियोग के महा दुःख और शोक से समन्वित हो गयी थी । फिर करुण क्रन्दन करती हुई उसने स्वामी के मृत शरीर को चिता

पर समारोपित कर दिया था ।८१। पति █ मृत हो जाने पर उसने कुछ भी खाया नहीं था—शोक हृदय में बैठा हो था—ऐसे दुःखों से अपने स्वामी █ वियोग के दुःख █ वह बहुत कर्षित हो गयी थी । अतः उसने भी अपने आपको भी अग्नि में पति █ ही शव के साथ प्रवेश कर सती हो जाने का सुदृढ़ निश्चय कर लिया █ ।८२। और्व महामुनि █ यह सम्पूर्ण समाचार सुना तो वे महामुनि स्वयं █ अपने आश्रम से बाहिर निकलकर आ गये थे और उससे यह █ कहा था ।८३। हे राज्ञि ! तुमको इस समय █ पति के साथ प्राणत्याग नहीं करना चाहिए कारण यह है कि तुम्हारे उदर में पुत्र स्थित है जो कि समस्त चक्रवर्त्तियों में परम श्रेष्ठ होगा ।८४।

इति तद्वचनं श्रुत्वा माता तव मनस्विनी ।
विरराम मृतेस्तां तु मुनिः स्वाश्रममानयत् ।
ततः सा सर्वदुःखानि नियम्य त्वन्मुखांबुजम् ॥८५
दिदृक्षुराश्रमोपान्ते तस्यैव न्यवसत्सुखम् ।
सुषाव च ततः काले सा त्वामौर्वाश्रमे तदा ॥८६
जातकर्मादिकं सर्वं भवतः सोऽकरोन्मुनिः ।
और्वाश्रमे विवृद्धश्च भवांस्तेनानुकंपितः ॥८७
त्वयैव विदितं सर्वमतः परमरिंदम ।
एवं प्रभावो नृपतिः कार्त्तवीर्योऽभवद्भुवि ॥८८
यतस्यास्य प्रभावेण सर्वलोकेषु विश्रुतः ।
यद्भंगजीजितो युद्धे पिता ते वनमाविशत् ॥८९
तद्वृत्तान्तमशेषेण मया ते समुदीरितम् ।
एतच्च सर्वमाख्यातं यत्तानामुत्तमं तव ॥९०
समन्वतन्नो लोकेषु सर्वलोकफलप्रदम् ।
न ह्यस्य कर्त्तुं नृपतेः पुरुषार्थचतुष्टये ॥९१

तुम्हारी मनस्विनी माता ने इस █ मुनि के वचन का श्रवण किया था तो फिर █ सती होकर █ होने से कार्य से विरत हो गयी थी और फिर उसको वह मुनि अपने █ में ले आये थे । इसके पश्चात् उसने सब दुःखों की ओर से अपने मन को नियमित कर लिया था तथा उस गर्भस्थ

समाप्य च यथायोग्यमनुज्ञाय गुरुं ततः ।
प्रतिज्ञामकरोद्राजा व्रतमेतदनुत्तमम् ॥९८
आजीवान्तं धरिष्यामि यत्नेनेति महामतिः ।
अथानुज्ञाप्य राजानं वसिष्ठो भगवानृषिः ॥९९
सन्निवर्त्यानुगच्छन्तं प्रजगाम निजाश्रमम् ॥१००

फिर इन तीनों भुवनों में कुछ भी ऐसी अभीप्सित वस्तु नहीं है जिसका [illegible] करना दुर्लभ हो अर्थात् सभी कुछ [illegible] हो जाया करता है । यह हैहय राजा का वध [illegible] संक्षेप से कह दिया है और अब जमदग्नि के पुत्र परशुराम मुनि के विषय में [illegible] आपको क्या बतलाऊँ ? ।९२। जैमिनि ने कहा—इसके अनन्तर राजा सगर अपने हाथों की अञ्जलि को जोड़कर मुनिवर से कहने लगा था ।९३। उसने कहा—हे भगवन् ! [illegible] इस व्रत [illegible] करने की इच्छा करता [illegible] सो आप भली भाँति उपदेश के द्वारा इसके करने में मुझे अपनी अनुज्ञा प्रदान कीजिए ।९४। हे विप्रर्षे ! [illegible] कर्म से मैं कृतार्थी हो गया हूँ—इसमें लेशमात्र भी संशय नहीं है । [illegible] राजा के द्वारा इस रीति से प्रार्थना की गयी तो उस मुनि ने भी ऐसा ही होगा—यह कह दिया था । फिर उस मुनि ने शास्त्रोक्त मार्ग के द्वारा उस राजा को दीक्षा दी थी और श्रेष्ठ राजा सगर वसिष्ठ मुनि के द्वारा दीक्षित होगया [illegible] ।९५-९६। फिर समस्त द्रव्यों को मंगा [illegible] विधि-विधान के साथ उस शुभ [illegible] समाचरण किया [illegible] । राजा ने उसी विधि से भगवान् [illegible] का पूजन किया ।९७। यथा योग्य उसको सम्पूर्ण समाप्त करके फिर अपने गुरुदेव की आज्ञा प्राप्त की थी और उस राजा ने [illegible] सर्वोत्तम व्रत के करने [illegible] यह प्रतिज्ञा की थी ।९८। महामति [illegible] नृप ने यही प्रतिज्ञा की थी कि मैं इस व्रत को जब तक मेरा जीवन रहेगा तब तक धारण करूँगा और यत्न पूर्वक करता रहूँगा । फिर भगवान् वसिष्ठ ऋषि ने उस राजा को अपनी आज्ञा प्रदान कर दी थी ।९९। फिर अपने पीछे अनुगमन करने वाले राजा को वापिस लौटाकर वसिष्ठ जी अपने [illegible] को चले गये [illegible] ।१००।

सगर-प्रतिज्ञा

जैमिनिरुवाच—

गते तस्मिन्मुनिवरे सगरो राजसत्तमः ।
अयोध्यायामधिवसन्पालयामास मेदिनीम् ॥१
सर्वसंपद्गणोपेतः सर्वधर्मार्थतत्त्ववित् ।
वयसैव स बालोऽभूत्कर्मणा वृद्धसंमतः ॥२
तथापि न दिवा भुंक्ते शेते वा निशि संस्मरन् ।
सुदीर्घं निःश्वसित्युष्णमुद्विग्नहृदयोऽनिशम् ॥३
श्रुत्वा राजा स्वराज्यं निजगुरुभवजित्यारिभिः
संगृहीतं मात्रा सार्द्धं प्रयातं वनमतिगहनं स्वर्यातं
तं च तस्मिन् ।
शोकाविष्टः सरोषं सकलरिपुकुलोच्छित्तये
सत्प्रतिज्ञश्चक्रे सद्यः प्रतिज्ञां परिभवमननं
सोढुमिक्ष्वाकुवंश्यः ॥४
स कदाचिन्महीपालः कृतकौतुकमंगलः ।
रिपुं जेतुं मनश्चक्रे दिशश्च सकलाः क्रमात् ॥५
अनेकरथसाहस्रगंजाश्वरथसैनिकैः ।
सर्वतः संवृतो राजा निश्चक्राम पुरोत्तमात् ॥६
शत्रून्हंतुं प्रतस्थे निजबलनिवहेनोत्पतद्भिस्तुरंगै-
र्निसत्त्वोर्मिजालाकुलजलनिधिनिभेनाथ षाडंगिकेन ।
मत्तैर्मातंगयूथैः सकुलगिरिकुलेनैव भूमंडलेन ।
श्वेतच्छत्रध्वजौघैरपि शशिसुकराभातखेनैव सार्द्धम् ॥७

जैमिनि मुनि ने कहा—उस मुनिवर के चले जाने पर श्रेष्ठ नृप सगर ने अयोध्या पुरी में अधिवास करते हुए इस मेदिनी का परिपालन किया था ।१। वह सभी प्रकार की सम्पदाओं से संयुत था और सम्पूर्ण धर्म के तात्त्विक अर्थ का [illegible] था । वह अवस्था से ही [illegible] किन्तु उसके

विजिगीषुर्दिशो राजा राज्ञो यस्याभियास्यति ॥१०
विषयं [illegible] नृपस्तस्य [illegible] प्रणतिमेष्यति ।
विजित्य नृपतीन्सर्वान्कृत्वा च स्वपदानुगान् ॥११
संकेतगामिनः कांश्चित्कृत्वा राज्ये न्यवर्त्तत ।
एवं स विसरन्दिक्षु दक्षिणाभिमुखो नृपः ॥१२
स्मरन्पूर्वंकृतं वैरं हैहयानभ्यवर्त्तत ।
ततस्तस्य नृपैः सार्द्धं समभरत्कुंजरैः ॥१३
बभूव हैहयैर्वीरैः संग्रामो रोमहर्षणः ।
राज्ञां यत्र सहस्राणि न बलानि महाहवे ॥१४

जिस समय में वह राजा अभियान कर रहा था उस समय में उसकी भी सबसे आगे चलने वाली सेना [illegible] समुदायों [illegible] चरणों [illegible] वीरों के उपभाग क्षुण्ण हुए [illegible] उनके क्रोधों से भिन्न भाग की भूमि में थे [illegible] भर गये थे और चतुरङ्गिणी सेना के हाथी-अश्व-रथ और पैदल सैनिकों के हर एक [illegible] एक के चरणों से जो भूमि खुदकर प्रभूत रेणु उठी थी उससे ऊँचे स्थल ढक गये थे। इस तरह से वह भूमि निरन्तर ऐसी ही होगयी थी ।८। अनेक दर्प अर्थात् दर्प से परिपूर्ण हाथी-घोड़े और रथों के व्यूह [illegible] संभिन्न वीरों को निहनन करने वाले उसकी शोभा तुरन्त ही असुरों [illegible] समूहों की सेनाओं [illegible] हनन करने वाले भगवान् शिव की शोभा को धारण वह नृप कर रहा था। उसके कर्मों के अभिव्यक्त होने पर दूर से ही शत्रुओं [illegible] नगर के विरोधों में ऐसा अभिशंसन करते [illegible] कि यहाँ [illegible] शीघ्र ही कहीं से भाग आने [illegible] वर्णों [illegible] निर्देश करता है और प्राणियों के धैर्य [illegible] किया करता [illegible] ।९। वह राजा जिसको सब दिशाओं [illegible] विजय प्राप्त करने की इच्छा है जिस राजा के ऊपर अभियान करेगा ।१०। वह राजा उसके देश को प्रणति को प्राप्त करा देगा। उस नृप ने सभी नृपतियों को जीतकर उनको अपने चरणों का अनुचर बना लिया था ।११। उसे महान् वीर राजा ने कुछ नृपों की सङ्केत पर गमन करने वाले बनाकर उनको अपने ही राज्य पर भेज दिया था अर्थात् अपनी आज्ञा [illegible] इशारे वाले होना उन्होंने स्वीकार कर लिया था तो उनको राज्य पर बिठा दिया [illegible]। इस रीति से विसरण [illegible] दिशाओं [illegible] करके फिर [illegible] दक्षिण की ओर अभिमुख हुआ था ।१२। उस राजा ने अपने साथ पूर्व में की हुई शत्रुता स्मरण करके हैहय राजाओं [illegible] ऊपर

आक्रमण किया था। फिर उन सबके साथ जो पूर्णतया रथों और हाथियों से संयुत थे इसका महान् युद्ध हुआ था।१३। उन हैहय वीरों के साथ उसका बड़ा ही रोमाञ्चकारी भीषण युद्ध हुआ था जिस युद्ध में सहस्रों राजा थे और बड़ी विशाल सेनाएँ भी थीं।१४।

निजघान महाबाहुः संक्रुद्धः कोसलेश्वरः।
जित्वा हैहयभूपालान्भंक्त्वा दग्ध्वा च तत्पुरीम् ॥१५
निःशेषशून्यामकरोद्वैरान्तकरणो नृपः।
समग्रबलसंमर्दप्रमृष्टाशेषभूतलः ॥१६
हैहयानामशेषं तु चक्रे राज्यं रथः समम्।
राज्यं पुरीं चापहाय भ्रष्टैश्वर्या हृतत्विषः ॥१७
राजानो हतभूयिष्ठा व्यद्रवंत समंततः।
अभिद्रुत्य नृपांस्तांस्तु द्रवमाणान्महीपतिः ॥१८
जघान सानुगान्मत्तः प्रजाः क्रुद्ध इवांतकः।
ततस्तान्प्रति सक्रोधः सगरः समरेऽरिहा ॥१९
मुमोचास्त्रं महारौद्रं भार्गवं रिपुभीषणम्।
तेनोत्सृष्टास्तिरौद्रत्रिभुवनभयदप्रस्फुरद्भार्गवास्त्र-
ज्वालादंदह्यमानाश्शतनुततयस्ते नृपाः सद्य एव।
वाय्वन्यस्तावुत्तधूमोद्गमपटलतमोमुद्दृष्टिप्रसारा
भ्रेमुर्भूपृष्ठलोलद्बहुलतमरजो गूढमात्रा मुहूर्तम् ॥२०
आग्नेयास्त्रप्रतापप्रतिहतगतयोऽदृष्टमार्गाः समंता-
द्भूपाला नष्टसंघाः परवशतनवो व्याकुलीभूतचित्ताः।
भीताः संत्युक्तवस्त्रायुधकवचविभूषादिका मुक्तकेशा
विस्पष्टोन्मत्तभावान्भृशतस्त्वनुकुर्वंत्यथतः
शास्त्रवाणाम् ॥२१

उन सभी का निहनन महान् बाहुओं वाले कोसलेश्वर ने अत्यन्त क्रुद्ध होकर कर दिया था। फिर हैहय नृपों को जीतकर उनकी पुरी को तोड़कर दग्ध कर दिया था।१५। वैर का अन्त करने वाले नृप ने उनकी पुरी

को पूर्णतया शून्य कर दिया था। वह राजा ऐसा बलवान् था कि उसने अपनी समग्र सेना के द्वारा मर्दन करके सबको चौपट डाला था और सम्पूर्ण भूतल को प्रमृष्ट कर दिया था।१६। उस राजा ने हैहयों के सम्पूर्ण राज्य को धूल में मिला दिया था। जब वहाँ कुछ भी शेष न रहा तो वे सब अपने राज्य और पुरी को छोड़कर क्षीण कान्ति वाले और विगत ऐश्वर्य वाले हो गये थे।१७। जो राजा मरने से बच गये थे ऐसे बहुत से वहाँ चारों ओर भाग गये थे। उस महीपति ने जो भी वहाँ से भाग रहे थे उनको वेग से आगे बढ़कर निगृहीत कर लिया था।१८। इस मदोन्मत्त बलवान् नृप ने क्रुद्ध [illegible] जैसे प्रजाओं को मार दिया [illegible] है वैसे ही इसने भी सबका संहार कर दिया था। समर में शत्रुओं के सूदन करने वाले राजा सगर ने उन पर बड़ा भारी क्रोध किया था।१९। फिर सगर नृप ने महान् रौद्र-शत्रुओं के लिये बहुत ही भीषण भार्गव अस्त्र को उन पर छोड़ा था। इस महास्त्र का बड़ा भारी सब पर प्रभाव पड़ा था। उसके छोड़े जाने पर जो कि [illegible] ही रौद्र था, वह तीनों भुवनों को [illegible] देने [illegible] था। ऐसा प्रस्फुरण करता हुआ जो भार्गव अस्त्र था उसकी ज्वालाओं से दग्ध होते हुए और अवश शरीरों वाले वे समस्त शत्रुगण हो गये थे। इसके उपरान्त जो वायु-अस्त्र का प्रयोग करने से चारों ओर धूम के समूह ने उनको ऐसा घेर लिया था कि वहाँ पर घोर अन्धकार में उन की दृष्टि भी मुष्ट हो गयी थी अर्थात् देखने की शक्ति समाप्त हो गयी थी और मुहूर्त भर तक तो वे सब अधिक अन्धकार और रज से ढके हुए होकर भूमि के पृष्ठ पर लोटते हुए [illegible] काट रहे थे।२०। शत्रुओं के सैनिकों की [illegible] उस [illegible] में ऐसी हो गयी थी कि छोड़े हुए आग्नेयास्त्र के प्रताप से जिनकी गति प्रतिहत हो गयी है अर्थात् वे चलने में असमर्थ हो गये थे क्योंकि उनको उस समय में मार्ग दिखलाई नहीं दे रहा था—चारों ओर उन शत्रुओं के समूह [illegible] हो गये थे और उनके शरीर परवश हो गये थे तथा उनके चित्त व्याकुल हो गये थे। वे ऐसे भीत हो गये थे कि उन्होंने अपने वस्त्र-आयुध-कवच और विभूषा आदि सबका त्याग कर दिया था-उनके मस्तकों के केश खुले हुए थे—वे सब अत्यन्त उन्मत्तों की ही भावों का उस समय में अनुकरण कर रहे थे।२१।

विजित्य हैहयान्सर्वान्समरे सगरो बली।

संक्षुब्धसागराकारः काम्बोजानभ्यवर्तत ॥२२

शरणं भव नो ब्रह्मन्नार्तानामभयैषिणाम् ।
सगरास्त्राग्निनिर्दग्धशरीराणां मुमूर्षताम् ॥३१
■ हंत्यस्मानशेषेण वैरशुद्धिकरणोन्मुखः ।
तस्मात्भयाद्धि निष्क्रांता वयं जीवितकांक्षिणः ॥३२
विभिन्नराज्यभोगर्द्धिस्वदारापत्यबांधवाः ।
केवलं प्राणरक्षार्थं त्वां स्वयं शरणं गताः ॥३३
न ह्यन्योऽस्ति पुमाँल्लोके सौहृदेन बलेन ■॥
यस्तं निवर्तयित्वास्मान्पालयेन्महतो भयात् ॥३४
त्वं किलार्कान्वयभुवां राज्ञां कुलगुरुर्मतः ।
तद्वंशपूर्वजैर्भूपैस्त्वत्प्रभावश्च तादृशः ॥३५

समस्त शत्रुओं ■ कुलों ■ पूर्णतया क्षय करने की दीक्षा ग्रहण करने वाले उस राजा को देखकर डरे हुए सब शत्रुगण स्त्री और बच्चों को आगे करके अपने प्राणों की रक्षा के लिए ■ नृप की शरणागति में आ गये। इक्ष्वाकु के वंशजों के कुलगुरु वसिष्ठजी के चारों ओर वे सात राजाओं के कुलों में परम प्रसिद्ध समुत्पन्न हुए पारद और पह्लव आदि सगर के शत्रु राजा उपस्थित हुए थे।२९। वसिष्ठजी के समीप में ही ऋषियों से घिरे हुए निवास कर रहे थे। वहाँ पर उन सबने उपगत होकर हाथ जोड़कर उनसे कहा ■।३०। हे ब्रह्मन् आप ही हमारे ■ करने वाले होवें। हम बहुत ही आर्त्त हैं और अभय दान के इच्छुक ■। हम ■ राजा सगर के अस्त्र की अग्नि से निर्दग्ध शरीर वाले हैं और मर रहे ■।३१। यह राजा सगर तो अपने वैर का ■ करने के लिए उन्मुख हो रहा है और हम सबको ही मार रहा है। उसी ■ ■ से हम निकलकर भागे हुए हैं और अपने जीवन की रक्षा के चाहने वाले हैं।३२। हमारा सबका राज्य-भोग-समृद्धि-स्त्री-सन्तति और बान्धव सभी कुछ विभिन्न हो गया है। अब तो हम केवल अपने प्राणों की रक्षा के लिए आपकी शरणागति में आये हैं।३३। इस लोक ■ आपके सिवाय अन्य कोई भी पुरुष ऐसा नहीं है जो सौहार्द से ■ बल-विक्रम से उसको हटाकर इस महान भय से हमारी रक्षा कर सके।३४। आप तो निश्चित ■ से सूर्य वंश के भूपों ■ कुलगुरु माने गये हैं और उस राजा ■ वंश में जो भी पूर्वज हुए थे उन सबने आपको कुलगुरु बनाया है और इन सब पर भी आपका प्रभाव उसी प्रकार का है।३५।

तेनायं सगरोऽप्यद्य गुरुणोरवयंत्रितः ।
भवन्निदेशं नात्येति वेलामिव महोदधिः ॥३६
त्वं नः सुहृत्पिता माता लोकानां च गुरुर्विभो ।
तस्मादस्मान्महाभाग परित्रातुं त्वमर्हसि ॥३७
जैमिनिरुवाच—
इति तेषां वचः श्रुत्वा वसिष्ठो भगवानृषिः ।
शनैर्विलोकयामास शरणं समुपागतान् ॥३८
वृद्धस्त्रीबालभूयिष्ठान्हतशेषान्नृपान्वयान् ।
दृष्ट्वा स्वतध्वद्भगवान्सर्वभूतानुकंपकः ॥३९
चिरं निरूप्य मनसा तान्विलोक्य च सादरम् ।
उवाचाभयमभीर्वाचा मा भैष्टेति महामतिः ॥४०
अथावोचन्महाभागः कृपया परयान्वितः ।
समये स्थापयामास राज्ञस्तान्जीविताथिनः ॥४१
भूपव्याकोपदग्धं नृपकुलविहितामेवधर्मादपेतं
कृत्वा तेषां वसिष्ठः समयमवनिपालप्रतिज्ञानिवृत्त्यै ।
गत्वा तं राजवर्यं स्वयमथ मनकैः सान्त्वयित्वा यथावत् ।
सप्राणानामरीणामभयमनविद्यामभ्यनुज्ञां ययाचे ॥४२

इस [illegible] से [illegible] भी [illegible] राजा सगर अपने कुलगुरु आपके गौरव [illegible] यन्त्रित है। यह कभी [illegible] आपके आदेश का [illegible] अपनी मर्यादा को समुद्र की भाँति नहीं करता है।३६। हे विभो ! हमारे तो इस समय में आप लोगों के गुरु हैं। इसलिए हे महाभाग ! आप ही इससे हमारी रक्षा करने के योग्य होते हैं।३७। जैमिनि ने कहा—ऋषिवर भगवान वसिष्ठजी ने उनके इस वचन का [illegible] करके शरणागति में समागत उनको धीरे [illegible] अवलोकित किया था।३८। उनमें सभी वृद्ध-स्त्री-और बालक बहुत से थे और मरने से बचे-बचाये नृप वंशज थे। ऐसी दुरवस्था में स्थित उन सबको देखा था तो वसिष्ठजी का हृदय करुणार्द्र हो गया था क्योंकि यह तो सभी प्राणिमात्र पर अनुकम्पा करने वाले महा पुरुष थे।३९। बहुत [illegible] पर्यन्त उनका निरूपण

किया था और मन [illegible] बड़ा आदर करके उनका विलोकन किया [illegible] । फिर उन महती मति वाले वसिष्ठजी ने उनको उज्जीवित करते हुए धीरे [illegible] कहा था—आप लोग डरो मत ।४०। इसके पश्चात् उन महाभाग ने अत्यधिक कृपा से समन्वित होकर कहा था तथा जीवन के चाहने वाले उन [illegible] नृपों को समय में (सन्धि करने में) स्थापित कर दिया था ।४१। वसिष्ठजी ने राजा सगर की प्रतिज्ञा की निवृत्ति के लिए ऐसा समय किया था कि वह राजा सगर की क्रोधाग्नि [illegible] दग्ध नृप समुदाय नृपों के [illegible] [illegible] किए हुए सम्पूर्ण धर्म से अपेत हो गया था । फिर वे स्वयं ही धीरे से उस नृप श्रेष्ठ सगर के समीप में [illegible] हुए थे और उनको यथा-रीति सान्त्वना की थी तथा जीवित शत्रुओं [illegible] अपगमन के विधान में उनकी आज्ञा की याचना की थी। अर्थात् वे सभी जीवित ही चले जावें—ऐसी याचना की [illegible] ।४२।

सक्रोधोऽपि महीपतिर्मुं स्ववचः संभावयंस्तानरीन्
धर्मस्य स्वकुलोचितस्य [illegible] तथा वेषस्य सत्यागतः ।
श्रौतस्मार्तविभिन्नकर्मनिरतान्विप्रैश्च दूरोज्झितान्
तासून्केवलमरत्य अन्मृतसमानेकैकशः पार्थिवान् ।।४३
अर्द्धमुण्डाञ्छकांश्चक्रे पल्हवान् श्मश्रुधारिणः ।
यवनान्विगतश्मश्रून्काम्बोजांश्चिबुकान्वितान् ।।४४
एवं विरूपानन्यांश्च [illegible] चकार नृपान्वयान् ।
वेदोक्तकर्मभिर्मुक्तान्विप्रैश्च परिवर्जितान् ।।४५
कृत्वा संस्थाप्य समये जीवतस्तान्व्यसर्जयत् ।
ततस्ते रिपवस्तस्य त्यक्तस्वाचारलक्षणाः ।।४६
व्रात्यतां समनुप्राप्ताः सर्ववर्णविनिन्दिताः ।
धिक्कृताः सततं सर्वैर्नृशंसा निरपत्रपाः ।।४७
क्रूराश्च संघशो लोके बभूवुर्म्लेच्छजातयः ।।४८
मुक्तास्तेनाथ राज्ञा शकयवनकिरातादयः सम्र एव
त्यक्तस्वाचारवेषा गिरिगहनगुहाश्रयाः संबभूवुः ।
एता अद्यापि सद्भिः सततमवमता जातयोऽसत्प्रवृत्त्या
वर्त्तन्ते दुष्टवेषा जगति नरपतेः पालयंतः प्रतिज्ञाम् ।।४९

यद्यपि राजा सगर को बहुत अधिक क्रोध हो रहा था तो भी उस नृप ने अपने गुरुदेव की आज्ञा का समादर करते हुए ऐसा स्वीकार कर लिया था वे सब गण सभी जीवित एक-एक छोड़े जा सकते हैं कि वे अपने कुल के उचित धर्म और वेष का त्याग कर देवें और श्रौत तथा स्मार्त कर्मों से भिन्न कर्मों में निरत रहें और विप्रों के द्वारा दूर ही से त्यागे हुए रहें मृत के ही समान रहें तो रह सकते हैं ।४३। उनमें जो शक जाति वाले थे उनके सिर तो आधे मुण्डित कर दिये गये थे और जो पल्हव थे उनको श्मश्रुधारी करा दिया था । जो यवन थे उनकी श्मश्रुओं को मुँडा दिया गया था और काम्बोज को मुण्डित [illegible] दिया [illegible] ।४४। इस तरह से उस सगर ने अन्यों को विकल विप्रों के द्वारा परिवर्तित [illegible] दिये गये थे ।४५। ऐसा ही सबको बनाकर समय में (सन्धि में) अर्थात् इस प्रकार की शर्त में बाँधकर संस्थापित करते हुए जीवित ही छोड़ दिया [illegible] अर्थात् ऐसे ढंग से ही उनके रहने पर उनका हनन नहीं किया था । इसके अनन्तर उसके वे समस्त गणगण आचार के लक्षणों के परित्याग कर देने वाले हो गए थे ।४६। इस तरह से रहने पर वे सभी वात्य हो गये थे और सभी वर्णों के द्वारा विनिन्दित बन गये थे अर्थात् किसी भी वर्ण वाले नहीं रहे थे । सर्वदा उनको धिक्कार दिया [illegible] जाता था—वे बहुत क्रूर हो गये थे तथा एकदम निर्लज्ज भी बन गये थे ।४७। [illegible] सभी अत्यन्त क्रूरों के समुदायों वाले हो गये थे जो कि लोक में म्लेच्छ जाति वाले हो गये थे जो कि लोक में म्लेच्छ आदि वाले हुए थे ।४८। [illegible] समय [illegible] जो भी राजा सगर के द्वारा जीवित ही छोड़ दिये गये [illegible] । वे [illegible] और किरात आदि थे वे तुरन्त ही आचार और वेष [illegible] त्याग देने वाले हो गये और फिर वे पर्वतों की गुफाओं में आश्रय लेने वाले हो गये थे । ये जातियाँ अब भी सत्पुरुषों के द्वारा बहुत ही नीच मानी जाती हैं क्योंकि बहुत ही बुरी प्रवृत्ति होती है और उनकी चेष्टाएँ भी दुष्ट हैं । वे जगत् में राजा सगर की प्रतिज्ञा का पालन किया करते [illegible] ।४९।

—×—

[illegible] की दिग्विजय

जैमिनिरुवाच—

अथानुज्ञाय सगरो वसिष्ठमृषिसत्तमम् ।
बलेन महता युक्तो दिग्जयायाभ्यवर्तत ॥१

ततो विदर्भराट् तस्मै स्वसुतां प्रीतिपूर्वकम् ।
केशिन्याख्यामनुपमामनुरूपां न्यवेदयत् ॥२
[illegible] तस्या राजशार्दूलो विधिवद्वह्निसाक्षिकम् ।
शुभे मुहूर्ते केशिन्याः पाणिं जग्राह भूमिपः ॥३
स्थित्वा दिनानि कतिचिन्नगृहे तस्यातिसत्कृतः ।
विदर्भराजं संमंत्र्य ततो गंतुं प्रचक्रमे ॥४
अनुज्ञातस्ततस्तेन पारिबर्हैश्च सत्कृतः ।
निष्क्रम्य तत्पुराद्राजा शूरसेनानुपेयिवान् ॥५
संभावितस्तत्रैव यादवैर्मातृसोदरैः ।
धनौघैस्तर्पितस्तैश्च मथुराया विनिर्ययौ ॥६
एवं स सगरो राजा विजित्य वसुधामिमाम् ।
करैश्च स नृपान्सर्वांश्चक्रे संकेतगानपि ॥७

जैमिनी मुनि ने कहा—इसके अनन्तर नृप सगर ने परम श्रेष्ठ ऋषि वसिष्ठजी की अनुज्ञा प्राप्त करके [illegible] सेना से समन्वित होकर विदर्भ देश पर आक्रमण किया था ।१। फिर विदर्भ के नृप ने अपनी केशिनी नाम वाली पुत्री को बहुत ही प्रीति के साथ उनकी सेवा में समर्पित कर दी थी । यह कन्या रूप लावण्यादि सब गुणों में अनुपम थी और उस नृप के सर्वथा अनुरूप थी ।२। उस राजशार्दूल नृप सगर ने अग्नि को साक्षी करके परम शुभ मुहूर्त में उस [illegible] पाणिग्रहण किया था ।३। वहाँ पर ससुराल ही में कुछ दिन तक स्थित रहकर उस विदर्भेश्वर के द्वारा बड़ा सत्कार प्राप्त किया था फिर विदर्भाधिप अनुमति पाकर वहाँ [illegible] गमन करने का उपक्रम किया था ।४। उस राजा ने भी आज्ञा देदी थी तथा पारिबर्हों के अर्थात् दायों के द्वारा उसका अच्छा सत्कार किया था । फिर वहाँ पुर से राजा ने निकल [illegible] शूरसेन देशों में पहुँचा था ।५। वहाँ पर भी माता [illegible] सादरों [illegible] द्वारा यादवों से उसका सम्मान किया [illegible] था और बहुत-सा धन देकर उन्होंने भी उसको पूर्ण सन्तुष्ट किया [illegible] । इसके पश्चात् वहाँ से निकल कर चल दिया था ।६। मथुरा से चलकर [illegible] रीति से उस राजा सगर ने इस सम्पूर्ण वसुधा पर विजय प्राप्त की थी और समस्त नृपों पर [illegible] लगाकर उनको अपने ही संकेतों पर चलने वाले अनुगामी बना दिया था ।७।

ततोऽनुमान्य नृपतीन्निजराज्याय सानुगान् ।
अनुजज्ञे नरपतिः समस्ताननुयायिनः ॥८
ततो बलेन महता स्कंधावारसमन्वितः ।
शनैरपीडयन्देशान्स्वराज्यमुपजग्मिवान् ॥९
संभाव्यमानश्च मुहुरुपदाभिरनेकशः ।
नानाजनपदैस्तूर्णमयोध्यां समुपागमत् ॥१०
तदागमनमाज्ञाय नागरः सकलो जनः ।
नगरीं तामलंचक्रे महोत्सवसमुत्सुकः ॥११
ततः स नगरी सर्वा कृतकौतुकमंगला ।
सिक्तसंमृष्टभूभागा पूर्णकुम्भशतावृता ॥१२
समुच्छ्रितध्वजशता पताकाभिरलंकृता ।
सर्वंनागरुधूपाढ्या विचित्रकुसुमोज्ज्वला ॥१३
सद्रत्नतोरणोत्तुंगगोपुराट्टालभूषिता ।
प्रसूनलाजवर्षैश्च स्वलंकृतमहापथा ॥१४

इसके उपरान्त उन नृपों को अपने राज्य पर स्थित बने रहने का आदेश देकर तथा सम्मान करके कि वे अपने अनुगों के साथ अनुयायी रहें राजा ने प्रस्थान किया था इसके पश्चात् स्कन्धावार संयुत उसने महान सैन्य के सब देशों को पीड़ित करते अन्त अपनी राजधानी में आकर प्राप्त हो गया था ।८-९। राजा का अनेक प्रकार की भेटों से बड़ा सत्कार अनेक जनपदों के द्वारा किया गया था और फिर वह शीघ्र ही अयोध्या में आ गया था ।१०। वहाँ पर समस्त नागरिक जनों को ज्ञात हुआ कि राजा अयोध्या में आ गये हैं तो सबने बड़ा महान् किया था और बड़ी उत्सुकता के अयोध्यापुरी को था ।११। फिर वह समग्र नगरी माङ्गलिक कौतुकों से समलंकृत हुई थी । उसकी समस्त भूमि पर स्वच्छता हुई थी और छिड़काव किया गया था तथा जहाँ-तहाँ सैकड़ों ही पूर्ण कुम्भ स्थापित किये गये थे ।१२। उसमें सैकड़ों ध्वजाएँ फहराई गयी थीं तथा अनेक पताकाओं से वह विभूषित बनायी गयी थी । वहाँ पर सभी अगर की धूपों की महक हो रही थी एवं

नाना भाँति के सुन्दर सुमनों की मालाओं से वह समुज्ज्वल बनायी गयी थी ।१३। अच्छे-अच्छे रत्नों ■ द्वारा निर्मित तोरण बन्दनवारें लगायी गयी ■ ■ ऊँचे-ऊँचे गोपुर और अट्टालिकाओं से वह ■ भूषित थी जो महापथ थे उनमें पुष्पों और लाजाओं की वर्षा की ■ जिससे वे बहुत ही सुन्दर एवं सुशोभित हो रहे थे ।१४।

महोत्सवसमायुक्ता प्रतिगेहमभूत्पुरी ।
संपूजिताशेषवास्तुदेवतागृहमालिनी ॥१५
दिक्चक्रजयिनो राज्ञः संदर्शनमुदान्वितैः ।
पौरजानपदैर्हृष्टैः सर्वतः समलंकृता ॥१६
ततः प्रकृतयः सर्वे तथांतः पुरवासिनः ।
वारकांताकदंबैश्च नगरीभिश्च संवृताः ॥१७
अभ्यायायुस्ततः सर्वे समेत्य पुरवासिनः ।
स तैः समेत्य नृपतिर्लब्धाशीर्वादसत्क्रियः ॥१८
बधिरीकृतदिक्चक्रो जयशब्देन भूरिणा ।
नानावादित्रसंघोषमिश्रेण मधुरेण च ॥१९
सत्कृत्य तान्यथायोगं सहितस्तैर्मुदान्वितैः ।
आनंदयन्प्रजाः सर्वाः प्रविवेश पुरोत्तमम् ॥२०
वेदघोषैः सुमधुरैर्ब्राह्मणैरभिनन्दितः ।
संस्तूयमानः सुभृशं सूतमागधबंदिभिः ॥२१

उस समय से अयोध्या पुरी में महान् उल्लास छाया हुआ था तथा प्रत्येक घर ■ महोत्सव मनाया ■ रहा था। वहाँ पर सभी गृहों की पंक्तियों में भलीभाँति समस्त वास्तु देवताओं का पूजन किया गया ■ ।१५। दिग्विजय करने वाले चक्रवर्ती राजा सगर के दर्शन करने के आनन्द से युक्त नागरिक और देशवासी बहुत ही ■ थे और इनसे सभी ओर वह पुरी समलंकृत थी ।१६। फिर वहाँ पर सभी प्रकृतियाँ तथा अन्तःपुर के निवासी परम प्रसन्न ■ और वार कान्ताओं के समुदायों से और नगरियों से संकुल थी । अर्थात् बहुत सी नर्तिका वेश्या से भी एकत्रित थीं ।१७। इसके पश्चात् सभी पुरवासी इकट्ठे होकर वहाँ पर आ गये थे और सबने एकत्रित होकर ■ राजा को सत्कृत किया था तथा आशीर्वादों से मुदित किया था ।१८।

उस समय ■ जयजयकार की सम्मुख ध्वनि से सभी दिशाएं बधिर हो गयी थीं अर्थात् जयघोष में कहीं पर भी कुछ भी सुनायी नहीं दे रहा था। वहीं पर बहुत ■ प्रकार के ■ बज रहे थे उनकी भी ध्वनि बहुत मधुर उसी जयघोष में मिल रही थी।१६। राजा ने भी उन समस्त स्वागत करने वालों ■ योग्यता के अनुसार सत्कार किया था जिससे उनको भी परमाधिक हर्ष हो रहा था। इन प्रसन्न पुर वासियों के ही ■ में समस्त प्रजाजनों को आनन्दित करते हुए राजा ने पुर में प्रवेश किया था।२०। उस समय में ब्राह्मणों ने भी परम मधुर वेद के मन्त्रों की ध्वनि ■ राजा ■ अभिनन्दन किया था। तथा सूत—मागध और वन्दियों के द्वारा उस शुभ समागमन के समय में राजा का संस्तवन किया जा रहा था।२१।

जयशब्दैश्च परितो नानाजनपदेरितैः।
करतालरवोन्मिश्रवीणावेणुतलस्वनैः ॥२२

गायद्भिर्गायकजनैर्नृत्यद्भिर्गणिकाजनैः।
अन्वीयमानो विलसच्छ्वेतच्छत्रविराजितः ॥२३

विकीर्यमाणः परितः सल्लाजकुसुमोत्करैः।
पुरीमयोध्यामविशत्स्वपुरोभिव वासवः ॥२४

हष्टिपूतेन गंधेन ब्राह्मणानां ■ वर्त्मना।
जगाम मध्येनगरं गृहं श्रीमदलंकृतम् ॥२५

अवरुह्य ततो यानाद्भार्याभ्यां सहितो मुदा।
प्रविवेश गृहं मातुर्हृष्टपुष्टजनाकुलम् ॥२६

पर्यंकस्थामुपागम्य मातरं विनयान्वितः।
तत्पादौ संस्पृशन्मूर्ध्ना प्रणाममकरोत्तदा ॥२७

साभिनंद्य तमाशीर्भिर्हर्षगद्गदया गिरा।
ससंभ्रमं समुत्थाय पर्यष्वजत चात्मजम् ॥२८

उस नृपति के दोनों ओर अनेक जनपदों के द्वारा कहे गये ■ का घोष हो रहा था और करताल—की ध्वनि से मिले हुए वीणा और वेणु के मधुर स्वर निकल रहे थे।२२। राजा के पीछे-पीछे गान करने वाले गान कर रहे थे और गणिकाएं नृत्य करती हुई चली आ रही थीं। राजा के

ऊपर श्वेत छत्र लगा हुआ था।२३। राजा के ऊपर लाजा और पुष्पों की वर्षा की जा रही थी। इस रीति से राजा ने अपनी पुरी अयोध्या में महेन्द्र देव जिस तरह से इन्द्रपुरी में गमन कर रहे हों उसी भाँति प्रवेश किया था।२४। हरिद्रापूत गन्ध से युक्त ब्राह्मणों के मार्ग से नगर के मध्य में जो भी सम्पन्न एवं अलंकृत गृह था, उसमें राजा ने गमन किया था।२५। फिर अपनी दोनों भार्याओं के साथ प्रसन्नता से यान से नीचे उतर कर अपनी माताओं के घर में राजा ने प्रवेश किया था जहाँ पर बहुत से परम वृद्ध पुरजन विद्यमान थे।२६। उनकी माताजी एक पर्यङ्क पर विराजमान थीं उनके समीप में परम विनय से युक्त होकर उस समय में उनके चरणों का स्पर्श करके माथा टेककर प्रणाम किया था।२७। माताजी ने भी शुभाशीर्वाद देकर उनका अभिनन्दन किया था और फिर अत्यधिक हर्ष से गद्गद वाणी के द्वारा बड़े ही सम्भ्रम के साथ उठकर अपने परम प्रिय पुत्र को छाती से लगाकर परिष्वजन किया था।२८।

सहर्षं बहुधाशीर्भिरभ्यनन्ददुभे स्नुषे ।
सा तां संभाव्य कथया तत्र स्थित्वा चिरादिव ॥२९
अनुज्ञातस्ततस्तस्या राजा निश्चक्राम तद्गृहात् ।
ततः सानुचरो राजा पौरैर्जनपदैर्वृतः ॥३०
सुरराज इव श्रीमान्सभां समगमत्ततः ।
संप्रविश्य सभां दिव्यामनेकनृपसेविताम् ॥३१
नत्वा गुरुजनं सर्वमाशीर्भिश्चाभिनंदितः ।
सिंहासने शुभे दिव्ये निषसाद नरेश्वरः ॥३२
संसेव्यमानश्च नृपैर्नानाजनपदेश्वरैः ।
नानाविधाः कथाः कुर्वंस्तत्र नृपसत्तमः ॥३३
सभाज्यमानः सुहृद्भिर्मुमोद सह बंधुभिः ।
प्रतिज्ञां पालयित्वैवं जित्वा दिङ्मण्डलं नृपः ॥३४
अन्वतिष्ठद्यथान्यायमर्थं धर्म्यमुदारधीः ।
स्वप्रभावजिताशेषवैरिविक्रममण्डलाधिपः ॥३५

इसके अनन्तर दोनों परम सुन्दरी पुत्र-वधुएँ साथ में ही समुपस्थित हुई थीं उनको भी बहुत आशीर्वादों से माताजी ने अभिनन्दित किया था।

फिर राजा ने अपनी सब सुनकर कुछ काल पर्यन्त वहाँ पर स्थिति की थी ।२९। फिर माताजी से अनुज्ञा प्राप्त करके राजा उनके घर से बाहिर निकल आये [illegible] और इसके अनन्तर अनुचरों [illegible] सहित वहाँ से गमन कर रहे थे और श्वेत व्यजनों [illegible] द्वारा सेवकगण उनको हवा करते जा रहे थे ।३०। देवराज इन्द्र के ही समान श्री सम्पन्न राजा धीरे-धीरे अपनी सभा के समीप में समागत हो गये थे । राजा ने अनेक अधीन नृपों से संसेवित परम दिव्य [illegible] प्रवेश किया [illegible] ।३१। सर्व प्रथम वहाँ पर जो गुरुजन विराजमान थे उनको प्रणाम किया था और उनके द्वारा दिये हुए आशीर्वाद प्राप्त [illegible] अभिनन्दित हुए थे । फिर नरेश्वर ने परम शुभ एवं अतीव दिव्य सिंहासन पर अपनी संस्थिति की थी ।३२। वहाँ पर अनेक जनपदों [illegible] स्वामी नृपों के द्वारा वह भली-भाँति सेव्यमान हुए थे और अनेक प्रकार की उस श्रेष्ठ नृप ने वहाँ पर कथालाप किया था ।३३। [illegible] तरह से बन्धुओं के साथ सुखरा परम प्रसन्नता प्राप्त करते हुए वहाँ पर निवास किया [illegible] । इस रीति से नृप ने समस्त दिशाओं को जीतकर अपनी की हुई प्रतिज्ञा का पालन किया था ।३४। न्याय के अनुसार उस उदार बुद्धि वाले नृप ने तीनों धर्म-अर्थ और काम को प्राप्त किया था । उस राजा का [illegible] ही ऐसा था कि जिसके द्वारा विविध एवं समस्त दिशाओं के मण्डल के स्वामियों को पराजित कर दिया [illegible] ।३५।

एकातपत्रां पृथिवीमन्वशासन्नृपो यथा ।
स्वर्यातस्य पितुः पूर्वं परिभावममर्षितः ॥३६
स यां प्रतिज्ञामारूढस्तां सम्यक्परिपूर्य च ।
सप्तद्वीपाब्धिनगरग्रामायतनमालिनीम् ॥३७
जित्वा शत्रूनशेषेण पालयामास मेदिनीम् ।
एवं गच्छति काले च वसिष्ठो भगवानृषिः ॥३८
अभ्याजगाम तं भूयो द्रष्टुकामो जनेश्वरम् ।
तमायातमति [illegible] मुनिवर्यं ससंभ्रमः ॥३९
प्रत्युज्जगामार्घहस्तः सहितस्तैर्नृपैर्नृपः ।
अर्घ्यपाद्यादिभिः सम्यक्पूजयित्वा महामतिः ॥४०
प्रणाममकरोत्तस्मै गुरुभक्तिसमन्वितमः ।

आशीर्भिर्वर्द्धयित्वा तं वसिष्ठः सगरं तदा ॥४१

आस्यतामिति होवाच सह सर्वैर्नरेश्वरैः ।

उपाविशत्ततो राजा कांचने परमासने ॥४२

स्वर्ग [illegible] गये हुए पितामहों [illegible] पूर्व [illegible] परिभव से यह सगर अत्यन्त क्रुद्ध हुए थे और फिर दिग्विजय करके एक छत्र समग्र वसुधा पर इसने अनुशासन किया था ।३६। उसने जिस प्रतिज्ञा को किया था उसको अच्छी तरह परिपूर्ण करके ही छोड़ा था । समस्त शत्रुओं को जीतकर सातों द्वीप और सागर से युक्त नगर-ग्राम और आयतनों की माला मेदिनी [illegible] पालन किया था । इस रीति से जब कुछ काल व्यतीत हो गया था तब भगवान् वसिष्ठ ऋषि ने वहाँ पर पदार्पण किया था ।३७-३८। उस राजा को पुनः देखने की कामना वाले ऋषि वहाँ पर समागत हुए थे । जैसे ही वहाँ पर पदार्पण करते हुए ऋषि का अवलोकन राजा ने किया था वैसे ही सम्भ्रम के [illegible] राजा ने अपने हाथों में अर्घ-सामग्री ग्रहण कर तुरन्त ही उनका शुभागमन किया था जब [illegible] [illegible] उसके साथ [illegible] सभी नृप विद्यमान थे । महामति नृप ने अर्घ्य-पाद्य आदि समस्त उपचारों से भली भाँति उन ऋषि-वर [illegible] अर्चन किया था ।३९-४०। गुरुदेव की भक्ति [illegible] युक्त होकर उनको प्रणाम किया था । उस समय में वसिष्ठ जी ने भी आशीर्वचनों से सगर का वर्धन किया था ।४१। मुनि ने राजा को आज्ञा दी थी कि आप बैठ जाइए तब फिर सब नृपों के सहित राजा सुवर्ण निर्मित [illegible] पर उपविष्ट हो गये थे ।४२।

मुनिना समनुज्ञातः सभार्यः सह राजभिः ।

आगतस्तु नृपश्रेष्ठमुपासीनमुपह्वरे ॥४३

उवाच शृण्वतां राज्ञां गम्भीरमधुरं वचः ।

वसिष्ठ उवाच—

कुशलं ननु ते राजन्बाह्येष्वाभ्यंतरेषु च ॥४४

मंत्रिष्वमात्यवर्गेषु राज्ये [illegible] सकलेऽधुना ।

दिष्ट्या च विजिताः सर्वे समग्रबलवाहनाः ॥४५

अयत्नेनैव युद्धेषु भवता रिपवो हि यत् ।

दिष्ट्यारूढप्रतिज्ञेन मम मानयता वचः ॥४६

अरयस्त्यक्तधर्माणस्त्वया जीवविसर्जिताः ।

तान्विजित्य तु राजेन्द्र पुनर्दिग्विजयेच्छया ॥४७

गतस्सवाहनबलस्त्वमित्यश्रृणवं नृप ।

जितदिङ्मंडलं भूयः श्रुत्वा स्वां नगरस्थितम् ॥४८

प्रीत्याहमागतो द्रष्टुमिदानीं राजसत्तम ।

जैमिनिरुवाच—

वसिष्ठेनैवमुक्तस्तु सगरस्तालजंघजित् ॥४९

जब मुनिवर ने अपनी आज्ञा प्रदान की थी तो नृप भार्याओं तथा अमात्य नृपों के सहित मुनि के ही समीप में नीचे की ओर उदासीन हो गये थे। वहां पर समस्त नृपों का समुदाय [illegible] कर रहा था तभी मुनिवर वसिष्ठ जी ने कोमल कान्त वचन राजा से कहे थे। वसिष्ठ जी ने कहा—हे राजन्! बाहिर-भीतर सर्वत्र कुशल-क्षेम तो है न? ।४४। समस्त मन्त्रियों में—अमात्यवर्गों में अथवा समस्त राज्य में इस समय कुशल तो है न? यह तो परम हर्ष की बात है कि आपने युद्धों में सेना और वाहनों के सहित अपने शत्रुओं को बिना ही किसी प्रयत्न के बहुत ही साधारण कर्मों द्वारा पराजित कर दिया है। मुझे बड़ी प्रसन्नता इसकी है कि अपनी प्रतिज्ञा पर समवस्थित होते हुए भी आपने मेरे कथित वचनों को मान लिया है ।४५-४६। आपने शत्रुओं पर विजय प्राप्त करके उनको [illegible] अश्वों का त्याग मात्र देने वाले बनाकर जीवित ही रहने वाले छोड़ दिये हैं। इस रीति से उन सबको जीत कर आप अन्यों को पराजित करने के वास्ते आप दिग्विजय करने की इच्छा से सेना और वाहनों से संयुत होकर गये हैं—यह भी श्रवण मैंने सुन लिया है। फिर मैंने यह श्रवण किया है कि आप दिग्विजय करके वापिस लौट आये हैं और अपने ही नगर में इस समय समवस्थित हैं ।४७-४८। हे परम श्रेष्ठ राजन्! इस वक्त प्रातःकाल में प्रीति से ही आपसे मिलने के ही लिये यहाँ पर समागत हुआ हूँ। जैमिनि मुनि ने कहा—महामुनीन्द्र वसिष्ठ जी ने जब इस रीति से कहा था तो तालजङ्घ पर विजय पाने वाले राजा सगर ने उनसे निवेदन किया था ।४९।

कृतांजलिपुटो भूत्वा प्रत्युवाच महामुनिम् ।

सगर उवाच—

कुशलं ननु सर्वत्र महर्षे नात्र संशयः ॥५०

कल्याणाभिमुखाः सर्वे देवताश्च मुनीश्वर ।

भवान्ध्यायति कल्याणं येषां यस्य संततम् ॥५१

तस्य मे चोपसर्गाश्च संभवंति कथं मुने।
भवताऽनुगृहीतोऽस्मि कृतार्थश्चाधुना कृतः ॥५२
यस्मा द्रष्टुमिहायातः स्वयमेव भवान्गुरो।
यन्महामाह भगवान्विपक्षविजयादिकम् ॥५३
तत्तथाऽनुष्ठितं किन्तु सर्वं भवदनुग्रहात्।
भवत्प्रसादेन सर्वं मन्ये प्राप्तं महीक्षिताम् ॥५४
अन्यथा मम का शक्तिः शत्रून्हंतुं तथाविधान्।
अनल्पी कुरुते कल्यं यन्मे व्यवसितं भवान् ॥५५
फलमल्पमपि प्रीत्यै स्यादगस्याधिरोपितुः।
जैमिनिरुवाच—
एवं संभावितः सम्यक्सगरेण महामुनिः ॥५६

दोनों हाथों को जोड़कर महामुनि को सगर ने उत्तर दिया था। सगर ने कहा—हे महर्षे ! मेरा सर्वत्र कुशल है—इसमें लेशमात्र भी संशय नहीं है।५०। जिस पुरुष सेवक का निरन्तर ही आप जैसे महापुरुष कल्याण की कामना का ध्यान रखा करते हैं उस सेवक मेरे प्रति सभी दिक्गण कल्याणाभिमुख अर्थात् श्रेय करने वाले सदा ही रहा करते हैं।५१ हे मुने ! ऐसे मुझको उपद्रव कैसे हो सकते हैं। तो आपके परमाधिक अनुग्रह का भाजन हो गया हूँ और अब अपने समस्त कार्यों में सफल भी बना दिया गया हूँ।५२। हे गुरुदेव ! आप जो स्वयं ही मुझको अपना दर्शन देने के लिए यहाँ पर पधारे हैं और जो आपने विपक्षियों पर विजय आदि प्राप्त करने की बातें मुझसे कही हैं।५३। यह सभी कुछ वैसा ही किया गया है किन्तु यह सब आपकी ही अनुकम्पा से हुआ है। मैं स्वयं ही इस बात को मानता हूँ कि शत्रु तथा अन्य नृपों पर जो भी मैंने विजय प्राप्त की है—यह सब आपके ही प्रसाद से ही हुआ है।५४। नहीं तो ऐसे-ऐसे प्रबल शत्रुओं का हनन कर पराजित करने की मेरे जैसे की क्या शक्ति है। जो भी मेरा व्यवसित है उसको सफल आप जैसे महान् पुरुष ही किया करते हैं।५५। अग्र अधिरोपित का अनल्प भी फल प्रीति के लिए ही होता है। जैमिनी मुनि ने कहा—इस रीति से राजा सगर के द्वारा उन महामुनि का समादर किया गया था।

अभ्यनुज्ञाय तं भूयः प्रजगाम निजाश्रमम् ।
वसिष्ठे तु गते राजा सगर प्रीतमानसः ॥५७
अयोध्यायामभिवसन्प्रशशासाखिलां भुवम् ।
भार्याभ्यां समुपेताभ्यां रूपशीलगुणादिभिः ॥५८
बुभुजे विषयान्रम्यान्यथाकामं यथासुखम् ।
सुमतिकेशिनी चोभे विकसद्वदनाम्बुजे ॥५९
रूपौदार्यगुणोपेते पीनवृत्तपयोधरे ।
नील कुंचितकेशाढ्ये सर्वाभरणभूषिते ॥६०
सर्वलक्षणसपन्ने नवयौवनगोचरे ।
प्रिये सन्निहिते तस्य नित्यं प्रियहिते रते ॥६१
स्वाचारभावचेष्टाभिर्जह्रतुस्तुस्तन्मनोऽनिशम् ।
स चापि चरणोत्कर्ष प्रसीतात्मा महीपतिः ॥६२

फिर वह मुनि नृप सगर █ आज्ञा ग्रहण करके अपने आश्रम को चले गये थे । वसिष्ठ मुनि के ████ कर जाने पर राजा के मन में परम हर्ष हुआ था ।५७। वह राजा फिर अयोध्या पुरी अपनी राजधानी █ निवास ████ █ और उसने समस्त भूमण्डल पर प्रशासन किया █ । दोनों भार्याओं को भी अपने पास में रखता था जो रूप लावण्य, शील स्वभाव और गुण गण आदि से सुसम्पन्न थीं ।५८। उस राजा सगर ने प्राप्त विषयों के ██ का पूर्ण अपनी इच्छा के अनुरूप ही उपभोग किया था । सुमति और केशिनी ये दोनों ही विकसित कमल के समान परम सुन्दर मुखों वाली थीं ।५९। सुन्दर ████ के साथ-साथ ██ दोनों पत्नियों में विशाल उदारता भी थी । इनके उरोज युग्म परिपुष्ट वृत्ताकर एवं समुन्नत थे । इनके केशपाश नील वर्ण █ कुञ्चित अर्थात् छल्लेदार परम सुहावने थे । ये सभी आभरणों से विभूषित रहा करती थीं ।६०। नूतन यौवन █ उद्गम में दिखलाई देने वाली नारियों में जो गुण गण हुआ करते हैं । उन सभी से ये दोनों रानियाँ सुसम्पन्न थीं । ये दोनों बहुत ही प्रिय थीं और सदा राजा के समीप में रहा करती थीं तथा नित्य ही अपने परम प्रिय स्वामी के हित कार्य █ रति रखने वाली थीं ।६१। इन दोनों के अपने आचरण राजा के प्रति इतने सुन्दर थे वे अपने हाव-भाव और चेष्टाओं के द्वारा निरन्तर ही राजा के मन ██ अपनी ओर आकर्षित रक्खा करती थीं । वह राजा भी उन दोनों के चरण █ उत्कर्ष से प्रसन्न मन वाला था ।६२।

रममाणो यथाकामं सह ताभ्यां पुरेऽवसत् ।
अन्येषां भुवि राज्ञां तु राजशब्दो न चाप्यभूत् ॥६३
गुणेन चाभवत्तस्य सगरस्य महात्मनः ।
अल्पोऽपि धर्मः सततं यथा भवति मानसे ॥६४
राज्ञस्तथार्थकामौ तु न तथा विपुलावपि ।
अलुब्धमानसोऽर्थं च भेजे धर्ममपीडयन् ॥६५
तदर्थमेव राजेंद्र कामं चापीडयंस्तयोः ॥६६

यह राजा सगर उन दोनों अपनी परम प्रिय पत्नियों के साथ अपनी इच्छा के अनुसार रमण करता हुआ अपने नगर में निवास किया करता था। इस भूमि में अन्य राजा के लिए राजा—यह शब्द ही नहीं था। राजा का अर्थ होता जो राजित (शोभित) होता है। यह अर्थ इसी में घटित होता था। अन्य अर्थ यह भी है कि यही एक चक्रवर्ती राजा था।६३। इस राजा में ही ऐसे गुण गण विद्यमान थे कि महान् आत्मा वाले इसके लिए ही राजा शब्द अन्वर्थ होता था। इसके मन में अल्प भी धर्म निरन्तर रहा करता था।६४। इस राजा में विशेष अधिक भी अर्थ और काम वैसे नहीं थे जो उसके मन को अधिक समासक्त कर सकें। इतना लुब्धक नहीं था कि अर्थ संग्रह में ही व्यस्त रहे। यह तो धर्म में कुछ भी बाधा न करके ही अर्थ का सेवन किया करता था। इसमें काम वासना भी उतनी ही थी कि हे राजेन्द्र! जिससे दोनों पत्नियों को सर्वदा आप्यायित करता रहे।६५-६६।

—×—

॥ सगर का और्वाश्रम में आगमन ॥

जैमिनिरुवाच—

एवं स राजा विधिवत्पालयामास मेदिनीम् ।
सप्तद्वीपवतीं सम्यक्साक्षाद्धर्म इवापरः ॥१
ब्राह्मणादींस्तथा वर्णान्स्वेस्वे धर्मे पृथक्पृथक् ।
स्थापयित्वा यथान्यायं ररक्षाव्याहतेंद्रियः ॥२
प्रजाश्च सर्ववर्णेषु यथाश्रेष्ठानुवर्तिनः ।
वर्णाश्चैवानुलोम्येन तद्वदर्थेषु च क्रमात् ॥३

न सति स्थविरे बाले मृत्युरभ्युपगच्छति ।
सर्ववर्णेषु भूपाले महीं तस्मिन्प्रशासति ॥४

स्फीतान्यपेतबाधानि तदा राष्ट्राणि कृत्स्नशः ।
तेष्वसंख्या जनपदाश्चातुर्वर्ण्यजनावृताः ॥५

ते चासंख्यगृहग्रामनगरोपेता विभागतः ।
देशाश्चावासभूयिष्ठा नृपे तस्मिन्प्रशासति ॥६

अनाश्रमी द्विजः कश्चिन्न बभूव तदा भुवि ।
प्रजासु सर्ववर्णेषु प्रारम्भाः फलदायिनः ॥७

जैमिनि मुनि ने कहा- उस राजा ने सात द्वीपों वाली मेदिनी का क्षिति के साथ परिपालन साक्षात् दूसरे मूर्तिमान् धर्म के ही समान किया था ।१। अव्याहत इन्द्रियों वाले उस सगर ने न्यायानुरूप ब्राह्मण आदि चारों वर्णों को अपने-अपने धर्म में पृथक्-पृथक् स्थापित कर दिया था ।२। सब ही वर्णों में जो भी प्रजाजन थे वे उचित रीति से अपने से श्रेष्ठों के अनुवर्त्तन करने वाले थे। जो वर्ण आनुलोम्य से हुए थे उनको भी उसी भाँति कार्यों में क्रम से लगा दिया था। उच्च वर्ण वालों से नीचे वर्ण वाली स्त्रियों में जो समुत्पन्न होते हैं वे अनुलोम सृष्टि वाले होते हैं। इसके विपरीत क्षत्रिय से ब्राह्मणी आदि में समुत्पन्न विलोम हैं, जिसका शास्त्र में सर्वथा निषेध है ।३। वृद्ध माता-पिता के जीवित रहने पर उस नृप के राज्य में बालक की मृत्यु नहीं हुआ करती थी। यह उस महीपति के शासन करने पर सभी वर्णों में हुआ करती थी ।४। उस समय में राष्ट्र पूर्णतया बाधा रहित और स्फीत अर्थात् विस्तृत थे। उन राष्ट्रों में अगणित जनपद थे जिनमें चारों वर्णों के मानव रहा करते थे ।५। उस नृप के प्रशासन करने पर सभी देशों में बहुत अधिक आवास गृह थे तथा विभक्त रूप से संख्या रहित सैकड़ों ही गृह और ग्राम थे ।६। यह ऐसा समय था कि इस भू मण्डल में कोई भी द्विज ऐसा नहीं था जिसका कोई आश्रम न होवे। ब्रह्मचर्य—गार्हस्थ्य–वानप्रस्थ और संन्यास ये चार ही आश्रम थे। सभी वर्णों की प्रजाओं में जो भी आरम्भ होते हैं वे सभी निष्फल न होकर फल देने वाले हुआ करते थे ।७।

स्वोचितान्येव कर्माणि प्रारभन्ते च मानवाः ।
पुरुषार्थोपपन्नानि कर्माणि च तदा नृणाम् ॥८

किया करती थीं और सम्पूर्ण भूमि सदा ही शालो और सस्य की बहुलता वाली थी। अर्थात् धान्य परिपूर्ण ■■ ।१३-१४।

बभूव नृपशार्दूले तस्मिन् राज्यानि शासति ॥१५
यस्याष्टादशमंडलाधिपतिभिः सेवार्थमभ्यागतैः
प्रख्यातोरुपराक्रमैर्नृ पशतैर्मूर्द्धाभिषिक्तैः पृथक्।
संविष्टं मणिविष्टरेषु नितरामध्यास्यमानाऽमरैः
शक्रस्येव विराजते दिवि सभा रत्नप्रभोद्भासिता ॥१६
संकेतादपरांतराभ्युपगमाः सर्वेऽपि सोपायनाः
कृत्वा सैन्यनिवेशनानि परितः पुर्याः पृथक् पार्थिवाः।
द्रष्टुं कांक्षितराजकाः ससभया विज्ञापयंतो मुहु-
र्द्वास्थैरेव नरेश्वराय सुचिरं यस्यान्तमतः पुरं ॥१७
नमन्नरेंद्रमुकुटश्रेणीनामतिघर्षणात्।
किणीकृतौ विराजेते चरणौ तस्य भूभुजः ॥१८
सेवागतनरेंद्रौघविनिकीर्णैः समंततः।
रत्नैर्भाति सभा तस्य गुहा सोमे रवौ यथा ॥१९
एवं स राजा धर्मेण भानुवंशशिखामणिः।
अनन्यशासनामुर्वीमन्वशासदरिंदमः ॥२०
इत्थं पालयतः पृथ्वीं सगरस्य महीपतेः।
न चापपात मृत पुत्रमुखालोकनजृंभिता ॥२१

■■ वह राजशार्दूल इस भूमि पर शासन कर रहा था उस समय में भूमि धान्योत्पत्ति करके सबको सुखी करता था।१५। ■■ राजा की सभा रत्नों की प्रभा से उद्भासित स्वर्ग में इन्द्र को सभा के ही समान शोभा दे रही थी जिसमें अठारह मण्डलों की अधिपति राजा की सेवा के लिये समागत हुए विद्यमान थे। इनके अतिरिक्त मूर्द्धाभिषिक्त सैकड़ों ही नृप पृथक् विराजमान थे जिनके विशाल पराक्रम ■■■■ थे—जिस सभा ■ मणि मण्डित आसनों पर नृपगण ऐसे ही संस्थित थे ■से देवगण निरन्तर इन्द्र देवकी सभा में समवस्थित रहा करते ■।१६। ये सभी नृप सङ्केत से ही अन्य विषयों ■■ ■■■ प्राप्त कर लेने वाले अपने-अपने उपायनों को साथ में लिये हुए थे और उन पार्थिवों ने उस पुरी के चारों ओर अपनी सेनाओं का पृथक् निवेशन कर दिया था। राजा सगर उस समय में अन्तःपुर में थे तो ये नृपगण अपने पुत्रों के सहित राजा के दर्शन करने की इच्छा वाले थे

और द्वार पर स्थित द्वारपालों के द्वारा बारम्बार बहुत काल पर्यन्त राजा को विज्ञापन करते हुए स्थित थे।१७। उस राजा सगर के चरण युग्म समागत नृपों के मस्तक झुकाने से उनके मुकुटों से रत्नों की अतिवृष्टि होने से किणीकृत हो गये थे अर्थात् रत्नों के कण उन पर बिखरे हुए थे जिससे एक अद्भुत शोभा हो रही थी।१८। नृप की सेवा करने के लिए जो नृपों का समुदाय वहाँ पर [illegible] हुआ था उनके द्वारा सभी ओर बिखर गये रत्नों से [illegible] सगर की सभा ऐसी शोभित हो रही थी जैसे चन्द्र और सूर्य के प्रकाश में गुहा विभात हुआ करती है।१९। इस रीति से अरियों का दमन करने वाला सूर्य वंश का शिरोमणि वह नृप धर्म से इस भूमि का जो किसी भी अन्य के शासन में न होकर इसी नृप के प्रशासन में थी शासन किया करता था।२०। इस प्रकार से पृथ्वी के पालन करने वाले राजा सगर की उत्कंठा अपने एक पुत्र के मुख का अवलोकन करने की हुई थी क्योंकि उसके कोई भी पुत्र उत्पन्न नहीं हुआ था।२१।

विना तां दुःखितोऽत्यर्थं चिन्तयामास नैकधा।
अहो कष्टमपुत्रोऽहमस्मिन्वंशे ध्रुवं तु यत् ॥२२

प्रयांति नूनमस्माकं पितरः पिण्डविप्लवम्।
निरयादपि सत्पुत्रे संजाते पितरः किल ॥२३

प्रीत्या प्रयांति तद्गेहं जातकर्मक्रियोत्सुकाः।
महता सुकृतेनापि संप्राप्तस्य दिवं किल ॥२४

अपुत्रस्यामराः स्वर्गे द्वारं नोद्घाटयन्ति हि।
पिता [illegible] लोकमुभयोः स्वर्लोकं तत्पितामहाः ॥२५

जेष्यंति किल सत्पुत्रे जाते वंशद्वयेऽपि [illegible]।
अनपत्यतयाऽहं [illegible] पुत्रिणो या भवेद्गतिः ॥२६

न तां प्राप्स्यामि वै नूनं सुदुर्लभतरा हि सा।
पदादेर्दारिकलाभिन्नमुद्धं राज्यमखण्डितम् ॥२७

मम यत्तदपुण्यस्य याति निष्फलतामिह।
इदं मत्पूर्वजैरेव सिंहासनमधिष्ठितम् ॥२८

पुत्रोत्पत्ति के बिना वह अत्यधिक दुःखित रहा करता था और अनेक प्रकार से उसने चिन्तन किया था। अहो! बड़ा ही [illegible] है इस वंश में मैं बिना पुत्र वाला हूँ। यह परम ध्रुव है कि मैं बड़ा भाग्यहीन हूँ।२२। निश्चय

ही हमारे पितृगण पिण्डदान के विच्छेद को प्राप्त होंगे। यदि सत्पुत्र जन्म ग्रहण कर लेता है तो फिर वे नरक से भी निकल आया करते हैं। वे प्रीति से जातकर्म में समुत्सुक होकर उसके घर में प्रयाण किया करते हैं। यदि कोई महान् पुण्य उन्होंने किया हो तो उसके प्रभाव से वे स्वर्ग को प्राप्त होते हैं।२३-२४। किन्तु जिसके पुत्र नहीं होता है वह सुकृत के प्रभाव से स्वर्ग के द्वार तक ही पहुँच पाता है और फिर पुत्रहीन के लिए देवगण स्वर्ग का द्वार नहीं खोला करते हैं और अन्दर प्रवेश नहीं कर पाता है। पिता की दोनों लोकों में और उसके पितामह स्वर्गलोक को दोनों वंशों में सत्पुत्र के समुत्पन्न होने पर ही प्राप्त करेंगे। मैं तो सन्तान हीन होने से पुत्र वालों की जो गति होती है उसको मैं निश्चय ही प्राप्त नहीं करूँगा क्योंकि पुत्रहीन के लिए वह गति अतीव दुर्लभ है। इन्द्र के पद से अभिन्न यह अकण्टक और समृद्ध राज्य भी व्यर्थ ही है।२५-२७। पुत्रहीन मेरा यह सब कुछ यहाँ पर निष्फलता को ही प्राप्त हो रहा है। यह राज्यासन जिस पर मेरे पूर्वज पुरुष विराजमान हुए थे, अब व्यर्थ ही है।२८।

अपुत्रत्वेन राज्यं मे पराधीनत्वमेष्यति ।
तस्मादौर्वाश्रमपदं गत्वाहं मुनिपुङ्गवम् ॥२९
प्रसादयिष्ये पुत्रार्थं भार्याभ्यां सहितोऽधुना ।
गत्वा तस्मै स्वपुत्रत्वं विनिवेद्य महात्मने ॥३०
स यद्वक्ष्यति तत्सर्वं करिष्ये नात्र संशयः ।
इति संचिन्त्य मनसा सगरो राजसत्तमः ॥३१
इत्येष कृत्यविद्राजा गन्तुमौर्वाश्रमं प्रति ।
स मन्त्रिप्रवरे राज्यं प्रतिष्ठाप्य ततो वनम् ॥३२
प्रययौ रथमारुह्य भार्याभ्यां सहितो मुदा ।
जगाम रथघोषेण मेघनादातिशङ्किभिः ॥३३
स्तब्धश्रोत्रैर्वीक्ष्यमाणो मार्गोपान्ते शिखण्डिभिः ।
प्रियाभ्यां दर्शयन्राजन्सारङ्गांश्चलितेक्षणान् ॥३४
क्षणमूर्ध्वमुखान्सद्यः पलायनपरान्पुनः ।
वृक्षान्पुष्पफलोपेतान्विलोक्य मुदितोऽभवत् ॥३५

अब मेरे कोई पुत्र ही नहीं है तो इस सिंहासन पर भविष्य में कौन बैठेगा। बड़े दुःख का विषय है यह भी आगे किसी दूसरे की ही अधीनता में चला जायेगा। इसलिए मैं अब और्व मुनि के समीप में जाकर उनसे ही

यह प्रार्थना करूँ ।२९। इस समय में दोनों अपनी पत्नियों के सहित वहाँ पहुँच कर उन महामुनि को प्रसन्न करूँगा। वे महान् आत्मा वाले महा-पुरुष हैं वहाँ जाकर अपने पुत्र हीनता के विषय में उनसे विशेष निवेदन करना ही उचित है ।३०। वे इसके लिए जो भी कुछ उपाय बतलायेंगे वह सभी मैं करूँगा इसमें तनिक भी संशय नहीं है। नृपश्रेष्ठ सगर ने ऐसा विचार अपने मन में किया था। हे राजन्! इसलिए कृत्यों के ज्ञाता उस नृप सगर ने और्व महामुनि की सन्निधि में गमन करने का निश्चय कर लिया था। उसने जो परम श्रेष्ठ मन्त्री था उसको राज्य के प्रशासन का भार सौंपकर फिर वन में चल दिया था ।३१-३२। बड़ी प्रसन्नता से अपनी दोनों पत्नियों को साथ में लेकर रथ पर समारूढ़ हो गया था और वहाँ से चल दिया था। जिस समय में उसका रथ चला है उसका ऐसा महान् घोष हुआ था कि मयूरों को मेघों की गर्जना की शंका हो गयी थी ।३३। मार्ग के समीप में मयूरों ने एकटक होकर उसको देखा था। राजा भी उन स्तिमित नेत्रों वाले मयूरों की ओर संकेत करके अपनी पत्नियों को उनकी इस तरह से दृष्टि करने का दिखाया जा रहा था ।३४। उन वन्य मयूरों ने एक क्षण तक तो रथ की ओर अपने मुख किये थे और फिर वे वहाँ से पलायन करने में तत्पर हो गये थे। राजा भी उस वन में विविध भाँति के पुष्पों से और फलों से लदे हुए वृक्षों को अवलोकित करके अत्यन्त प्रसन्न हुआ था ।३५।

अम्लानकुसुमैः स्वादुफलैः शाद्वलभूमिकैः ।
सुस्निग्धपल्लवच्छायैरभितः संभृतं नगैः ॥३६
चूताग्रपल्लवास्वादुसितकण्ठपिकारवैः ।
श्रोत्राभिरामजनकैस्संघुष्टं सर्वतो दिशम् ॥३७
सर्वर्तुकुसुमोपेतं भ्रमद्भ्रमरमण्डितम् ।
प्रसूनस्तवकानम्रवल्लरीप्रेल्लितद्रुमम् ॥३८
कपियूथसमाक्रान्तमनस्पर्शिशताखुतम् ।
उन्मत्तशिखिसारंगमृत्यत्पक्षिगणान्वितम् ॥३९
गायद्विद्याधरवधूगीतिकासुमनोहरम् ।
संचरत्किन्नरीवृन्दविराजद्वनमण्डलम् ॥४०
हंससारसचक्राह्वकारण्डवशुकादिभिः ।
सुस्वरं राजुतोपान्तं सरोभिः परिवारितम् ॥४१

सरः स्वम्बुजकह्लारकुमुदोत्पलराशिषु ।
शनैः परिवहन्मंदमारुतापूर्णदिङ्मुखम् ॥४२

वह अरण्य वृक्षों से घिरा हुआ था जिनमें अनेक अम्लान पुष्प थे—स्वादिष्ट फल थे और हरी-हरी घास वाली भूमि थी तथा बहुत घनी सुस्निग्ध पत्रों की छाया से सब वृक्ष संयुत थे।३६। वहाँ पर सभी ओर कानों को श्रवण करने में परम प्रिय लगाने वाली आम्र वृक्षों के कोमल पत्रों के खाने से स्निग्ध कण्ठों वाली कोमलों की मधुर ध्वनि थी इससे वह वन संयुक्त हो रहा था।३७। उसमें सभी ऋतुओं के कुसुम खिल रहे थे जिन पर भ्रमर गुञ्जार करते हुए झूल रहे थे। बहुत सी लताएँ द्रुमों से लिपटी हुई थीं जो अपने ही प्रसूनों के गुच्छों के भार से नीचे की ओर झुक रही थीं।३८। वह महारण्य ऐसा ही सुषमा सम्पन्न था कि वहाँ के वृक्षों पर सैकड़ों वानरों के झुण्ड बैठे हुए थे और उस वन में उन्मत्त शिखी-सारङ्ग भ्रमण कर रहे थे तथा पक्षियों का कल कूजन चहुँ ओर हो रहा था।३९। उस वन में विद्याधरों की वधूटियाँ गीत गा रही थीं जिनसे वह वन मन का हरण करने वाला हो रहा था। उस परम गहन वन में किन्नर-किन्नरियों के जोड़े सञ्चरण करते हुए शोभित हो रहे थे।४०। उस वन में बहुत से सरोवर थे जिनसे चारों ओर वन घिरा हुआ था जिनका उत्तम सुस्वरों वाले हंस-सारस-चक्रवाक-कारण्डव और शुक आदि से समावृत हो रहा था।४१। उन सरोवरों में कमल-कल्हार-कुमुद और उत्पल बहुत अधिक परिमाण में विकसित हो रहे थे। वहाँ पर मन्द मारुत के परिवहन से सभी दिशायें पूरित हो रही थीं।४२।

एवंविधगुणोपेतमग्निशाला तपोवनम् ।
गच्छन्नथेनाथ नृपः प्रहर्षं परमं ययौ ॥४३
उपशांताश्रयः सोऽथ संप्राप्याश्रममंडलम् ।
भार्याभ्यां सहितः श्रीमान्वाहादवरुरोह वै ॥४४
धुर्यान्विश्रामयेत्युक्त्वा यंतारमवनीपतिः ।
आससादाश्रमोपांतं महर्षेर्भावितात्मनः ॥४५
स श्रुत्वा मुनिशिष्येभ्यः कृतनित्यक्रियादरम् ।
मुनिं द्रष्टुं विनीतात्मा प्रविवेशाश्रमं तदा ॥४६
मुनिमध्ये समासीनमृषिवृंदैः समन्वितम् ।
ननाम शिरसा राजा भार्याभ्यां सहितो मुदा ॥४७

कृतप्रणामं नृपतिमुर्विरौर्वः प्रतापवान् ।
उपविशेति प्रेम्णा वै सह ताभ्यां समादिशत् ॥४८
अर्घ्यपाद्यादिभिः सम्यक्पूजयित्वा महामुनिः ।
आतिथ्येन च वन्येन सभार्यं तमतोषयत् ॥४९

इस प्रकार के गुणों से सुसम्पन्न उस तपोवन का अवगाहन करके रथ के द्वारा गमन करते हुए नृप सगर को पारमार्थिक प्रसन्नता प्राप्त हुई थी ।४३। उपशान्त आशय के मण्डल में पहुँचकर फिर श्री सम्पन्न वह राजा अपने यान से नीचे उतर गया था ।४४। उस नृप ने सारथि से कहा था कि इन अश्वों को विश्राम करने दो और फिर भावितात्मा महर्षि के आश्रम के समान्त में पहुँच गया था ।४५। उस राजा ने यह मुनि के शिष्यों से सुन लिया था कि मुनिवर नित्य क्रिया कर चुके हैं तभी उस विनीत आत्मा वाले नृप ने मुनि के दर्शन करने के लिए उस आश्रम में प्रवेश किया था। ।४६। वे महामुनीन्द्र अनेक मुनियों के मध्य में विराजमान थे और चारों ओर ऋषियों के समुदाय वहाँ पर संस्थित थे। उसी समय में राजा ने भार्याओं के साथ बड़ी ही प्रसन्नता से मुनिवर के चरणों में शिर झुकाकर प्रणाम किया था ।४७। जब राजा ने प्रणाम किया था तो प्रताप वाले और्व ऋषि ने बड़े ही प्रेम से दोनों पत्नियों के सहित उस नृप को 'बैठ जाओ' यह आज्ञा दी थी ।४८। उस महामुनि ने समागत उस अतिथि नृप का भारतीय संस्कृति की मर्यादानुसार से अर्घ्य पाद्य आदि से भली-भाँति अर्चन करके भार्याओं के सहित उस नृप को वन्य आतिथ्य सत्कार से भली-भाँति किया था ।४९।

अथातिथ्योपविश्रान्तं प्रणम्यासीनमग्रतः ।
राजानमब्रवीदौर्वः प्रेमपूर्वं वचः ॥५०
कुशलं ननु ते राज्ये बाह्येष्वाभ्यंतरेषु च ।
अपि धर्मेण सकलाः प्रजास्त्वं परिरक्षसि ॥५१
अपि जेतुं त्रिवर्गं त्वमुपायैः सम्यगीहसे ।
फलंति हि गुणास्तुभ्यं त्वया सम्यक्प्रचोदिताः ॥५२
दिष्ट्या त्वया जिताः सर्वे रिपवो नृपसत्तम ।
दिष्ट्या च सकलं राज्यं त्वया धर्मेण रक्ष्यते ॥५३
धर्म एव स्थितिर्येषां तेषां नास्त्यत्र विप्लवः ।
न तं रक्षति किं धर्मः स्वयं येनाभिरक्षितः ॥५४

पूर्वमेवाहमश्रौषं विजित्य सकलां महीम् ।
सबलो नगरीं प्राप्तः कृतदारो भवानिति ॥५५
राज्ञां तु परमो धर्मो यत्प्रजापरिपालनम् ।
भवंति सुखिनो नूनं तेनैवेह परत्र च ॥५६
स भवान्राज्यभरणं परित्यज्य मदंतिकम् ।
भार्याभ्यां सहितो राजन्समायातोऽसि मे वद ॥५७
जैमिनिरुवाच- एवमुक्तस्तु मुनिना सगरो राजसत्तमः ।
कृतांजलिपुटो भूत्वा प्राह तं मधुरं वचः ॥५८

इसके अनन्तर आतिथ्य और विश्रान्ति हो जाने पर आगे विराजमान ऋषि को प्रणाम करने के पश्चात् और्व महामुनि ने राजा से धीरे-धीरे मृदु वचन कहे थे ।५०। हे राजन ! आपके राज्य में बाहिर और भीतर सब प्रकार का कुशल-क्षेम तो है न ? और सो धर्म के साथ अपनी समस्त प्रजा की सुरक्षा तो कर ही रहे हैं न ? ।५१। आप तीनों वर्गों को जीतने के लिए उपायों के द्वारा अच्छी तरह से अभिलाषा करते हैं न ? आपके द्वारा भली-भाँति प्रेरित गुण गण आपके लिये फल दिया ही करते हैं न ? ।५२। हे नृपश्रेष्ठ ! यह तो बड़े ही हर्ष की बात है कि आपने समस्त शत्रुओं पर विजय प्राप्त कर ली है। यह भी बड़े ही प्रसन्नता है कि आप धर्म पूर्वक सम्पूर्ण राज्य की सुरक्षा किया करते हैं ।५३। जिनकी धर्म में ही स्थिति होती है उनको महालोक में कोई भी विप्लव नहीं हुआ करता है। जब वह धर्म जिसके द्वारा अभिरक्षित होता है तो क्या वह स्वयं ही उसकी रक्षा नहीं किया करता है ? अवश्य धर्म उसकी सुरक्षित होकर रक्षा करता है ।५४। यह तो पूर्व में ही सुन लिया था कि आपके सम्पूर्ण वसुन्धरा पर विजय प्राप्त करके अपने बल के साथ सपत्नीक अपनी नगरी में प्राप्त हो गये हैं ।५५। राजाओं का तो यही परमश्रेष्ठ धर्म होता है कि इसके द्वारा अपनी प्रजा का परिपालन किया जाता है। ऐसे ही नृप निश्चय ही इस लोक में और परलोक में सुखी हुआ करते हैं ।५६। ऐसे राजा आप हैं फिर राज्य के भरण का त्याग करके इस समय मेरे समीप में समागत हुए हैं और दोनों पत्नियों को भी साथ में लेकर आये हैं। राजन् ! क्या कारण है मुझे आपके इस आगमन का जो भी कारण हो बतलाइये ।५७। जैमिनी मुनि ने कहा—उस मुनि के द्वारा इस रीति से राजा से पूछा था तो उस परम श्रेष्ठ नृप सगर ने दोनों करों को जोड़कर उनसे मधुर वचनों में निवेदन किया था ।५८।